महात्मा कबीरदास

(प्रौढ़ावस्था का चित्र)

भूमिका

आज इस बात को पाँच छः वर्ष हुए होंगे, जब काशीनागरी-प्रचारिणी सभा में रक्षित हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की जाँच की गई थी और उनकी सूची बनाई गई थी। उस समय दो ऐसी पुस्तकों का पता चला जो बड़े महत्त्व की थीं, पर जिनके विषय में किसी को पहले कोई सूचना नहीं थी। इनमें से एक तो सूरसागर की हस्तलिखित प्रति थी और दूसरी कबीरदासजी के ग्रंथों की दो प्रतियाँ थीं। कबीरदासजी के ग्रंथों की इन दो प्रतियों में से एक तो संवत् १५६१ की लिखी है और दूसरी संवत् १८८१ की। दोनों प्रतियाँ सुंदर अक्षरों में लिखी हैं और पूर्णतया सुरक्षित हैं। इन दोनों प्रतियों के देखने पर यह प्रकट हुआ कि इस समय कबीरदास जी के नाम से जितने ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, उनका कदाचित् दशमांश भी इन दोनों प्रतियों में नहीं है। यद्यपि इन दोनों प्रतियों के लिपि-काल में ३२० वर्ष का अंतर है पर फिर भी दोनों में पाठ-भेद बहुत ही कम है। संवत् १८८१ की प्रति में संवत् १५६१ वाली प्रति की अपेक्षा केवल १३१ दोहे और ५ पद अधिक हैं। उस समय यह निश्चय किया गया कि इन दोनों हस्त-लिखित प्रतियों के आधार पर कबीरदासजी के ग्रंथों का एक संग्रह प्रकाशित किया जाय। यह कार्य पहले पंडित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय को सौंपा गया और उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार भी कर लिया। पर पीछे से समया-भाव के कारण वे यह कार्य न कर सके। तब यह मुझे सौंपा गया। मैंने यथासमय यह कार्य आरंभ कर दिया। मेरे दो विद्यार्थियों ने इस कार्य में मेरी सहायता करने की तत्परता भी प्रकट की, पर इस तत्परता का अवसान दो ही तीन दिन में हो गया। धीरे धीरे

मैंने इस काम को स्वयं ही करना आरंभ किया। संवत् १९८३ के भाद्रपद मास में बहुत बीमार पड़ जाने तथा लगभग दो वर्ष तक निरंतर अस्वस्थ रहने और गृहस्थी संबंधी अनेक दुर्घटनाओं और आपत्तियों के कारण मैं यह कार्य शीघ्रतापूर्वक न कर सका। बीच बीच में जब जब अन्य झंझटों से कुछ समय मिला और शरीर ने कुछ कार्य करने में समर्थता प्रकट की, तब तब मैं यह कार्य करता रहा। ईश्वर की कृपा है कि यह कार्य अब समाप्त हो गया।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, इस संस्करण का मूल आधार संबत् १५६१ की लिखी हस्तलिखित प्रति है। यह प्रति खेमचंद के पढ़ने के लिए मलूकदास ने काशी में लिखी थी। यह पता नहीं लगा कि ये खेमचंद और मलूकदास कौन थे। क्या ये मलूकदास कबीरदासजी के वही शिष्य तो नहीं थे जो जगन्नाथपुरी में जाकर बसे और जिनकी प्रसिद्ध खिचड़ी का वहाँ अब तक भोग लगता है तथा जिनके विषय में कबीरदासजी ने स्वयं कहा है 'मेरा गुरु बनारसी चेला समंदर तीर'? यदि ये वही मलूकदास हैं तो इस प्रति का महत्त्व बहुत अधिक है। यदि यह न भी हो, तो भी इस प्रति का मूल्य कम नहीं है। जैसा कि इस संस्करण की प्रस्तावना में सिद्ध किया गया है, कबीरदासजी का निधन संवत् १५७५ में हुआ था। यह प्रति उनकी मृत्यु के १४ वर्ष पहले की लिखी हुई है। अंतिम १४ वर्षों में कबीरदासजी ने जो कुछ कहा था यद्यपि वह इसमें सम्मिलित नहीं है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि संवत् १५६१ तक की कबीरदासजी की समस्त रचनाएँ इसमें संगृहीत हैं। यह प्रति (क) मानी गई है। इसके प्रथम और अंतिम दोनों पृष्ठों के चित्र इस संस्करण के साथ प्रकाशित किए जाते हैं।

दूसरी प्रति (ख) मानी गई है। यह संवत् १८८१ की लिखी है अर्थात् इस प्रति में और (क) प्रति के लिपिकाल में ३२०

वर्षों का अंतर है। पर (क) और (ख) दोनों प्रतियों में पाठ-भेद बहुत कम है। (ख) प्रति में (क) प्रति की अपेक्षा १३१ दोहे और ५ पद अधिक हैं। इस संस्करण के पृष्ठ ३७ और ५० पर पाद-टिप्पणी में जो २८ और १३ संख्यक दोहे दिए गए हैं, उनमें से पहला इसी संस्करण के ३८ वें पृष्ठ का चौथा दोहा और दूसरा ४९ वें पृष्ठ का आठवाँ दोहा है। ये दोनों दोहे भ्रम से दोबारा छप गए हैं। इन दोनों दोहों को छोड़कर १३१ दोहे अधिक होते हैं।

यह बात प्रसिद्ध है कि संवत् १६६१ में अर्थात् (क) प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष पीछे गुरु-ग्रंथ-साहब का संकलन किया गया। उसमें अनेक भक्तों की वाणी सम्मिलित की गई है। गुरु-ग्रंथ-साहब में कबीरदासजी की जितनी वाणी सम्मिलित है, वह सब मैंने अलग करवाई और तब (क) तथा (ख) प्रतियों में सम्मिलित पदों आदि से उसका मिलान कराया। जो दोहे और पद मूल ग्रंथ में आ गए थे, उनको छोड़कर शेष सब दोहे और पद परिशिष्ट में दे दिए गए हैं।

ग्रंथ-साहब तथा दोनों हस्तलिखित प्रतियों का मिलान करने पर नीचे लिखे दोहे और पद दोनों प्रतियों में मिले।

पृष्ठ २	,	दो० १०
पृष्ठ ५	,	दो० ९, ११, १२, १३
पृष्ठ ६	,	दो० १६
पृष्ठ ७	,	दो० २५
पृष्ठ ११	,	दो० ४४
पृष्ठ १८	,	दो० ३ (१०)
पृष्ठ १९	,	दो० ३
पृष्ठ २०	,	दो० १४, १
पृष्ठ २४		दो० ३३

पृष्ठ २५ , दो० ४३, ४६
पृष्ठ २६ , दो० ५४
पृष्ठ २८ , दो० ७
पृष्ठ ३८ , दो० १ (१९)
पृष्ठ ४२ , दो० २ (२२)
पृष्ठ ४३ , दो० ९, १
पृष्ठ ४७ , दो० १
पृष्ठ ५० , दो० ७
पृष्ठ ५१ , दो० २, ६
पृष्ठ ५४ , दो० ५, ९, ११
पृष्ठ ६१ , दो० ९, १
पृष्ठ ६२ , दो० ५
पृष्ठ ६४ , दो० ५, ६
पृष्ठ ६५ , दो० ११, १४
पृष्ठ ६६ , दो० ४
पृष्ठ ६९ , दो० १३
पृष्ठ ७१ , दो० ३३
पृष्ठ ७३ , दो० १०
पृष्ठ ७७ , दो० ७, २
पृष्ठ ७८ , दो० ३
पृष्ठ ८२ , दो० १
पृष्ठ ८५ , दो० ६
पृष्ठ ९७ , प० २७
पृष्ठ १०० , प० ३९
पृष्ठ २०८ , प० ३५९, ३६२
पृष्ठ २२० , प० ४००

इनके अतिरिक्त पाद-टिप्पणियों में जो (ख) प्रति में के अधिक दोहे दिए गए हैं, उनमें से पृष्ठ ६५ के दोहे १८, १९ और २० तथा पृष्ठ ७५ का दोहा ३८ उस प्रति और गुरु ग्रंथ साहब दोनों में समान है। इस प्रकार दोनों हस्तलिखित प्रतियों और गुरु-ग्रंथ-साहब में ४८ दोहे और ५ पद ऐसे हैं जो दोनों में समान हैं। इनको छोड़-कर ग्रंथ-साहब में जो दोहे या पद अधिक मिले हैं, वे परिशिष्ट में दे दिए गए हैं। इनमें १९२ दोहे और २२२ पद हैं। इस प्रकार इस संस्करण में कबीरदासजी के दोहों और पदों का अत्यंत प्रामाणिक संग्रह कर दिया गया है। यह कहना तो कठिन है कि इस संग्रह में जो कुछ दिया गया है, उसके अतिरिक्त और कुछ कबीरदासजी ने कहा ही नहीं, पर इतना अवश्य है कि इनके अति-रिक्त और जो कुछ कबीरदासजी के नाम पर मिले, उसे सहसा उन्हीं का कहा हुआ तब तक स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए, जब तक उसके प्रक्षिप्त न होने का कोई दृढ़ प्रमाण न मिल जाय।

इस संबंध में ध्यान रखने योग्य एक और बात यह है कि इस संग्रह में दिए हुए दोहों आदि की भाषा और कबीरदासजी के नाम पर बिकनेवाले ग्रंथों में के पदों आदि की भाषा में आकाश-पाताल का अंतर है। इस संग्रह के दोहों आदि की भाषा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कबीरदासजी के समय के लिये बहुत उपयुक्त है और वह हिंदी के १६ वीं तथा १७ वीं शताब्दी के रूप के ठीक अनुरूप है। और इसी लिये इन पदों और दोहों को कबीरदासजी रचित मानने में आपत्ति नहीं हो सकती। परंतु कबीरदासजी के नाम पर आजकल जो बड़े बड़े ग्रंथ देखने में आते हैं, उनकी भाषा बहुत ही आधुनिक और कहीं कहीं तो बिलकुल आजकल की खड़ी बोली ही जान पड़ती है। आज से प्रायः तीन साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व कबीरदासजी आजकल की सी भाषा लिखने में किस प्रकार समर्थ हुए होंगे, यह विषय बहुत ही विचारणीय है।

इस संस्करण में कबीरदासजी के जो दोहे और पद सम्मिलित किए गए हैं, उन्हें मैंने आजकल की प्रचलित परिपाटी के अनुसार खराद पर चढ़ाकर सुडौल, सुंदर और पिंगल के नियमों से शुद्ध बनाने का कोई उद्योग नहीं किया। वरन् मेरा उद्देश्य यही रहा है कि हस्त-लिखित प्रतियों या ग्रंथ-साहब में जो पाठ मिलता है, वही ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दिया जाय। कबीरदासजी के पूर्व के किसी भक्त की वाणी नहीं मिलती। हिंदी साहित्य के इतिहास में वीरगाथा काल की समाप्ति पर मध्यकाल का आरंभ कबीरदासजी से होता है; अतएव इस काल के वे आदि कवि हैं। उस समय भाषा का रूप परिमार्जित और संस्कृत नहीं हुआ था। तिस पर कबीरदासजी स्वयं पढ़े लिखे नहीं थे। उन्होंने जो कुछ कहा है, वह अपनी प्रतिभा तथा भावुकता के वशीभूत होकर कहा है। उनमें कवित्व उतना नहीं था जितनी भक्ति और भावुकता थी। उनकी अटपट वाणी हृदय में चुभनेवाली है। अतएव उसे ज्यों का त्यों प्रकाशित कर देना ही उचित जान पड़ा और यही किया भी गया है। हाँ जहाँ मुझे स्पष्ट लिपि-दोष देख पड़ा, वहाँ मैंने सुधार दिया है; और वह भी कम से कम उतना ही जितना उचित और नितांत आवश्यक था।

एक और बात विशेष ध्यान देने योग्य है। कबीरदासजी की भाषा में पंजाबीपन बहुत मिलता है। कबीरदास ने स्वयं कहा है कि मेरी बोली बनारसी है। इस अवस्था में पंजाबीपन कहाँ से आया ? ग्रंथ-साहब में कबीरदासजी की वाणी का जो संग्रह किया है, उसमें जो पंजाबीपन देख पड़ता है, उसका कारण तो स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता है, पर मूल भाग में अथवा दोनों हस्तलिखित प्रतियों में जो पंजाबीपन देख पड़ता है, उसका कुछ कारण समझ में नहीं आता। या तो यह लिपिकर्ता की कृपा का फल है अथवा पंजाबी साधुओं की संगति का प्रभाव है। कहीं कहीं तो स्पष्ट पंजाबी प्रयोग और मुहा-

वरे आ गए हैं जिनको बदल देने से भाव तथा शैली में परिवर्तन हो जाता है। यह विषय विचारणीय है। मेरी समझ में कबीरदासजी की वाणी में जो पंजाबीपन देख पड़ता है उसका कारण उनका पंजाबी साधुओं से संसर्ग ही मानना समीचीन होगा।

इस संस्करण के साथ कबीरदासजी के दो चित्र प्रकाशित किए जाते हैं, एक तो कलकत्ता म्यूज़ियम से प्राप्त हुआ है और दूसरा कबीरपंथी स्वामी युगलानंदजी से मिला है। दोनों में से किसी चित्र का कोई ऐसा प्रामाणिक इतिहास नहीं मिला जिसकी कुछ जाँच की जा सकती पर जहाँ तक मैं समझता हूँ, वृद्धावस्था का चित्र ही जो कबीरपंथी साधु युगलानंदजी से प्राप्त हुआ है अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है।

इस ग्रंथ का परिशिष्ट प्रस्तुत करने में मेरे छात्र पंडित अयोध्यानाथ शर्मा एम० ए० ने बड़ा परिश्रम किया है। यदि वे यह कार्य न करते तो मुझे बहुत कुछ कठिनता का सामना करना पड़ता। इसी प्रकार प्रस्तावना के लिए सामग्री एकत्र करने और उसे व्यवस्थित रूप देने में मेरे दूसरे छात्र पंडित पीतांबरदत्त बड़थ्वाल एम० ए० ने मेरी जो सहायता की है वह बहुत ही अमूल्य है। सच बात तो यह है कि यदि मेरे ये दोनों प्रिय छात्र इस प्रकार मेरी सहायता न करते, तो अभी इस संस्करण के प्रकाशित होने में और भी अधिक समय लग जाता। इस सहायता के लिये मैं इन दोनों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इनके अतिरिक्त और भी दो तीन विद्यार्थियों ने मेरी सहायता करने में कुछ कुछ तत्परता दिखाई पर किसी का तो काम ही पूरा न उतरा, किसी ने टाल मटूल कर दी और किसी ने कुछ कर कराकर अपने सिर से बला टाली। अस्तु, सभी ने कुछ न कुछ करने का उद्योग किया और मैं उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

काशी
ज्येष्ठ कृष्ण १३, १९८५ } श्यामसुंदरदास

कबी० १

॥श्रीरांमजी॥ अथकबीरजीकीबांणीलिषतं॥प्रथमगुरदेवकोअंगलिषतं॥ कबीरसतगुरसवांनकोसगा॥सोधीसईनदाति
हरिजीसवांनकोहिहू॥ हरिजनसईनजाति॥१॥कबीरबलिहारीगुरआपणें॥ द्यौंहाडीकेबार॥जिनिमांनिषतैंदेवताक
या॥करतनलागीबार॥२॥कबीरसतगुरकीमहिंमांअनंत॥अनंतकीयाउपगार॥लोचनअनंतउघाडिया॥अनंतदिषीवण
हार॥३॥कबीररांमनांमकेपटंतरै॥देबेकोंकछनांहि॥क्यालेगुरसंतोषिऐ॥हौंसरहीमनमांहि॥४॥कबीरसतगुरकेस
दकेकरूं॥दिलअपणींकासाच॥कलियुगहमस्यूंलडिपड्या॥मुहकममेराबाछ॥५॥कबीरसतगुरलईकमांणकरि॥
बांहणलागातीर॥एकजुबाह्यापीतिस्यूं॥भीतरिरह्यासरीर॥६॥कबीरसतगुरसाचासूरिवां॥सबदजुबाह्याएक॥लागत
हींभेंमिलिगया॥पड्याकलेजेछेक॥७॥कबीरसतगुरमारयाबांणभरि॥धरिकरिसूधीमूठि॥अंगिउघाडेलागिया॥गई
दवासूंफूटि॥८॥कबीरहसेनबोलेउनमनी॥चंचलमेल्यामारि॥कहेकबीरभीतरिभिद्या॥सतगुरकेहथियारि॥९॥क
बीरसूंगाहूवाबावला॥बहराहूवाकांन॥पांऊंथेंपंगुलभया॥सतगुरमारयाबांण॥१०॥कबीरपीछेंलागाजाइथा॥लोक
बेदकेसाथ॥आगैंथेंसतगुरमिल्या॥दीपकदीयाहाथि॥११॥कबीरदीपकदीयातेलभरि॥बातीदईअघट॥पूरयकीयाबि
साहुणां॥बहुरिनआंवोंहट॥१२॥कबीरग्यांनप्रकास्यागुरमिल्या॥सोजिनिबीसरिजाइ॥जबगोब्यंदकृपाकरी॥तबगुर
मिलियाआइ॥१३॥कबीरगुरगरवामिल्या॥रलिगयाआटेलूंण॥जातिपांतिकुलसबमिटि॥नांवधरैगेकौण॥१४॥कबीरज
कागुरभीअंधला॥चेलाहैजाचंध॥अंधेअंधाठेलिया॥दून्यूंकूपपडंत॥१५॥कबीरनांगुरमिल्यानसिषभया॥लालचषेल्या
डाव॥दून्यूंबूडेधारमें॥चढिपाथरकीनाव॥१६॥कबीरचौसठिदीवाजोइकरि॥चौदहचंदामांहिं॥तिहिंघरिकिसकोचांनि
णौं॥जिहिघरिगोब्यंदनांहिं॥१७॥कबीरनिसअंधियारीकारणें॥चौरासीलषचंदा॥अतिआतुरउदैकीया॥तऊदिष्टिनहीमंद

गुरु १

संवत् १५६१ की लिखी प्रति के पहले पृष्ठ की प्रतिलिपि

इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

हाता॥ग्यांनमसुमिरयौनिरगुणसारा॥षिषैं बिरचिनकीया बिचारा॥भावभगतिसूं हरिनआराधा॥जनममरनकी मिटीनस
धा॥साधनमिटी जनमकी॥मरनतुरांनां आइ॥मनक्रमबचनन हरि मज्या॥संकूरबी जनसाइ॥१॥तिणचरिसुरहीउदिक
पीया॥फिरैइधबछ कूंदीया॥बछापूंषततउपजीनदया॥बछाबांधि बिछोही मया॥ताकाइधंआपछ हि पीया॥ग्यांन बिचार
कछून हीकीया॥जेऊछलोगनिसोईकीया॥मालामंत्र बादि हीलीया॥पीयाइधरुधकेआया॥मुईगाइतबदोषलग
या॥बाकसलेचमराकूंदीनां॥तुथारंगाइकरैतीकीनां॥लिरकरैती बैठेसंगा॥येदेषोपांमेकेरंगा॥तिहिसूंकरैतीपांणं
पीया॥यूजाकछपांमेअचिरजकीया॥अचिरजकीयालोकमें॥पीयासुहागलनीरा॥इंद्रीस्वारथिसबकीया॥बंध्याभ्रमस
रीर॥धांएकैपवनएकहीपांणी॥करीरसोईन्यारीजांनी॥माटीसूंमाटीलेपोती॥लागीकहोकहांथूंछोती॥धरतीलीप
पपवित्रकीनी॥छोतिउपाइलीकबिचिदीनी॥याकाहमसूंकहोबिचारा॥क्यूंभवतिरिहोइहिआचारा॥एपाषंडजीव
केभरमां॥मांनिअमांनिजीवकेक्रमां॥करिआचारजुब्रह्मसंतावा॥नांवबिनांसंतोषनपावा॥सालिगरांमसिलाकरिपूजा
तुलसीतोडिभयानरदूजा॥ठाकुरलेपाटैपोढावा॥भोगलगाइअरुआपैषावा॥सांचसीलकाचौकादीजै॥भावभगतिकीसे
वाकीजै॥भावभगतिकीसेवामांनै॥सतगुरप्रगटकहेनहीछांनैं॥अनभैउपजिनमनहराइ॥प्रकीरतिमिलिमनमैन्य
नसमाइ॥जबलगभावभगतिनहीकरिहो॥तबलगभवसागरक्यूंतिरिहो॥भावभगतिबिसवासबिन॥कटैनसंसैसूल
कहैकबीरहरिभगतिबिन॥मुकतिनहींरेमूल॥६॥रमैणी॥७॥इतिश्रीकबीरजीकीबांणीसंपूरणसमाप्तः॥साषी॥८
८१०॥अंग॥६९॥पद॥४०३॥राग॥१५॥संपूर्णसंवत१५६१लिषतं [illegible]
दासवाचिबाजां [illegible] आद्रलिपूतकं [illegible] मयायदिसुद्धंतोवाममदोशोनदियतां॥

संवत् १५६१ की लिखी प्रति के अंतिम पृष्ठ की प्रतिलिपि

इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

प्रस्तावना

काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं। कबीर का जन्म भी समय की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हुआ था। अवसर के उचित उपयोग से अनभिज्ञ और कर्म्मठता से उदासीन रहनेवाली हिंदू जाति की धर्म्मजन्य दयालुता ने उसे दासता के गर्त में ढकेल दिया था। उसका शूर-वीरत्व उसके किसी काम न आया। वीरता के साथ साथ वीर-गाथाओं और वीर-गीतों की अंतिम प्रतिध्वनि भी रणथंभौर के पतन के साथ ही विलीन हो गई। शहाबुद्दीन गोरी (मृत्यु सं० १२६३) के समय से ही इस देश में मुसलमानों के पाँव जमने लग गए थे, उसके गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक (सं० १२६३-१२७३) ने गुलाम वंश की स्थापना कर पठानी सल्तनत और भी दृढ़ कर दी। भारत की लक्ष्मी पर लुब्ध मुसलमानों का विकराल स्वरूप, जिसे उनकी धर्मांधता ने और भी अधिक विकराल बना दिया था, अलाउद्दीन खिलजी (सं० १३५२-१३७२) के समय में भली भाँति प्रकट हुआ। खेतों में खून और पसीना एक करनेवाले किसानों की कमाई का आधे से अधिक अंश भूमि-कर के रूप में राज-कोष में जाने लगा। प्रजा दाने दाने को तरसने लगी। सोने चाँदी की तो बात ही क्या, हिंदुओं के घरों में ताँबे पीतल के थाली लोटों तक का रहना सुलतान को खटकने लगा। उनका घोड़े की सवारी करना और अच्छे कपड़े पहनना महान् अपराधों में गिना जाने लगा। नाम मात्र के अपराध के लिये भी किसी की खाल खिंचवा-कर उसमें भूसा भरवा देना एक साधारण बात थी। अलाउद्दीन खिलजी के लड़के कुतुबुद्दीन मुबारक (संवत् १३७३-१३७७) के

आविर्भाव-काल

शासनकाल में जब देवगिरि का राजा हरपाल बंदी करके दिल्ली लाया गया, तब उसकी यही दशा हुई। मंदिरों को गिराकर उनके स्थान पर मस्जिदें बनाने का लग्गा तो बहुत पहले लग चुका था। अब स्त्रियों के मान और पातिव्रत की रक्षा करना भी कठिन हो गया। चित्तौर पर अलाउद्दीन की दो चढ़ाइयाँ केवल अतुल सुंदरी पद्मिनी की ही प्राप्ति के लिये हुईं, अंत में गढ़ के टूट जाने और अपने पति भीमसी के वीर गति पाने पर पुण्य-प्रतिमा महाराणी पद्मिनी ने अन्य वीर क्षत्राणियों के साथ अपने मान की रक्षा के लिए अग्निदेव के क्रोड़ में शरण ली और जौहर करके हिंदू जाति का मस्तक ऊँचा किया। तुगलक वंश के अधिकारारूढ़ होने पर भी ये कष्ट कम नहीं हुए, वरन् मुहम्मद तुगलक (सं० १३८२-१४०८) की ऊटपटाँग व्यवस्थाओं से और भी बढ़ गए। समस्त राजधानी, जिसमें नव-जात शिशु से लेकर मरणोन्मुख वृद्ध तक थे, दिल्ली से लाकर दौलता-बाद में बसाई गई। परंतु जब वहाँ आधे से अधिक लोग मर गए, तब सबको फिर दिल्ली लौट जाने की आज्ञा दी गई। हिंदू जाति के लिये जीवन धीरे धीरे एक भार सा होने लगा, कहीं से आशा की झलक तक न दिखाई देती थी। चारों ओर निराशा और निर-वलंबता का अंधकार छाया हुआ था। हिंदू रक्त ने खुसरो की नसों में उबलकर हिंदू राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया तो था (वि० सं० १३१८) पर वह सफल न हो सका। इसके अनंतर सारी आशाएँ बहुत दिनों के लिये मिट्टी में मिल गईं। तैमूर के आक्र-मण ने देश को जहाँ तहाँ उजाड़कर नैराश्य की चरम सीमा तक पहुँचा दिया। हिंदू जाति में से जीवन शक्ति के सब लक्षण मिट गए। विपत्ति की चरम सीमा पर पहुँचकर मनुष्य पहले तो पर-मात्मा की ओर ध्यान लगाता है और अपने कष्टों से त्राण पाने की आशा करता है; पर जब स्थिति में सुधार नहीं होता, तब परमात्मा

की भी उपेक्षा करने लगता है, उसके अस्तित्व पर उसका विश्वास ही नहीं रह जाता। कबीर के जन्म के समय हिंदू जाति की यही दशा हो रही थी। वह समय और परिस्थिति अनीश्वरवाद के लिये बहुत ही अनुकूल थी, यदि उसकी लहर चल पड़ती तो उसे रोकना बहुत ही कठिन हो जाता। परंतु कबीर ने बड़े ही कौशल से इस अवसर से लाभ उठाकर जनता को भक्ति मार्ग की ओर प्रवृत्त किया और भक्ति भाव का प्रचार किया। प्रत्येक प्रकार की भक्ति के लिये जनता इस समय तैयार नहीं थी। मूर्त्तियों की अशक्तता वि० सं० १०८१ में बड़ी स्पष्टता से प्रकट हो चुकी थी, जब कि महमूद गजनवी ने आत्मरक्षा से विरत, हाथ पर हाथ रखकर बैठे हुए श्रद्धालुओं के देखते देखते सोमनाथ का मंदिर नष्ट करके उनमें से हजारों को तलवार के घाट उतारा था। गजेंद्र की एक ही टेर सुनकर दौड़ आनेवाले और ग्राह से उसकी रक्षा करनेवाले सगुण भगवान् जनता के घोर से घोर संकट काल में भी उसकी रक्षा के लिये आते हुए न दिखाई दिए। अतएव उनकी ओर जनता को सहसा प्रवृत्त कर सकना असंभव था। पंढरपुर के भक्त-शिरोमणि नामदेव की सगुण भक्ति जनता को आकृष्ट न कर सकी, लोगों ने उनका वैसा अनुसरण न किया जैसा आगे चलकर कबीर का किया; और अंत में उन्हें भी ज्ञानाश्रित निर्गुण भक्ति की ओर झुकना पड़ा। उस समय परिस्थिति केवल निराकार और निर्गुण ब्रह्म की भक्ति के ही अनुकूल थी, यद्यपि निर्गुण की शक्ति का भली भाँति अनुभव नहीं किया जा सकता था, उसका आभास मात्र मिल सकता था। पर प्रबल-जल-धार में बहते हुए मनुष्य के लिये वह कूलस्थ मनुष्य या चट्टान किस काम की है जो उसकी रक्षा के लिये तत्परता न दिखलाए? पर उसकी ओर बहकर आता हुआ एक तिनका भी उसके हृदय में जीवन की आशा पुनरुद्दीप्त कर देता है और उसी का

सहारा पाने के लिये वह अनायास हाथ बढ़ा देता है। कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति के द्वारा यही आशा भारतीय जनता के हृदय में उत्पन्न की और उसे कुछ अधिक समय तक विपत्ति की इस अथाह जलराशि के ऊपर बने रहने की उत्तेजना दी, यद्यपि सहायता की आशा से आगे बढ़े हुए हाथ को वास्तविक सहारा सगुण भक्ति से ही मिला और केवल राम-भक्ति ही उसे किनारे पर लाकर सर्वथा निरापद कर सकी। राम-भक्ति ने केवल सगुण कृष्ण-भक्ति के समान जनता की दृष्टि जीवन के आनंदोल्लास-पूर्ण पक्ष की ओर ही नहीं लगाई, प्रत्युत आनंद-विरोधिनी अमांगलिक शक्तियों के संहार का विधान कर दूसरे पक्ष में भी आनंद की प्राण-प्रतिष्ठा की। पर इससे जनता पर होने-वाले कबीर के उपकार का महत्त्व कम नहीं हो जाता। कबीर यदि जनता को भक्ति की ओर न प्रवृत्त करते तो क्या यह संभव था कि लोग इस प्रकार सूर की कृष्ण-भक्ति अथवा तुलसी की रामभक्ति आँखें मूँदकर ग्रहण कर लेते? सारांश यह है कि कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब कि मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जनता को अपने जीवित रहने की आशा नहीं रह गई थी और न उसमें अपने आपको जीवित रखने की इच्छा ही शेष रह गई थी। उसे मृत्यु या धर्मपरिवर्त्तन के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं देख पड़ता था। यद्यपि धर्म्मज्ञ तत्त्वज्ञों ने सगुण उपासना से आगे बढ़ते बढ़ते निर्गुण उपासना तक पहुँचने का सुगम मार्ग बताया है और वास्तव में यह तत्त्व बुद्धिसंगत भी जान पड़ता है, पर उस समय सगुण उपासना की निःसारता का जनता को परिचय मिल चुका था और उस पर से उसका विश्वास भी हट चुका था। अत-एव कबीर को अपनी व्यवस्था उलटनी पड़ी। मुसलमान भी निर्गुणो-पासक थे। अतएव उनसे मिलते जुलते पथ पर लगाकर कबीर ने हिंदू जनता को संतोष और शांति प्रदान करने का उद्योग किया।

यद्यपि उस उद्योग में उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हुई, तथापि यह स्पष्ट है कि कबीर के निर्गुणवाद ने तुलसी और सूर के सगुणवाद के लिये मार्ग परिष्कृत कर दिया और उत्तरीय भारत के भावी धर्ममय जीवन के लिये उसे बहुत कुछ संस्कृत और परिष्कृत बना दिया।

जिस समय कबीर आविर्भूत हुए थे, वह समय ही भक्ति की लहर का था। उस लहर को बढ़ाने के प्रबल कारण प्रस्तुत थे। मुसलमानों के भारत में आ बसने से परिस्थिति में बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया। हिंदू जनता का नैराश्य दूर करने के लिये भक्ति का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों ने हिन्दू और मुसलमान दोनों विरोधी जातियों को एक करने की आवश्यकता का भी अनुभव किया। इस अनुभव के मूल में एक ऐसे सामान्य भक्ति-मार्ग का विकास गर्भित था जिसमें परमात्मा की एकता के आधार पर मनुष्यों की एकता का प्रतिपादन हो सकता और जिसका मूलाधार भारतीय ब्रह्मवाद तथा मुसलमानी खुदावाद की स्थूल समानता हुई। भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद के सूक्ष्म भेद की ओर ध्यान नहीं दिया गया और दोनों के एक विचित्र मिश्रण रूप में निर्गुण भक्ति-मार्ग चल पड़ा। रामानंदजी के बारह शिष्यों में से कुछ इस मार्ग के प्रवर्तन में प्रवृत्त हुए जिनमें से कबीर प्रमुख थे। शेष में सेना, धना, भवानंद, पीपा और रैदास थे, परंतु उनका उतना प्रभाव न पड़ा जितना कबीर का। नरहर्यानंदजी ने अपने शिष्य गोस्वामी तुलसीदास को प्रेरणा करके उनके कर्तृत्व से सगुण रामभक्ति का एक और ही स्रोत प्रवाहित कराया।

भक्त संतों की परंपरा

मुसलमानों के आगमन से हिंदू समाज पर एक और प्रभाव पड़ा। पददलित शूद्रों की दृष्टि में उन्मेष हो गया। उन्होंने देखा कि

मुसलमानों में द्विजों और शूद्रों का भेद नहीं है। सधर्मी होने के कारण वे सब एक हैं, उनके व्यवसाय ने उनमें कोई भेद नहीं डाला है, न उनमें कोई छोटा है और न कोई बड़ा। अतएव इन ठुकराए हुए शूद्रों में से ही कुछ ऐसे महात्मा निकले जिन्होंने मनुष्यों की एकता को उद्घोषित करना चाहा। इस नवोत्थित भक्ति-तरंग में सम्मिलित होकर हिंदू समाज में प्रचलित इस भेदभाव के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई। रामानंदजी ने सबके लिये भक्ति का मार्ग खोलकर उसको प्रोत्साहित किया। नामदेव दरजी, रैदास चमार, दादू धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाज की नीची श्रेणी के ही थे परंतु उनका नाम आज तक आदर से लिया जाता है।

वर्ण-भेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को ही नहीं, वर्ग-भेद से उत्पन्न उच्चता नीचता को भी दूर करने का इस निर्गुण भक्ति ने प्रयत्न किया। स्त्रियों का पद स्त्री होने के ही कारण नीचा न रह गया। पुरुषों के ही समान वे भी भक्ति की अधिकारिणी हुईं। रामानंदजी के शिष्यों में से दो स्त्रियाँ थीं, एक पद्मावती और दूसरी सुरसरी। आगे चलकर सहजोबाई और दयाबाई भी भक्त-संतों में से हुईं। स्त्रियों की स्वतंत्रता के परम विरोधी, उनको घर की चहारदीवारी के अंदर ही कैद रखने के कट्टर पक्षपाती तुलसीदास जी भी जो मीराबाई को 'राम विमुख तजिय कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही' का उपदेश दे सके, वह निर्गुण भक्ति के ही अनिवार्य और अलक्ष्य प्रभाव के प्रसाद से समझना चाहिए। ज्ञानी संतों ने स्त्री की जो निंदा की है, वह दूसरी ही दृष्टि से है। स्त्री से उनका अभिप्राय स्त्री-पुरुष के काम-वासना-पूर्ण संसर्ग से है। स्त्री की निंदा कबीर से बढ़कर कदाचित् ही किसी ने की हो, परंतु पति-पत्नी की भाँति न रहते हुए भी लोई का आजन्म उनके साथ रहना प्रसिद्ध है।

कबीर इस निर्गुण भक्ति-प्रवाह के प्रवर्तक हैं, परंतु भक्त नामदेव इनसे भी पहले हो गए थे। नामदेव का नाम कबीर ने शुक, उद्धव, शंकर, आदि ज्ञानियों के साथ लिया है—

जागे सुक उधव अक्रूर हणवंत जागे लै लँगूर।
संकर जागे चरन सेव, कालि जागे नामां जैदैव॥

अक्रूर, हनुमान् और जयदेव की गिनती ज्ञानियों (जाग्रतों) में कैसे हुई, यह नहीं कह सकते। नामदेवजी जाति के दर्जी थे और दक्षिण के सतारा जिले के नरसी बमनी नामक स्थान में उत्पन्न हुए थे। पंढरपुर में विठोवाजी का मंदिर है। ये उनके बड़े भक्त थे। पहले ये सगुणोपासक थे, परंतु आगे चलकर इनका झुकाव निर्गुण भक्ति की ओर हो गया, जैसा उनके गायनों के नीचे दिए उदाहरणों से पता चलेगा—

(क) दशरथराय नंद राजा मेरा रामचंद्र,
प्रणवै नामा तत्व रस अमृत पीजै॥

*   *   *   *

धनि धनि मेघा रोमावली। धनि धनि कृष्ण ओढ़े काँवली॥
धनि धनि तू माता देवकी। जिह घर रमैया कँवलापती॥
धनि धनि बन खंड बृंदाबना। जहँ खेलैं श्रीनारायना॥
बेनु बजावैं, गोधन चारैं। नामे का स्वामी आनंद करैं॥

(ख) पांडे तुम्हारी गायत्री लोधे का खेत खाती थी।
लैकरि ठेंगा टँगरी तोरी लंगत लंगत जाती थी॥
पांडे तुम्हारा महादेव धौले बलद चढ़ा आवत देखा था।
पांडे तुम्हारा रामचंद्र सो भी आवत देखा था॥
रावन सेंती सरवर होइ घर की जोय गँवाई थी।

कबीर के पीछे तो संतों की मानो बाढ़ सी आ गई और अनेक मत चल पड़े। पर सब पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है।

नानक, दादू, शिवनारायण, जगजीवनदास आदि जितने प्रमुख संत हुए, सब ने कबीर का अनुकरण किया और अपना अपना अलग मत चलाया। इनके विषय की मुख्य बातें ऊपर आ गई हैं, फिर भी कुछ बातों पर ध्यान दिलाना आवश्यक है। सब ने नाम, शब्द, सद्गुरु आदि की महिमा गाई है और मूर्तिपूजा, अवतार-वाद तथा कर्मकांड का विरोध किया है; तथा जाति पाँति का भेद-भाव मिटाने का प्रयत्न किया है, परंतु हिंदू जीवन में व्याप्त सगुण भक्ति और कर्म-कांड के प्रभाव से इनके प्रवर्तित मतों के अनुयायियों द्वारा वे स्वयं परमात्मा के अवतार माने जाने लगे हैं, और उनके मतों में भी कर्म-कांड का पाखंड घुस गया है। कई मतों में केवल द्विज लिए जाते हैं। केवल नानकदेवजी का चलाया सिक्ख संप्रदाय ही ऐसा है जिसमें जाति पाँति का भेद नहीं आने पाया, परंतु उसमें भी कर्मकांड की प्रधानता हो गई है और ग्रंथ-साहब का प्रायः वैसा ही पूजन किया जाता है जैसा मूर्तिपूजक मूर्ति का करते हैं। कबीर-दास के मन गढ़ंत चित्र बनाकर उनकी पूजा कबीरपंथी मठों में भी होने लग गई है और सुमरनी आदि का प्रचार हो गया है।

यद्यपि आगे चलकर निर्गुण संत मतों का वैष्णव संप्रदायों से बहुत भेद हो गया, तथापि इसमें संदेह नहीं कि संत धारा का उद्गम भी वैष्णव भक्ति रूपी स्रोत से ही हुआ है। श्रीरामानुज ने संवत् ११४४ में यादवाचल पर नारायण की मूर्ति स्थापित करके दक्षिण में वैष्णव धर्म का प्रवाह चलाया था, पर उनकी भक्ति का आधार ज्ञानमार्गी अद्वैतवाद था, उनका अद्वैत विशिष्टाद्वैत हुआ। गुजरात में माधवाचार्य ने द्वैतमूलक वैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया। जो कुछ कहा जा चुका है, उससे पता चलेगा कि संतधारा अधिक-तर ज्ञानमार्ग के ही मेल में रही। पर उधर बंगाल में महाप्रभु चैतन्य देव और उत्तर भारत में वल्लभाचार्यजी के प्रभाव से भक्ति के

लिये परमात्मा के सगुण रूप की प्रतिष्ठा की गई, यद्यपि सिद्धांत रूप में ज्ञानमार्ग का त्याग नहीं किया गया। और तो और, तुलसीदासजी तक ने ज्ञानमार्ग की बातों का निरूपण किया है, यद्यपि उन्होंने उन्हें गौण स्थान दिया है। संतों में भी कहीं कहीं अनजान में सगुणवाद आ गया है और विशेष कर कबीर में, क्योंकि भक्ति गुणों का आश्रय पाकर ही हो सकती है। शुद्ध ज्ञानाश्रयी उपनिषदों तक में उपासना के लिये ब्रह्म में गुणों का आरोप किया गया है। फिर भी तथ्य की बात यह जान पड़ती है कि जब वैष्णव संप्रदाय ने आगे चलकर व्यवहार में सगुण भक्ति का आश्रय लिया, तब भी संत मतों ने ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्ति ही से अपना संबंध रखा।

यहाँ पर यह कह देना उचित जँचता है कि कबीर सारतः वैष्णव थे। अपने आपको उन्होंने वैष्णव तो कहीं नहीं कहा है, परंतु वैष्णवों की जितनी प्रशंसा की है, उससे उनकी वैष्णवता का बहुत पुष्ट प्रमाण मिलता है—

मेरे संगी द्वी जणा एक वैष्णव एक राम।
वो है दाता मुक्ति का वो सुमिरावै नाम॥
कबीर धनि ते सुंदरी जिनि जाया वैसनौं पूत।
राम सुमिरि निरभै हुआ सब जग गया अऊत॥
साकत बाभँण मति मिलै वैसनौं मिलै चँडाल।
अंकमाल दे भेटिए मानौ मिले गोपाल॥

शाक्तों की निंदा के लिये यह तत्परता उनकी वैष्णवता का ही फल है। शाक्त को उन्होंने कुत्ता तक कह डाला है—

साकत सुनहा दूनो भाई, एक नींदै एक भौंकत जाई।

जो कुछ संदेह उनकी वैष्णवता में रह जाता है, वह रामानंदजी को गुरु बनाने की उनकी आकुलता से दूर हो जाना चाहिए। अन्य वैष्णवों में और उनमें जो भेद दिखाई देता है उसका कारण,

जैसा कि हम आगे चलकर बतलावेंगे, उनके सिद्धांत और व्यवहार में भेद न रखने का फल है।

कबीरदास के जीवनचरित्र के संबंध में तथ्य की बातें बहुत कम ज्ञात हैं; यहाँ तक कि उनके जन्म और मरण के संवतों के विषय में भी अब तक कोई निश्चित बात नहीं ज्ञात हुई है। कबीरदास के विषय में लोगों ने जो कुछ लिखा है, सब जनश्रुतियों के आधार पर है। इनका समय भी अनुमान के आधार पर निश्चित किया गया है।

काल-निर्णय

डा० हंटर ने इनका जन्म संवत् १४३७ में और विल्सन साहब ने मृत्यु संवत् १५०५ में मानी है। रेवरेंड वेस्टकाट के अनुसार इनका जन्म संवत् १४९७ में और मृत्यु सं० १५७५ में हुई। कबीर-पंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रसिद्ध है—

चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए॥
घन गरजे दामिनि दमके बूँदें बरषें झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट हुए॥

यह पद्य कबीरदास के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदास का कहा हुआ बताया जाता है। इसके अनुसार कबीरदास का जन्म लोगों ने संवत् १४५५ ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चंद्रवार को माना है, परंतु गणना करने से संवत् १४५५ में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चंद्रवार को नहीं पड़ती। पद्य को ध्यान से पढ़ने पर संवत् १४५६ निकलता है, क्योंकि उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा है "चौदह सौ पचपन साल गए" अर्थात् उस समय तक संवत् १४५५ बीत गया था।

ज्येष्ठ मास वर्ष के आरंभिक मासों में है, अतएव उसके लिये चौदह सौ पचपन साल गए लिखना स्वाभाविक भी है, क्योंकि वर्षारंभ में नवीन संवत् लिखने का उतना अभ्यास नहीं रहता।
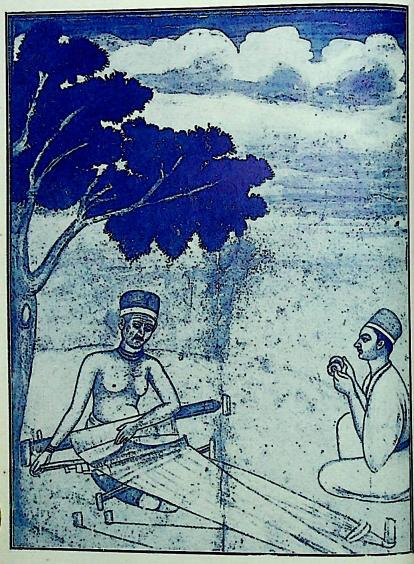
महात्मा कबीरदास

इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

१४५६ में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चंद्रवार को ही पड़ती है। अतएव यही संवत् कबीर के जन्म का ठीक संवत् जान पड़ता है।

इनके निधन के संबंध में दो तिथियाँ प्रसिद्ध हैं—

(१) संवत् पंद्रह सौ औ पाँच मौ, मगहर कियो गमन।
अगहन सुदी एकादसी, मिले पवन में पवन ॥

(२) संवत् पंद्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गवन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पवन में पवन ॥

एक के अनुसार इनका परलोकवास संवत् १५०५ में और दूसरे के अनुसार १५७५ में ठहरता है। दोनों तिथियों में ७० वर्ष का अंतर है। वार न दिए रहने के कारण ज्योतिष की गणना से तिथियों की जाँच नहीं की जा सकती।

डाकृर फ्यूरर ने अपने 'मानुमेंटल एंटीक्विटीज़ आफ दि नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज़' नामक ग्रंथ में लिखा है कि बस्ती जिले के मगहर ग्राम में, आमी नदी के दक्षिण तट पर, कबीरदास जी का रौजा है जिसे सन् १४५० (संवत् १५०७) में बिजलीखाँ ने बनवाया और जिसका जीर्णोद्धार सन् १५६७ (संवत् १६२४) में नवाब फिदाई खाँ ने कराया। यदि ये संवत् ठीक हैं तो कबीर की मृत्यु संवत् १५०७ के पहले ही हो चुकी थी। इस बात को ध्यान में रखकर देखने से १५०५ ही इनका निधन संवत् ठहरता है, और इनका जन्म संवत् १४५६ मान लेने से इनकी आयु केवल ४९ वर्ष की ठहरती है। मेरा अनुमान था कि डाकृर फ्यूरर ने मगहर के रौजे के बनने तथा जीर्णोद्धार के संवत् उसमें खुदे किसी शिलालेख के आधार पर दिए होंगे। इस अनुमान से मैं बहुत प्रसन्न था कि इस शिलालेख के आधार पर कबीरजी का समय निश्चित हो जायगा; पर पूछ ताछ करने पर पता लगा कि वहाँ कोई शिलालेख नहीं है। डाकृर साहब ने जिस ढंग से ये संवत् दिए हैं,

उससे तो यही जान पड़ता है कि उनके पास कोई आधार अवश्य था। परंतु जब तक उस आधार का पता नहीं लगता, तब तक मैं पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इन संवतों को निश्चित मानने में असमर्थ हूँ। और भी कई बातें हैं जिनसे इन संवतों को अप्रामाणिक मानने को ही जी चाहता है। इन पर आगे विचार किया जाता है।

यह बात प्रसिद्ध है कि कबीरदास सिकंदर लोदी के समय में हुए थे और उसके कोप के कारण ही उन्हें काशी छोड़कर मगहर जाना पड़ा था। सिकंदर लोदी का राजत्वकाल सन् १५१७ (संवत् १५७४) से सन् १५२६ (संवत् १५८३) तक माना जाता है। इस अवस्था में यदि कबीर का निधन संवत् १५०५ मान लिया जाय तो उनका सिकंदर लोदी के समय में वर्तमान रहना असंभव सिद्ध होता है।

गुरु नानकदेवजी ने कबीर की अनेक साखियों और पदों को आदि-ग्रंथ में उद्धृत किया है। गुरु नानकजी का जन्म संवत् १५२६ में और मृत्यु संवत् १५९६ में हुई। रेवरेंड वेस्टकाट लिखते हैं कि जब नानक २७ वर्ष के थे, तब कबीरदासजी से उनकी भेंट हुई थी। नानकदेवजी पर कबीरदास का इतना स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है कि इस घटना को सत्य मानने की प्रवृत्ति होती है, जिससे कबीर का संवत् १५५६ में वर्तमान रहना मानना पड़ता है। परंतु संवत् १५०५ में कबीर की मृत्यु मानने से यह घटना असंभव हो जाती है।

जिन दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस ग्रंथावली का संपादन हुआ है, उनमें से एक संवत् १५६१ की लिखी है। यदि कबीर जी की मृत्यु १५०५ में हुई तो यह प्रतिलिपि उनकी मृत्यु के ५६ वर्ष पीछे तैयार की गई होगी। ऐसा प्रसिद्ध है कि कबीरदासजी के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदासजी ने संवत् १५२१ में, जब कि कबीरदासजी की आयु ६५ वर्ष की थी, अपने गुरु के वचनों का संग्रह किया था। जिस ढंग से कबीरदासजी की वाणी

का संग्रह इस प्रति में किया गया है, उसे देखकर यह मानना पड़ेगा कि यह पहला संकलन नहीं था, वरन् अन्य संकलनों के आधार पर पीछे से किया गया था, अथवा कोई आश्चर्य नहीं कि धर्मदास के संग्रह के ही आधार पर इसका संकलन किया गया हो* ।

इस ग्रंथावली में कबीरदासजी के दो चित्र दिए गए हैं—एक युवावस्था का और दूसरा वृद्धावस्था का। पहला चित्र कलकत्ता म्यूजियम से प्राप्त हुआ है और दूसरा मुझे कबीरपंथी स्वामी युगलानंदजी से मिला है। मिलान करने से दोनों चित्र एक ही व्यक्ति के नहीं मालूम पड़ते, दोनों की आकृतियों में बड़ा अंतर है। यदि दोनों नहीं तो इनमें से कोई एक अवश्य अप्रामाणिक होगा, दोनों ही अप्रामाणिक हो सकते हैं, परन्तु श्रीयुत युगलानंदजी वृद्धावस्थावाले चित्र के लिये अत्यन्त प्रामाणिकता का दावा करते हैं, जो ४८ वर्ष से अधिक अवस्थावाले व्यक्ति का ही हो सकता है। नहीं कह सकते कि यह दावा कहाँ तक साधार और सत्य है परंतु यदि यह ठीक है तो मानना पड़ेगा कि कबीरदासजी की मृत्यु संवत् १५०५ के बहुत पीछे हुई।

इन सब बातों पर एक साथ विचार करने से यही संभव जान पड़ता है कि कबीरदासजी का जन्म १४५६ में और मृत्यु संवत्

---

* ग्रंथ-साहब में कबीरदास की बहुत सी साखियाँ और पद दिए हैं। उनमें से बहुत से ऐसे हैं जो सं० १५६१ की हस्तलिखित प्रति में नहीं हैं। इससे यह मानना पड़ेगा कि या तो यह संवत् १५६१ वाली प्रति अधूरी है अथवा इस प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष के अंदर बहुत सी साखियाँ आदि कबीरदासजी के नाम से प्रचलित हो गई थीं, जो कि वास्तव में उनकी न थीं। यदि कबीरदास का निधन संवत् १५७५ में मान लिया जाता है तो यह बात असंगत नहीं जान पड़ती कि इस प्रति के लिखे जाने के अनंतर १४ वर्ष तक कबीरदासजी जीवित रहे और इस बीच में उन्होंने और बहुत से पद बनाए हों जो ग्रंथ-साहब में सम्मिलित कर लिए गए हों।

१५७५ में हुई होगी। इस हिसाब से उनकी आयु ११९ वर्ष की होती है, जिस पर बहुत लोगों की विश्वास करने की प्रवृत्ति न होगी परंतु जो इस युग में भी असंभव नहीं है।

यह कहा ही जा चुका है कि कबीरदासजी के जीवन की घटनाओं के संबंध में कोई निश्चित बात ज्ञात नहीं होती क्योंकि उन सबका आधार जनसाधारण और विशेष कर कबीर-पंथियों में प्रचलित दंतकथाएँ हैं। कहते हैं

माता पिता

कि काशी में एक सात्विक ब्राह्मण रहते थे जो स्वामी रामानंदजी के बड़े भक्त थे। उनकी एक विधवा कन्या थी। उसे साथ लेकर एक दिन वे स्वामीजी के आश्रम पर गए। प्रणाम करने पर स्वामीजी ने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण देवता ने चौंक-कर जब पुत्री का वैधव्य निवेदन किया तब स्वामीजी ने सखेद कहा कि मेरा वचन तो अन्यथा नहीं हो सकता; परंतु इतने से संतोष करो कि इससे उत्पन्न पुत्र बड़ा प्रतापी होगा। आशीर्वाद के फल-स्वरूप में जब इस ब्राह्मण-कन्या का पुत्र उत्पन्न हुआ तो लोकलज्जा और लोकापवाद के भय से उसने उसे लहर तालाब के किनारे डाल दिया। भाग्यवश कुछ ही क्षण के पश्चात् नीरू नाम का एक जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उधर से आ निकला। इस दंपति के कोई पुत्र न था। बालक का रूप पुत्र के लिये लालायित दंपति के हृदयों पर चुभ गया और वे इसी बालक का भरण पोषण कर पुत्रवान् हुए। आगे चलकर यही बालक परम भगवद्भक्त कबीर हुआ। कबीर का विधवा ब्राह्मणकन्या का पुत्र होना असंभव नहीं, किंतु स्वामी रामानंदजी के आशीर्वाद की बात ब्राह्मण-कन्या का कलंक मिटाने के उद्देश्य से ही पीछे से जोड़ी गई जान पड़ती है, जैसे कि अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों के संबंध में जोड़ी गई हैं। मुसलमान घर में पालित होने पर भी कबीर का हिंदू विचारों में सराबोर

होना उनके शरीर में प्रवाहित होनेवाले ब्राह्मण, अथवा कम से कम हिंदू रक्त की ही ओर संकेत करता है। स्वयं कबीरदास ने अपने माता पिता का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है, और जहाँ कहीं उन्होंने अपने संबंध में कुछ कहा भी है वहाँ अपने को जुलाहा और बनारस का रहनेवाला बताया है।

जाति जुलाहा मति को धीर। हरषि हरषि गुण रमै कबीर ॥

मेरे राम की अभैपद नगरी, कहै कबीर जुलाहा।

तू ब्राह्मन मैं कासी का जुलाहा।

परंतु जान पड़ता है कि उनकी हार्दिक इच्छा यही थी कि यदि मेरा ब्राह्मण कुल में जन्म हुआ होता तो अच्छा होता। पूर्व जन्म में अपने ब्राह्मण होने की कल्पना कर वे अपना परितोष कर लेते हैं। एक पद में वे कहते हैं—

पूरब जनम हम ब्राह्मन होते वोछे करम तप हीना।

रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना ॥

ग्रंथ-साहब में कबीरदास का एक पद दिया है जिसमें कबीर-दास कहते हैं—"पहले दर्सन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई।" एक दूसरे पद में कबीरदास कहते हैं—"तेरे भरोसे मगहर बसियो मेरे तन की तपन बुझाई"। यह तो प्रसिद्ध ही है कि कबीरदास अंत में मगहर में जाकर बसे और वहीं उनका परलोकवास हुआ। पर "पहले दर्सन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई" से तो यह ध्वनि निकलती है कि उनका जन्म ही मगहर में हुआ था और फ़िर ये काशी में आकर बस गए और अंत में फिर मगहर में जाकर पर-लोक सिधारे। तो क्या विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से जन्म पाने और नीरू तथा नीमा से पालित पोषित होने की समस्त कथा केवल मन-गढ़ंत है और उसमें कुछ भी सार नहीं? यह विषय विशेष रूप से विचारणीय है।

कुछ लोग कबीर को नीरू और नीमा का औरस पुत्र मानते हैं, परंतु इस मत के पक्ष में कोई ससार प्रमाण अब तक किसी ने नहीं दिया। स्वयं कबीर की एक उक्ति हम ऊपर दे चुके हैं जिससे उनका जन्म से मुसलमान न होना प्रकट होता है; परंतु "जैर खुदाई तुरक मोहि करता आपै कटि किन जाई" से यह ध्वनित होता है कि वे मुसलमान माता पिता की संतति थे। सब बातों पर विचार करने से इसी मत के ठीक होने की अधिक संभावना है कि कबीर ब्राह्मणी या किसी हिंदू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमान परिवार में लालित पालित हुए थे। कदाचित् उनका बालकपन मगहर में बीता हो और वे पीछे से आकर काशी में बसे हों, जहाँ से अंतकाल के कुछ पूर्व उन्हें पुनः मगहर जाना पड़ा हो।

गुरु

किंवदंती है कि जब कबीर भजन गा गाकर उपदेश देने लगे, तब उन्हें पता चला कि बिना किसी गुरु से दीक्षा लिए हमारे उपदेश मान्य नहीं होंगे क्योंकि लोग उन्हें 'निगुरा' कहकर चिढ़ाते थे। लोगों का कहना था कि जिसने किसी गुरु से उपदेश नहीं ग्रहण किया, वह औरों को क्या उपदेश देगा? अतएव कबीर को किसी को गुरु बनाने की चिंता हुई। कहते हैं, उस समय स्वामी रामानंदजी काशी में सबसे प्रसिद्ध महात्मा थे। अतएव कबीर उन्हीं की सेवा में पहुँचे। परंतु उन्होंने कबीर के मुसलमान होने के कारण उनको अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। इस पर कबीर ने एक चाल चली जो अपना काम कर गई। रामानंदजी पंचगंगा घाट पर नित्य प्रति प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में ही स्नान करने जाया करते थे। उस घाट की सीढ़ियों पर कबीर पहले ही से जाकर लेट रहे। स्वामीजी जब स्नान करके लौटे तो उन्होंने अँधेरे में इन्हें न देखा। उनका पाँव इनके सिर पर पड़ गया जिस पर स्वामीजी के मुँह से 'राम राम'

निकल पड़ा। कबीर ने चट उठकर उनके पैर पकड़ लिए और कहा कि आप राम नाम का मंत्र देकर आज मेरे गुरु हुए हैं। रामानंदजी से कोई उत्तर देते न बना। तभी से कबीर ने अपने को रामानंद का शिष्य प्रसिद्ध कर दिया।

'काशी में हम प्रगट भये हैं रामानंद चेताए' कबीर का यह वाक्य इस बात के प्रमाण में प्रस्तुत किया जाता है कि रामानंदजी उनके गुरु थे। जिन प्रतियों के आधार पर इस ग्रंथावली का संपादन किया गया है, उनमें यह वाक्य नहीं है और न ग्रंथ-साहब ही में यह मिलता है। अतएव इसको प्रमाण मानकर इसके आधार पर कोई मत स्थिर करना उचित नहीं जँचता। केवल किंवदंती के आधार पर रामानंदजी को उनका गुरु मान लेना ठीक नहीं। यह किंवदंती भी ऐतिहासिक जाँच के सामने ठीक नहीं ठहरती। रामानंदजी की मृत्यु अधिक से अधिक देर में मानने से संवत् १४६७ में हुई, इससे १४ या १५ वर्ष पहले भी उसके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था ११ वर्ष की रही होगी; क्योंकि हम ऊपर उनका जन्म संवत् १४५६ सिद्ध कर आए हैं। ११ वर्ष के बालक का घूम फिरकर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्य नहीं होता। और यदि रामानंदजी की मृत्यु संवत् १४५२-५३ के लगभग हुई तो यह किंवदंती झूठ ठहरती है; क्योंकि उस समय तो कबीर को संसार में आने के लिये अभी तीन चार वर्ष रहे होंगे।

पर जब तक कोई विरुद्ध दृढ़ प्रमाण नहीं मिलते, तब तक हम इस लोक-प्रसिद्ध बात को, कि रामानंदजी कबीर के गुरु थे, बिल्कुल असत्य भी नहीं ठहरा सकते। हो सकता है कि बाल्यकाल में बार बार रामानंदजी के साक्षात्कार तथा उपदेश-श्रवण से ('गुरु के सबद मेरा मन लागा'') अथवा दूसरों के मुँह से उनके गुण तथा

उपदेश सुनने से बालक कबीर के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ गया हो जिसके कारण उन्होंने आगे चलकर उन्हें अपना मानस गुरु मान लिया हो। कबीर मुसलमान माता पिता की संतति हों चाहे न हों, किंतु मुसलमान के घर में लालित पालित होने पर भी उनका हिंदू विचार-धारा में आप्लावित होना उन पर बाल्यकाल ही से किसी प्रभावशाली हिंदू का प्रभाव होना प्रदर्शित करता है।

हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई सिर तैं उतरया बोझ॥

से प्रगट होता है कि अपने गुरु रामानंद से प्रभावित होने से पहले कबीर पर हिंदू प्रभाव पड़ चुका था जिससे वे मुसलमान कुल में परि-पालित होने पर भी "पाहन" पूजनेवाले हो गए थे। कबीर केवल लोगों के कहने से कोई काम करनेवाले नहीं थे। उन्होंने अपना सारा जीवन ही अपने समय के अंध विश्वासों के विरुद्ध लगा दिया था। यदि स्वयं उनका हार्दिक विश्वास न होता कि गुरु बनाना आवश्यक है, तो वे किसी के कहने की परवा न करते। किंतु उन्होंने स्वयं कहा है—

"गुरु बिन चेला ज्ञान न लहै।"
"गुरु बिन इह जग कौन भरोसा काके संग ह्वै रहिए।"

परंतु वे गुरु और शिष्य का शारीरिक साक्षात्कार आवश्यक नहीं समझते थे। उनका विश्वास था कि गुरु के साथ मानसिक साक्षात्कार से भी शिष्य के शिष्यत्व का निर्वाह हो सकता है—

"कबीर गुरु बसै बनारसी सिष समंदर तीर।
बिसरया नहीं बीसरै जे गुण होई सरीर॥"

कबीर अपने आप में शिष्य के लिये आवश्यक गुणों का अभाव नहीं समझते थे। वे उन 'एक आध' में से थे जो गुरु के ज्ञान से अपना उद्धार कर सकते थे, जिनके संबंध में कबीर ने कहा है—

"माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत।
कहैं कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरंत॥"

मुसलमान कबीरपंथियों का कहना है कि कबीर ने सूफी फकीर शेख तकी से दीक्षा ली थी। कबीर ने अपने गुरु के बनारस-निवासी होने का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस कारण ऊँजी के पीर और शेख तकी उनके गुरु नहीं हो सकते। 'घट घट है अबिनासी सुनहु तकी तुम शेख' में उन्होंने तकी का नाम उस आदर से नहीं लिया है जिस आदर से गुरु का नाम लिया जाता है और जिसके प्रभाव से कबीर ने असंभव का भी संभव होना लिखा है—

गुरु प्रसाद सूई कै नाकैं हस्ती आवैं जाहिं॥

बल्कि वे तो उलटे तकी को ही उपदेश देते हुए जान पड़ते हैं। यद्यपि यह वाक्य इस ग्रंथावली में कहीं नहीं मिलता फिर भी स्थान स्थान पर "शेख" शब्द का प्रयोग मिलता है जो विशेष आदर से नहीं लिया गया है वरन् जिसमें फटकार की मात्रा ही अधिक देख पड़ती है। अतः तकी कबीर के गुरु तो हो नहीं सकते, हाँ यह हो सकता है कि कबीर कुछ समय तक उनके सत्संग में रहे हों, जैसा कि नीचे लिखे वचनों से भी प्रकट होता है। पर यह स्वयं कबीर के वचन हैं, इसमें भी संदेह है—

मानिकपुरहि कबीर बसेरी मदहति सुनि शेख तकि केरी।
ऊजी सुनी जौनपुर थाना झूँसी सुनि पीरन के नामा॥

परंतु इसके अनंतर भी वे जीवन पर्यंत राम नाम रटते रहे जो स्पष्टतः रामानंद के प्रभाव का सूचक है। अतएव स्वामी रामानंद को कबीर का गुरु मानने में कोई अड़चन नहीं है; चाहे उन्होंने स्वयं उन्हीं से मंत्र ग्रहण किया हो अथवा उन्हें अपना मानस गुरु बनाया हो। उन्होंने किसी मुसलमान फकीर को अपना गुरु बनाया हो इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

धर्मदास और सुरत गोपाल नाम के कबीर के दो चेले हुए। धर्मदास बनिए थे। उनके विषय में लोग कहते हैं कि वे पहले मूर्तिपूजक थे; उनका कबीर से पहले पहल काशी में साक्षात्कार हुआ था। उस समय कबीर ने उन्हें मूर्तिपूजक होने के कारण खूब फटकारा था। फिर वृंदावन में दोनों की भेंट हुई। उस समय उन्होंने कबीर को पहचाना नहीं; पर बोले—"तुम्हारे उपदेश ठीक वैसे ही हैं जैसे एक साधु ने मुझे काशी में दिए थे।" इस समय कबीर ने उनकी मूर्ति को, जिसे वे पूजा के लिये सदैव अपने साथ रखते थे, जमुना में डाल दिया। तीसरी बार कबीर स्वयं उनके घर बाँदोगढ़ पहुँचे। वहाँ उन्होंने उनसे कहा कि तुम उसी पत्थर की मूर्ति पूजते हो जिसके तुम्हारे तौलने के बाट हैं। उनके दिल में यह बात बैठ गई और वे कबीर के शिष्य हो गए। कबीर की मृत्यु के बाद धर्मदास ने छत्तीसगढ़ में कबीरपंथ की एक अलग शाखा चलाई और सुरत गोपाल काशीवाली शाखा की गद्दी के अधिकारी हुए। धीरे धीरे दोनों शाखाओं में बहुत भेद हो गया।

शिष्य

कबीर कर्मकांड को पाखंड समझते थे और उसके विरोधी थे; परंतु आगे चलकर कबीरपंथ में कर्मकांड की प्रधानता हो गई। कंठी और जनेऊ कबीर पंथ में भी चल पड़े। दीक्षा से मृत्यु पर्यंत कबीरपंथियों को कर्मकांड की कई क्रियाओं का अनुसरण करना पड़ता है। इतनी बात अवश्य है कि कबीर पंथ में जात पाँत का कोई भेद नहीं और हिंदू मुसलमान दोनों धर्म के लोग उसमें सम्मिलित हो सकते हैं। परंतु ध्यान रखने की बात यह है कि कबीर पंथ में जाकर भी हिंदू मुसलमान का भेद नहीं मिट जाता। हिंदू धर्म का प्रभाव इतना व्यापक है कि उससे अलग होने पर भी भारतीय नए नए मत अन्त में उसके प्रभाव से नहीं बच सकते।

कबीर के साथ प्रायः लोई का भी नाम लिया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि यह कबीर की शिष्या थी और आजन्म उनके साथ रही। अन्य इसे उनकी परिणीता स्त्री बताते हैं और कहते हैं कि इसके गर्भ से कबीर को कमाल नाम का पुत्र और कमाली नाम की पुत्री हुई। कबीर ने लोई को संबोधन करके कई पद कहे हैं। एक पद में वे कहते हैं—

गार्हस्थ्य जीवन

रे यामें क्या मेरा क्या तेरा, लाज न मरहिं कहत घर मेरा।

... ...

कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम बिनसि रहेगा सोई॥

इसमें लोई और कबीर का एक घर होना कहा गया है जिससे लोई का कबीर की स्त्री होना ही अधिक संभव जान पड़ता है। कबीर ने कामिनी की बहुत निंदा की है। संभवतः इसी लिये लोई के संबंध में उसकी पत्नी के स्थान में शिष्या होने की कल्पना की गई है।

नारि नसावै तीनि सुख, जा नर पासैं होइ।
भगति मुकत्ति निज ज्ञान मैं, पैसि न सकई कोइ॥
एक कनक अरु कामिनी, विष फल कीएउ पाइ।
देखे ही थै विष चढ़े, खाए सूँ मरि जाइ॥

परंतु कामिनी कांचन की निंदा के उनके वाक्य वैराग्यावस्था के समझने चाहिएँ। यह अधिक संगत जान पड़ता है कि लोई कबीर की पत्नी थी जो कबीर के विरक्त होकर नवीन पंथ चलाने पर उनकी अनुगामिनी हो गई। कहते हैं कि लोई एक बनखंडी वैरागी की परिपालिता कन्या थी। यह लोई उस वैरागी को स्नान करते समय लोई में लपेटी और टोकरी में रखी हुई गंगाजी में बहती हुई मिली थी। लोई में लपेटी हुई मिलने के कारण ही उसका नाम लोई पड़ा था। वनखंडी बैरागी की मृत्यु के बाद एक दिन कबीर उसकी कुटिया में गए। वहाँ अन्य संतों के साथ उन्हें भी दूध पीने

को दिया गया, औरों ने तो दूध पी लिया, पर कबीर ने अपने हिस्से का रख छोड़ा। पूछने पर उन्होंने कहा कि गंगा पार से एक साधु आ रहे हैं; उन्हीं के लिये रख छोड़ा है। थोड़ी देर में सच-मुच एक साधु आ पहुँचा जिससे अन्य साधु कबीर की सिद्धई पर आश्चर्य करने लगे। उसी दिन से लोई उनके साथ हो ली।

कबीर की संतति के विषय में भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। कहते हैं कि उनका पुत्र कमाल उनके सिद्धांतों का विरोधी था। इसी से कबीर ने कहा है—

बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छाँड़ि के, घर ले आया माल॥

इस दोहे के भी कबीर-कृत होने में संदेह ही है। परंतु कमाल के कई पद ग्रंथ-साहब में सम्मिलित किए गए हैं।

कबीर के विषय में कई आश्चर्यजनक कथाएँ प्रसिद्ध हैं जिनसे उनमें लोकोत्तर शक्तियों का होना सिद्ध किया जाता है। महा-

अलौकिक कृत्य

त्माओं के विषय में प्रायः ऐसी कल्पनाएँ की ही जाती हैं। यद्यपि इस युग में इस प्रकार की बातों पर शिक्षित और समझदार लोग विश्वास नहीं करते; परंतु फिर भी महात्मा गाँधी के विषय में भी असहयोग के समय में ऐसी कई गप्पें उड़ी थीं। अतएव हम उन सबका उल्लेख करके व्यर्थ ही इस प्रस्तावना का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं समझते। यहाँ एक ही कथा दे देना पर्याप्त होगा जिसके लिये कुछ स्पष्ट आधार भी है।

कहते हैं कि एक बार सिकंदर लोदी के दरबार में कबीर पर अपने आपको ईश्वर कहने का अभियोग लगाया गया। काजी ने उन्हें काफिर बताया और उनको मंसूर हल्लाज की भाँति मृत्यु दंड की आज्ञा हुई। बेड़ियों से जकड़े हुए कबीर नदी में फेंक दिए गए। परंतु जिन कबीर को माया मोह की शृंखला न बाँध सकती थी,

जिनकी पाप की बेड़ियाँ कट चुकी थीं उन्हें ये जंजीरें बाँधे न रख सकीं और वे तैरते हुए नदी तट पर आ खड़े हुए। अब काजी ने उन्हें धधकते हुए अग्निकुंड में डलवाया। किंतु उनके प्रभाव से आग बुझ गई और कबीर की दिव्य देह पर आँच तक न आई। उनके शरीर-नाश के इस उद्योग के भी निष्फल हो जाने पर उन पर एक मस्त हाथी छोड़ा गया। उनके पास पहुँचकर हाथी उन्हें नमस्कार कर चिंघाड़ता हुआ भाग खड़ा हुआ। इस कथा का आधार कबीर का यह पद कहा जाता है—

> अहो मेरे गोव्यंद तुम्हारा जोर, काजी बकिवा हस्ती तोर ॥
> बाँधि भुजा भलैं करि डारयो, हस्ती कोपि मूँड़ मैं मारयो ॥
> भाग्यो हस्ती चीसा मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी ॥
> महावत तोकूँ मारौं साँटी, इसहि मराऊँ घालौं काटी ॥
> हस्ती न तोरै धरै धियान, वाकै हिरदै बसै भगवान ॥
> कहा अपराध संत हौ कीन्हाँ, बांधि पोट कुंजर कू दीन्हाँ ॥
> कुंजर पोट बहु बंदन करै, अजहुँ न सूझै काजी अँधरै ॥
> तीनि बेर पतियारा लीन्हां, मन कठोर अजहूँ न पतीनां ॥
> कहै कबीर हमारै गोव्यंद, चौथे पद मैं जन को गयंद ॥

परंतु यह पद प्राचीन प्रतियों में नहीं मिलता। यदि यह कबीरजी का ही कहा हुआ है तो इस पद से केवल यह प्रकट होता है कि उनको मारने के तीनों प्रयत्न हाथो ही के द्वारा किए गए थे, क्योंकि इसमें उनके नदी में फेंके जाने या आग में जलाए जाने का कोई उल्लेख नहीं है।

ग्रंथ-साहब में कबीरजी का यह पद भी मिलता है जो गंगा में जंजीर से बाँधकर फेंके जानेवाली कथा से संबंध रखता है।

> गंग गुसाइन गहिर गँभीर। जंजीर बाँधि करि खरे कबीर।
> गंगा की लहरि मेरी टूटी जंजीर। मृगछाला पर बैठे कबीर ॥

कबीर का जीवन अंधविश्वासों का विरोध करने में ही बीता था। अपनी मृत्यु से भी उन्होंने इसी उद्देश्य की पूर्त्ति की।

मृत्यु

काशी मोक्षदापुरी कही जाती है। मुक्ति की कामना से लोग काशीवास करके यहाँ तन त्यागते हैं और मगहर में मरने का अनिवार्य परिणाम या फल नरक-गमन माना जाता है। यह अंधविश्वास अब तक चला आता है। कहते हैं कि इसी के विरोध में कबीर मरने के लिये काशी छोड़कर मगहर चले गए थे। वे अपनी भक्ति के कारण ही अपने आप को मुक्ति का अधिकारी समझते थे। उन्होंने कहा भी है—

जौ कासी तन तजै कबीरा तौ रामहिं कहा निहोरा रे !

इस अंधविश्वास का उन्होंने जगह जगह खंडन किया है—

(क) हिरदै कठोर मर्‌या बनारसी नरक न बंच्या जाई।
हरि को दास मरै जो मगहर सेन्या सकल तिराई॥
(ख) जस कासी तस मगहर ऊसर हृदय रामसति होई।

आदि-ग्रंथ में उनका नीचे लिखा पद मिलता है—

ज्यों जल छाड़ि बाहर भयो मीना। पूरब जनम हौं तप का हीना॥
अब कहु राम कवन गति मोरी। तजिले बनारस मति भइ थोरी॥
बहुत बरस तप कीया कासी। मरनु भया मगहर की बासी॥
कासी मगहर सम बीचारी। ओछी भगति कैसे उतरसि पारी॥
कहु गुर गजि सिव संभु को जानै। मुआ कबीर रमता श्री रामै॥

कबीर के ये वचन मरने के कुछ ही समय पहले के जान पड़ते हैं। आरंभिक चरणों में जो क्षोभ प्रकट किया गया है, वह इस लिये नहीं कि बनारस में मरने से उन्हें मुक्ति की आशा थी, वरन् इसलिये कि बनारस उनका जन्मस्थान था जो सभी को अत्यंत प्रिय होता है। बनारस के साथ वे अपना संबंध वैसा ही घनिष्ठ बतलाते हैं जैसा जल और मछली का होता है। काशी और मगहर

को वे अब भी समान समझते थे। अपनी मुक्ति के संबंध में उन्हें तनिक भी संदेह नहीं था; क्योंकि उन्हें परमात्मा की सर्वज्ञता में अटल विश्वास था 'शिव सम को जानै', और राम नाम का जाप करते करते वे शरीर त्यागने जा रहे थे। 'मुआ कबीर रमत श्री राम।'

उनकी अंत्येष्टि क्रिया के विषय में एक बहुत ही विलक्षण प्रवाद प्रसिद्ध है। कहते हैं कि हिन्दू उनके शव का अग्नि-संस्कार करना चाहते थे और मुसलमान उसे कब्र में गाड़ना चाहते थे। झगड़ा यहाँ तक बढ़ा कि तलवारें चलने की नौबत आ गई। पर हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के प्रयासी कबीर की आत्मा यह बात कब सहन कर सकती थी! उस आत्मा ने आकाशवाणी की 'लड़ो मत! कफन उठाकर देखो'। लोगों ने कफन उठाकर देखा तो शव के स्थान पर एक पुष्प-राशि पाई गई जिसको हिन्दू मुसलमान दोनों ने आधा आधा बाँट लिया। अपने हिस्से के फूलों को हिन्दुओं ने जलाया और उनकी राख को काशी ले जाकर समाधिस्थ किया। वह स्थान अब तक कबीर-चौरा के नाम से प्रसिद्ध है। अपने हिस्से के फूलों के ऊपर मुसलमानों ने मगहर ही में कब्र बनाई। यह कहानी भी विश्वास करने योग्य नहीं है परंतु इसका मूल भाव अमूल्य है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कबीर ने चाहे जिस प्रकार हो, रामानंद से रामनाम की दीक्षा ली थी; परन्तु कबीर के राम

तात्त्विक सिद्धांत

रामानंद के राम से भिन्न थे। वे 'दुष्टदलन रघुनाथ' नहीं थे जिनके सेवक 'अंजनि-पुत्र महाबलदायक, साधु संत पर सदा-सहायक' थे। राम से उनका अभिप्राय कुछ और ही था।

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना॥

राम से उनका तात्पर्य निर्गुण ब्रह्म से है। उन्होंने 'निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई' का उपदेश दिया है। उनकी राम-

भावना भारतीय ब्रह्मभावना से सर्वथा मिलती है। जैसा कि कुछ लोग भ्रमवश समझते हैं, वे बाह्यार्थवाद-मूलक मुसलमान एकेश्वरवाद या खुदावाद के समर्थक नहीं थे। निर्गुण भावना भी उनके लिये स्थूल भावना है जो मूर्त्तिपूजकों की सगुण भावना के विरोधी पक्ष का प्रदर्शन मात्र करती है। उनकी भावना इससे भी अधिक सूक्ष्म है। वे 'राम' को सगुण और निर्गुण दोनों से परे समझते हैं।

'अला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थैं सब जग कीया कौन भला कौन मंदा।'

यह मुसलमानों की ही तर्क-शैली का आश्रय लेकर 'खुदा के बंदों' और 'काफिरों' की एकता प्रतिपादित करने के लिये कहा जान पड़ता है, मुसलमानी मत के समर्थन में नहीं, क्योंकि उन्होंने स्वयं कहा है—

खालिक खलक, खलक में खालिक सब घट रह्यो समाई।

जो भारतीय ब्रह्मभावना के ही परम अनुकूल है।

कबीर केवल शब्दों को लेकर झगड़ा खड़ा करनेवाले नहीं थे। अपने भाव व्यक्त करने के लिये उन्होंने उर्दू, फारसी, संस्कृत आदि सभी शब्दों का उपयोग किया है। अपने भाव प्रकट करने भर से उन्होंने मतलब रखा है, शब्दों के लिये वे विशेष चिंतित नहीं दिखाई देते। ब्रह्म के लिये राम, रहीम, अल्ला, सत्य, नाम, गोव्यंद, साहब, आप आदि अनेक शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है। उन्होंने कहा भी है 'अपरंपार का नाउँ अनंत'। ब्रह्म के निरूपण के लिये शब्दों के प्रयोग में जो अत्यंत शुद्धता और सावधानी बहुत आवश्यक है, कबीर में उसे पाने की आशा करना व्यर्थ है, क्योंकि कबीर का तत्त्वज्ञान दार्शनिक ग्रंथों के अध्ययन का फल नहीं है, वह उनकी अनुभूति और सारग्राहिता का प्रसाद है। पढ़े लिखे तो वे थे ही नहीं, उन्होंने जो कुछ ज्ञान संचय किया, वह सब सत्संग और आत्मानुभव

से था। हिन्दू मुसलमान सभी संत फकीरों का इन्होंने समागम किया था; अतएव हिंदू भावों के साथ इनमें मुसलमानी भाव भी पाए जाते हैं। यद्यपि इनकी रचनाओं में भारतीय ब्रह्मवाद का पूरा पूरा ढाँचा पाया जाता है तथापि उसकी प्राय: वे ही बातें इन्होंने अधिक विस्तृत रूप से वर्णन के लिये उठाई हैं जो मुसलमानी एकेश्वरवाद के अधिक मेल में थीं। इनका ध्येय सर्वदा हिंदू मुस्लिम ऐक्य रहा है, यह भी इसका एक कारण है।

स्थूल दृष्टि से तो मूर्तिद्रोही एकेश्वरवाद और मूर्तिपूजक बहु-देववाद में बहुत बड़ा अंतर है; परंतु यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो उनमें उतना अंतर नहीं देख पड़ेगा जितना एकेश्वरवाद और ब्रह्मवाद में है; वरन् सारत: वे दोनों एक ही हैं, क्योंकि बहुत से देवी देवताओं को अलग अलग मानना और सबके गुरु गोवर्धन-दास एक ईश्वर को मानना एक ही बात है। परंतु ब्रह्मवाद का मूलाधार ही भिन्न है। उसमें लेश मात्र भी भौतिकवाद नहीं है। एकेश्वरवाद भौतिकवाद है, वह जीवात्मा, परमात्मा और जड़ जगत् तीनों की भिन्न सत्ता मानता है, जब कि ब्रह्मवाद शुद्ध आत्मतत्त्व अर्थात् चैतन्य के अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं मानता। उसके अनुसार आत्मा भी परमात्मा ही है और जड़ जगत् भी ब्रह्म है। कबीर में भौतिक या बाह्यार्थवाद कहीं मिलता ही नहीं और आत्मवाद की उन्होंने स्थान स्थान पर अच्छी झलक दिखाई है।

ब्रह्म ही जगत् में एक मात्र सत्ता है, उसके अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है। जो कुछ है, ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही से सबकी उत्पत्ति होती है और फिर उसी में सब लीन हो जाते हैं। कबीर के शब्दों में—

पाणी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ॥

विश्व-विस्तृत सृष्टि और ब्रह्म का संबंध दिखाने के लिये ब्रह्मवादी दो उदाहरण दिया करते हैं। जिस प्रकार एक छोटे से बीज के अंदर वट का बृहदाकार वृक्ष अंतर्हित रहता है उसी प्रकार यह सृष्टि भी ब्रह्म में अंतर्हित रहती है; और जिस प्रकार दूध में घी व्याप्त रहता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी इस अंडकटाह में सर्वत्र व्याप्त है। कबीर ने इसे इस तरह कहा है—

खालिक खलक, खलक में खालिक सब जग रह्यो समाई।

सर्वव्यापी ब्रह्म जब अपनी लीला का विस्तार करता है तब इस नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है जिसे वह इच्छा होने पर अपने ही में समेट लेता है—

इन मैं आप आप सबहिन मैं आप आप सूँ खेलै।
नाना भाँति घड़े सब भाँड़े रूप धरे धरि मेलै॥

वेदांत में नामरूपात्मक जगत् से संबंध और कई प्रकार से प्रकट किया जाता है जिनमें से एक प्रतिबिंबवाद है जिसका कबीर ने भी सहारा लिया है। प्रतिबिंबवाद के अनुसार ब्रह्म बिंब है और नाम-रूपात्मक दृश्य जगत् उसका प्रतिबिंब है। कबीर कहते हैं—

खंडित मूल बिनास, कहौ किम बिगतह कीजै।
ज्यूँ जल मैं प्रतिब्यंब, त्यूँ सकल रामहिं जाणीजे॥

'जो पिंड में है वही ब्रह्मांड में है' कहकर भी ब्रह्म का निरूपण किया जाता है परंतु केवल वाक्य के आश्रय से बननेवाले ज्ञानियों को इससे भ्रम हो सकता है कि पिंड और ब्रह्मांड ब्रह्म की अवस्थिति के लिये आवश्यक हैं। ऐसे लोगों के लिये कबीर कहते हैं—

प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई।
प्यंड ब्रह्मंड छाड़ि जे कथिए, कहै कबीर हरि सोई॥

वेदांत के 'कनक-कुंडल-न्याय' के अनुसार जिस प्रकार सोने से कुंडल बनता है और फिर उस कुंडल को टूट जाने अथवा पिघल जाने

पर वह सोना ही रहता है उसी प्रकार नामरूपात्मक दृश्यों की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है और ब्रह्म ही में वे समा जाते हैं—

जैसे बहु कंचन के भूषन ये कहि गालि तवावहिंगे।
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरे सुन्निहि माँहि समायहिंगे॥

इसी प्रकार का जलतरंग-न्याय भी है—

जैसे जलहिं तरंग तरंगनी ऐसें हम दिखलावहिंगे।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर हंसहिं हंस मिलावहिंगे॥

एक और तरह से कबीर ने भारतीय पद्धति से यह संबंध प्रदर्शित किया है—

जल मैं कुंभ कुंभ मैं जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समानां, यहु तत कथौ गियानी॥

यह नाम-रूपात्मक दृश्य जो चर्म-चक्षुओं को दिखाई देता है, जल में का घड़ा है जिसके बाहर भी ब्रह्मरूप वारि है और अंदर भी। बाह्य रूप का नाश हो जाने पर घड़े के अंदर का जल जिस प्रकार बाहरवाले जल में मिल जाता है उसी प्रकार बाह्य रूप के अभ्यंतर का ब्रह्म भी अपने बाह्यस्थ ब्रह्म में समा जाता है।

सब प्रकार से यही सिद्ध किया गया है कि परिवर्त्तनशील नाशवान् दृश्यों का अध्यारोप जिस एक अव्यय तत्त्व पर होता है, वही वास्तव है। जो कुछ दिखाई देता है, वह असत्य है, केवल मायात्मक भ्रांतिज्ञान है। यह बात कबीर ने स्पष्ट ही कह दी है—

संसार ऐसा सुपिन जैसा जीव न सुपिन समान।

जो मनुष्य माया के इस पसार को सच्चा समझकर उसमें लिपट जाता है, उसे शुद्ध हंस स्वरूप जीव अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती।

बुद्धदेव के 'दुःख सत्य' सिद्धांत के समान ही कबीर का भी सिद्धांत है कि यह संसार दुःख ही का घर है—

दुनियाँ भाँड़ा दुःख का भरी मुँहा मुँह मूष।
अदया अलह राम की कुरहै ऊँणी कूप॥

संसार का यह दुःख मायाकृत है। परंतु जो लोग माया में लिपटे रहते हैं, वे इस दुःख में पड़े हुए भी उसे समझ नहीं सकते। इस दुःख का ज्ञान उन्हीं को हो सकता है जिन्होंने मायात्मक अज्ञानावरण हटा दिया है। माया में पड़े हुए लोग तो इस दुःख को सुख ही समझे रहते हैं,—

सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै॥

कबीर का दुःख अपने लिये नहीं है, वे अपने लिये नहीं रोते, संसार के लिये रोते हैं, क्योंकि उन्होंने साईं के सब जीवों के लिये अपना अस्तित्व समर्पित कर दिया था, संसार के लिये ईसा-मसीह की तरह उन्होंने अपने आपको मिटा दिया था।

माया में पड़ा हुआ मनुष्य अपनी ही बात सोचता रहता है, इसी से वह परमात्मा को नहीं पा सकता। परमात्मा को पाने के लिये इस 'ममता' को छोड़ना पड़ता है—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिँ।

इसी लिये ज्ञानी माया का त्याग आवश्यक बताते हैं। परंतु माया का त्याग कुछ खेल नहीं है। बाहर से वह इतनी मधुर जान पड़ती है कि उसे छोड़ते ही नहीं बनता—

मीठी मीठी माया तजी न जाई।
अग्यानी पुरिष को भोलि भोलि खाई॥

माया ही विषय वासनाओं को जन्म देती है—

इक डाइन मेरे मन बसै। नित उठि मेरे जिय को डसै॥
या डाइन के लरिका पाँच रे। निसि दिन मोहि नचावै नाच रे॥

माया के ये पाँच पुत्र काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर हैं। मनुष्य के अधःपात के कारण ये ही हैं। आत्मा की पारमात्मिकता को यही व्यवधान में डालते हैं। अतएव परम तत्त्वार्थियों को इनसे सावधान रहना चाहिए—

> पंच चोर गढ़ मंझा, गढ़ लूटैं दिवस अरु संझा।
> जौ गढ़पति मुहकम होई, तौ लूटि न सकै कोई॥

माया ही पाषंड की जननी है। अतएव माया का उचित स्थान पाषंडियों के ही पास है। इसी लिये माया को संबोधन कर कबीर कहते हैं—

> तहाँ जाहु जहँ पाट पटंबर, अगर चंदन वसि लीना।

कर्मकांड को भी कबीर पाषंड ही के अंतर्गत मानते हैं, क्योंकि परमात्मा की भक्ति का संबंध मन से है, मन की भक्ति तन को स्वयं ही अपने अनुकूल बना लेगी, भक्ति की सच्ची भावना होने से कर्म भी अनुकूल होने लगेंगे परंतु केवल बाहरी माला जपने अथवा पूजा पाठ करने से कुछ नहीं हो सकता। यह तो मानो और भी अधिक माया में पड़ना है—

> जप तप पूजा अरचा जोतिग जग बौराना।
> कागद लिखि लिखि जगत भुलाना मन ही मन न समाना॥

इसी लिये कबीर ने 'कर का मनका छाँड़ि के, मन का मनका फेर' का उपदेश दिया है। उनका मत है कि जो माया ऋषि, मुनि, दिगंबर, जोगी और वेदपाठी ब्राह्मणों को भी घर पछाड़ती है, वही 'हरि भगतन कै चैरी' है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि माया के सहचारियों का मिट जाना 'हरि भजन' का आवश्यक अंग है—

> राम भजै सो जानिये, जाकै आतुर नाहीं।
> सत संतोष लीयै रहै, धीरज मन माहीं॥

जन कौं कांम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णा न जरावै ।
प्रफुल्लित आनंद मैं, गोव्यंद गुण गावै ।।

माया से बचने का एक उपाय जो भक्तों को बताया गया है, वह संसार से विमुख रहना है। जैसे उलटा घड़ा पानी में नहीं डूबता परंतु सीधा घड़ा भरकर डूब जाता है, वैसे ही संसार के सम्मुख होने से मनुष्य माया में डूब जाता है, परंतु संसार से विमुख होकर रहने से माया का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता—

औंधा घड़ा न जल मैं डूबे, सूधा सूभर भरिया ।
जाकौं यह जग घिन करि चालै, ता प्रसादि निस्तरिया ।।

माया का दूसरा नाम अज्ञान है। दर्पण पर जिस प्रकार काई लग जाती है, उसी प्रकार आत्मा पर अज्ञान का आवरण पड़ जाता है जिससे आत्मा में परमात्मा के दर्शन अर्थात् आत्मज्ञान दुर्लभ हो जाता है अतएव आत्मा रूपी दर्पण को निर्मल रखना चाहिए—

जौ दरसन देख्या चाहिए, तौ दरपन मंजत रहिए ।
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई ।।

दरपन का यही माँजना हरिभक्ति करना है। भक्ति ही से मायाकृत अज्ञान दूर होता है और ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा अपने पराए का भेद मिटता है—

उचित चेति च्यंति लै ताहीं । जा च्यंतत आपा पर नाहीं ।।
हरि हिरदै एक ग्यान उपाया । ताथैं छूटि गई सब माया ।।

इस पद में 'च्यंति' शब्द विचारणीय है क्योंकि यह कबीर की भक्ति की विशेषता प्रकट करता है। यह कहना अधिक उचित होगा कि ज्ञानियों की ब्रह्म-जिज्ञासा और वैष्णवों की सगुण भक्ति की विशेष विशेष बातों को लेकर कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति का भवन खड़ा किया अथवा वैष्णवों के तात्त्विक सिद्धांतों और व्यावहारिक भक्ति के मिश्रण से कबीर की भक्ति का उद्भव हुआ है। सिद्धांत और व्यवहार में, कथनी और करनी में भेद रखना कबीर के स्वभाव

के प्रतिकूल है। वैष्णवों में सदा से सिद्धांत और व्यवहार में भेद रहा है। सिद्धांतरूप से रामानुजजी ने विशिष्टाद्वैत, वल्लभाचार्यजी ने शुद्धाद्वैत और माधवाचार्य ने द्वैत का प्रचार किया; पर व्यवहार के लिये सगुण भगवान् की भक्ति का ध्येय ही सामने रखा गया।

सिद्धांत पक्ष का अज्ञेय ब्रह्म व्यवहार पक्ष में जाने बूझे मनुष्य के रूप में आ बैठा। हम दिखला चुके हैं कि कबीर अपने को वैष्णव समझते थे। परंतु सिद्धांत और व्यवहार का, कथनी और करनी का भेद वे पसंद नहीं कर सकते थे; अतएव उन्होंने दोनों का मिश्रण कर अपनी निर्गुण भक्ति का भवन खड़ा किया जिसका मुसलमानी खुदावाद से भी बाहरी मेल था।

ज्ञानमार्ग के अनुसार निर्गुण निराकार ब्रह्म शुष्क चिंतन का विषय है। कबीर ने इस शुष्कता को निकालकर प्रेमपूर्ण चिंतन की व्यवस्था की है। कबीर के इस प्रेम के दो पक्ष हैं, पारमार्थिक और ऐहिक। पारमार्थिक अर्थ में प्रेम का अर्थ लगन है जिसमें मनुष्य अपनी वृत्तियों को संसार की सब वस्तुओं से विमुख करके समेट लेता है और केवल ब्रह्म के चिंतन में लगा देता है। और ऐहिक पक्ष में उसका अभिप्राय संसार के सब जीवों से प्रेम और दया का व्यवहार करना है।

जिन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है केवल वेही अमर हैं; जन्म मरण का भय उन्हें नहीं रह जाता। उनके अतिरिक्त और सब नश्वर है। कबीरदास कहते हैं कि मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है, इसी लिये वे अपने आपको अमर समझते हैं—

हम न मरैं मरिहै संसारा, हम कूँ मिल्या जिवावनहारा।
अब न मरौं मरनै मन मानां, तेई मुए जिन राम न जानां॥

मनुष्य की आत्मा ब्रह्म के साथ एक है और ब्रह्म ही एक मात्र चिरस्थायी सत्ता है जिसका नाश नहीं हो सकता। अतएव मनुष्य की आत्मा का भी नाश नहीं हो सकता यही कबीर के अमरत्व का रहस्य है—

हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हम काहे कूँ मरिहैं ।

परंतु साक्षात्कार के पहले इस अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। परंतु उस प्रेम का मिलना सहज नहीं है, यह व्यक्तिगत साधना ही से उपलब्ध हो सकता है। यह पूर्ण आत्मोत्सर्ग चाहता है—

कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहिं तो पिया न जाइ ॥

जब मनुष्य आत्मोत्सर्ग की इस चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तब उसके लिये यह प्रेम अमृत हो जाता है—

मीभर झरै अमीरस निकसै तिहिं मदिरावलि छाका।

इस प्रेमरूप मदिरा को मनुष्य यदि एक बार भी पी लेता है तो जीवन पर्यंत उसका नशा नहीं उतरता और उसे अपने तन मन की सब सुध बुध भूल जाती है—

हरि रस पीया जानिए, कबहुँ न जाय खुमार।
मैमंता घूमत रहे, नाहीं तन की सार ॥

यह परमानंद की अवस्था है जिसमें मनुष्य का लौकिक अंश, जो अज्ञानावस्था में प्रधान रहता है, किसी गिनती में नहीं रह जाता; उसे अपने में अंतर्हित आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाता है और उस ब्रह्म के साथ तादात्म्य की अनुभूति हो जाती है। इसी को साक्षात्कार होना कहते हैं। यह साक्षात्कार हो जाने पर, अर्थात् ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने पर, मनुष्य ब्रह्म ही हो जाता है—ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति। उपनिषद् के 'तत्त्वमसि' अथवा 'सोऽहं' भाव का यही रहस्य है—

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ ॥

यह सच है कि ऐहिक अर्थ में निराकार निर्गुण ब्रह्म प्रेम का आलंबन नहीं हो सकता, केवल चिंतन का ही विषय हो सकता है,

परंतु उस निराकार की इस विश्व-विस्तृत सृष्टि में उस मूल तत्त्व की सत्ता का जो आभास मिल जाता है, उसके कारण निर्गुण भक्त संसार के समस्त प्राणियों को अपने प्रेम और दया का पात्र बना लेता है, जब कि सगुण भक्त की बहुत कुछ भावुकता ठाकुरजी की मूर्त्ति के बनाव शृंगार और उनके भोग राग के आडंबर ही में व्यय हो जाती है। इसी प्रेम ने कबीर को ऊँच नीच का भेद-भाव दूर कर सब की एकता प्रतिपादित करने की प्रेरणा की थी—

> एक बूँद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा।
> एक जोति थैं सब उपजा कौन बाह्मन कौन सूदा॥

जाति-पाँति का ही नहीं इसी से धर्माधर्म का भेद भी उन्हें अवास्तविक जँचा—

> कहै कबीर एक राम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई।

कबीर का प्रेम मनुष्यों तक ही परिमित नहीं है, परमात्मा की सृष्टि के सभी जीव जंतु उसकी सीमा के अंदर आ जाते हैं; क्योंकि 'सबै जीव साईं के प्यारे' हैं। अँगरेजी के कवि कॉलरिज ने भी यही भाव इस प्रकार प्रकट किया है—

> He prayeth best who loveth best,
> All things both great and small;
> For the dear God who loveth us,
> He made and loveth all.

कबीर का यह प्रेम तत्त्व, जिसका ऊपर निरूपण किया गया है, सूफियों के संसर्ग का फल है परंतु उसमें भी उन्होंने भारतीयता का पुट दे दिया है। सूफी परमात्मा को प्रियतमा के रूप में देखते हैं। उनके "मजनूँ को अल्लाह भी लैला नज़र आता है" परंतु कबीरदास ने परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखा है जो भारतीय माधुर्य भाव के सर्वथा मेल में है। फारस में विरह व्यथा पुरुषों के

और भारत में स्त्रियों के ही मत्थे अधिक मढ़ी जाती है। वहाँ प्रेमी प्रिया को अपना प्रेम जताने के लिये उत्कट उद्योग करते हैं, और यहाँ प्रेमिका विरह से व्याकुल होकर मुरझाए हुए फूल की तरह अपनी सत्ता तक मिटा देती हैं। इसी से वहाँ उपासक की पुरुष रूप में और यहाँ स्त्री रूप में भावना की गई है। परंतु कबीर के सूफियाना भावों में भी भारतीयता कूट कूटकर भरी हुई है।

इस प्रकार निर्गुणवाद और सगुणवाद की एकेश्वरवाद से बाहरी समता रखनेवाली बातों के सम्मिश्रण और उसके साथ प्रेम-तत्त्व के योग से कबीर की भक्ति का निर्माण हुआ। कबीर का विश्वास है कि भक्ति से मुक्ति हो जाती है—

कहै कबीर संसा नाहीं भगति मुगति गति पाइ रे।

परंतु भक्ति निष्काम होनी चाहिए। परमात्मा का प्रेम अपस्वार्थ की पूर्त्ति का साधन नहीं है, मनुष्य को यह न सोचना चाहिए कि उससे मुझे कोई फल मिलेगा। यदि फल की कामना हो गई, तो वह भक्ति भक्ति न रह गई और न उससे सत्य की प्राप्ति ही हो सकती है—

जब लग है बैकुंठ की आसा। तब लग न हरि चरन निवासा॥

ब्रह्म लौकिक वासनाओं से परे है। व्यक्तिगत उच्चतम साधना से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है, वह स्वयं भक्त के लिये विशेष चिंतित नहीं रहता।, क्योंकि भक्त भी ब्रह्म ही है। वह किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता, उसे अपने ब्रह्मत्व की अनुभूति भर कर लेनी पड़ती है जो, जैसा कि हम देख चुके हैं, कोई खेल नहीं है। इसीलिये ब्रह्म को अवतार धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। जो कबीर मनुष्य से ऐहिक अंश छुड़ाकर उसे ब्रह्मत्व तक पहुँचाना चाहते हैं, उनकी ब्रह्म में लौकिक भावनाओं का समावेश करके उसका अधःपात न करने की व्यग्रता स्वाभाविक ही है—

ना जसरथ घरि औतरि आवा, ना लंका का राव सतावा।
देवै कूष न औतरि आवा, ना जसवै गोद खिलावा॥
ना वो ग्वालन कै सँग फिरिया, गोवरधन ले न कर धरिया॥
बावँन होय नहीं बलि छलिया, धरनी वेद ले न उधरिया।
गंडक सालिकराम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला॥
बद्री वैस्य ध्यान नहिं लावा, परसराम ह्वै खत्री न सँतावा।

प्रतिमा-पूजन के वे घोर विरोधी थे। जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं, देश-काल का जिसके लिये कोई आधार आवश्यक नहीं, उसकी मूर्ति कैसी? जगह जगह पर उन्होंने मूर्त्तिपूजा के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित की है—

हम भी पाहन पूजते, होते वन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भयी, डारया सिर थैं बोझ॥
सेवें सालिगराम कूँ, मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुपिनैं नहीं, दिन दिन अधकी लाइ॥

जिसका आकार नहीं, उसकी मूर्ति का सहारा लेकर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न वैसा ही है जैसे झूठ के सहारे सच तक पहुँचने का प्रयत्न। असत्य से मन की भ्रांति बढ़ेगी ही, घट नहीं सकती; और उससे जिज्ञासा की तृप्ति होना तो असंभव ही है।

मूर्ति-पूजा में भगवान् की मूर्ति को जो भोग लगाने की प्रथा है, उसकी वे इस तरह हँसी उड़ाते हैं—

लाडू लावर लापसी पूजा चढ़े अपार।
पूजि पुजारा ले चला दे मूरति के मुख छार॥

यद्यपि कबीर अवतारवाद और मूर्तिपूजा के विरोधी थे, तथापि हिंदू मत की कई बातें वे पूर्णतया मानते हैं। हिंदुओं का जन्म-मरण संबंधी सिद्धांत वे मानते हैं। मुसलमानों की तरह वे एक ही जन्म नहीं मानते, जिसके बाद मरने पर प्राणी कब्र में पड़ा पड़ा

कयामत तक सड़ा करता है जब तक कि प्राणी पुनरुज्जीवित होकर खुदावंद करीम के सामने अपने अपने कर्मों के अनुसार अनंत काल तक दोजख की आग में जलने अथवा बिहिश्त में हूरों और गिलमों का सुख भोगने के लिये पेश किए जायँ। एक स्थान पर, 'उअरहुगे किस बोले' कहकर कबीर ने इसी विश्वास की ओर संकेत किया है। परंतु यह उन्होंने साधारण बोल चाल के ढंग पर कहा है, सिद्धांत के रूप में नहीं। ये बातें कुछ उसी प्रकार कही गई हैं जिस प्रकार सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने के कारण दिन रात का होना मानने पर भी साधारण बोलचाल में यह कहना कि 'सूर्य उगता है'। सिद्धांत रूप से वे अनेक जन्म मानते हैं, 'जनम अनेक गया अरु आया'। इस जन्म में जो कुछ भोगना पड़ता है, वह पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है 'देखौ कर्म कबीर का कछू पूरब जनम का लेखा'। कबीर ने यह तो कहा है कि सृष्टि के सृजन और लय का कारण परमात्मा है, परंतु उन्होंने यह नहीं कहा कि सृष्टि की रचना कैसे और किस क्रम से हुई है, कौन तत्त्व पहले हुआ और कौन पीछे। इस विषय में वे शंका मात्र उठाकर रह गए हैं, उसका समाधान उन्होंने नहीं किया—

> प्रथमे गगन कि पुहुमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन कि पांणीं।
> प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौन बिनांणीं॥
> प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत की रेंत।
> प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज की खेंत॥
> प्रथमे दिवस कि रैणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुण्यं।
> कहै कबीर जहां बसहु निरंजन, तहाँ कुछ आहि कि सुन्यं॥

ऊपर हमने कबीर की रचना में वेदांत-सम्मत अद्वैतवाद की एक पूरी पूरी पद्धति के दर्शन किए हैं जिसे हम शुद्धाद्वैत नहीं मान सकते। शुद्धाद्वैत में माया ब्रह्म की ही शक्ति मानी जाती है, परंतु

कबीर ने माया को मिथ्या या भ्रम मात्र माना है, जिसका कारण अज्ञान है। यह शंकर का अद्वैत है जिसमें आत्मा और परमात्मा परमार्थतः एक माने जाते हैं, परंतु बीच में अज्ञान के आ पड़ने से आत्मा अपनी पारमार्थिकता को भूल जाती है। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर अज्ञान-कृत भेद मिट जाता है और आत्मा को अपनी परमात्मिकता की अनुभूति हो जाती है। यही बात हम कबीर में भी देख चुके हैं।

परंतु उन पर समय और परिस्थितियों का अलक्ष्य प्रभाव भी पड़ा था जिसके कारण वे असावधानी में ऐसी बातें भी कह गए हैं जो उनके अद्वैत सिद्धांत से मेल नहीं खातीं। उन्होंने स्थान स्थान पर अवतारवाद का विरोध ही किया है, परंतु उनके नीचे लिखे पद से अवतारवाद का समर्थन भी होता है—

> बांधि मारि भावै देह जारि, जे हूँ राम छाड़ौं तौ मेरे गुरुहि गारि।
> तब काढ़ि खड़ग कोप्यो रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ॥
> खंभा में प्रगट्यो गिलारि, हरनाकस मारयो नख बिदारि।
> महा पुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रगट किये भगति भेव॥
> कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद उबारयो अनेक बार।

बात यह है कि उपासना के लिये उपास्य में कुछ गुणों का आरोप आवश्यक होता है, बिना गुणों के प्रेम का आलंबन हो ही नहीं सकता। उपनिषदों तक में निराकार निर्गुण ब्रह्म में उपासना के लिये गुणों का आरोप किया गया है। एकेश्वरवादी धर्मों में जहाँ कट्टरपन ने परमात्मा में गुणों का आरोप नहीं करने दिया, वहाँ परमात्मा और मनुष्य के बीच में एक और मनुष्य का सहारा लिया गया है। ईसाइयों को ईसा और मुसलमानों को मुहम्मद का अवलंबन ग्रहण करना पड़ा। भक्ति की झोंक में कबीर भी जब सांसारिक प्रेममूलक संबंधों के द्वारा परमात्मा की भावना करने लगे, तब परमात्मा में स्वयं ही गुणों का आरोप हो गया। माता पिता

और प्रियतम निर्जीव पत्थर नहीं हो सकते। माता के रूप में परमात्मा की भावना करते हुए वे कहते हैं—

हरि जननी मैं बालिक तेरा। कस नहिं बकसहु अवगुण मेरा॥

अवतारवाद में यही सगुणवाद पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है।

कबीर में कई बातें ऐसी भी हैं जिनमें दिखाई देनेवाला विरोध केवल भाषा की असावधानी से आया है। कबीर शिक्षित नहीं थे, इसलिये उनकी रचनाओं में यह दोष क्षम्य है।

व्यावहारिक सिद्धांत

कबीरदासजी ने धार्मिक सिद्धांतों के साथ साथ उसकी पुष्टि के लिये अनेक स्थानों पर लौकिक आचरण अथवा व्यवहारों का वर्णन किया है। यदि उनकी वाणी का पूरा पूरा विवेचन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उनकी साखियों का विशेष संबंध लौकिक आचरणों से है तथा पदों का संबंध विशेषकर धार्मिक सिद्धांतों तथा अंशतः लौकिक आचरण से है। लौकिक आचरण की इन बातों को भी दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, कुछ तो निवृत्तिमूलक हैं और कुछ प्रवृत्तिमूलक।

कबीर स्वतन्त्र प्रकृति के मनुष्य थे। उनके चारों ओर शारीरिक दासता का घेरा पड़ा हुआ था। वे इस बात का अनुभव करते थे कि शारीरिक स्वातंत्र्य के पहले विचार-स्वातंत्र्य आवश्यक है। जिसका मन ही दासता की बेड़ियों से जकड़ा हो, वह पाँवों की जंजीरें क्या तोड़ सकेगा। उन्होंने देखा था कि लोग नाना प्रकार के अंध विश्वासों में फँसकर हीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं। लोगों को इसी से मुक्त करने का उन्होंने प्रयत्न किया। मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज, ताजिएदारी और हिंदुओं के श्राद्ध, एकादशी, तीर्थव्रत, मंदिर सबका उन्होंने विरोध किया है। कर्म्मकांड की उन्होंने भर पेट निंदा की है। इस बाहरी पाखंड के लिये उन्होंने

हिंदू मुसलमान दोनों को खूब फटकारें सुनाई हैं। धर्म्म को वे आडं-बर से परे एक मात्र सत्य सत्ता मानते थे जिसके हिंदू मुसलमान आदि विभाग नहीं हो सकते। उन्होंने किसी नामधारी धर्म्म के बंधन में अपने आपको नहीं डाला, और स्पष्ट कह दिया है कि मैं न हिंदू हूँ न मुसलमान।

जिस सत्य को कबीर धर्म्म मानते हैं, वह सब धर्म्मों में है। परंतु इस सत्य को सबने मिथ्या विश्वास और पाषंड से परिच्छन्न कर दिया है। इस बाहरी आडंबर को दूर कर देने से धर्म्मभेद से समस्त झगड़े, बखेड़े दूर हो जाते हैं, क्योंकि उससे वास्तव में धर्म-भेद ही नहीं रह जाता। फिर तो हिंदू-मुस्लिम ऐक्य का प्रश्न स्वयं ही हल हो जाता है। एक अलग धार्मिक संप्रदाय के रूप में कबीरपंथ तो कबीर के मूल सिद्धान्तों के वैसे ही विरुद्ध है जैसे हिंदू और मुसलमान धर्म्म, जिनका उन्होंने जी भर खंडन किया है।

धार्मिक सुधार और समाज सुधार का घनिष्ठ संबंध है। धर्म्म-सुधारक को समाजसुधारक होना ही पड़ता है। कबीर ने भी समाज सुधार के लिये अपनी वाणी का उपयोग किया है। हिंदुओं की जाति-पाँति, छूआछूत, खान पान आदि के व्यव-हारों और मुसलमानों के चाचा की लड़की ब्याहने, मुसलमानी आदि कराने का उन्होंने चुभती भाषा में विरोध किया है और इनके विषय में हिंदू मुसलमान दोनों की जी भरकर धूल उड़ाई है। हिंदुओं के चौके के विषय में वे कहते हैं—

> एकै पवन एक ही पांणी, करी रसोई न्यारी जानीं।
> माटी सूँ माटी ले पोती, लागी कहौ कहाँ धूँ छोती॥
> धरती लीपि पवित्तर कीन्हीं, छोति उपाय लीक बिचि दीन्हीं।
> याका हम सूँ कहौ बिचारा, क्यूँ भव तिरिहौ इहि आचारा॥

छूआछूत का उन्होंने इन शब्दों में खंडन किया है—

काहे कौं कीजै पांडे छोति बिचारा । छोतिहिं ते उपना संसारा ॥
हमारै कैसैं लोहू तुम्हारे कैसैं दूध । तुम्ह कैसैं ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद ॥
छोति छोति करता तुम्हहीं जाए । तौ ग्रभवास काहे कौ आए ॥
जनमत छोति मरत ही छोति । कहै कबीर हरि की निर्मल जोति ॥

जन्म ही से कोई द्विज या शूद्र अथवा हिंदू या मुसलमान नहीं हो सकता। इसको कबीर ने कितने सीधे किंतु मन में जम जानेवाले ढंग से कहा है—

जौं तूं बांभन बंभनी जाया । तौं आन बाट ह्वै क्यों नहिं आया ॥
जौ तू तुरक तुरकनी जाया । तौ भीतर खतना क्यों न कराया ॥

उच्चता और नीचता का संबंध उन्होंने व्यवसाय के साथ नहीं जोड़ा है, क्योंकि कोई व्यवसाय नीच नहीं है। अपने को जुलाहा कहने में भी उन्होंने कहीं संकोच नहीं किया और वे स्वयं आजीवन जुलाहे का व्यवसाय करते रहे। वे उन ज्ञानियों में से नहीं थे जो हाथ पाँव समेटकर पेट भरने के लिये समाज के ऊपर भार बनकर रहते हैं। वे परिश्रम का महत्त्व जानते थे और अपनी आजीविका के लिये अपने ही हाथों का आसरा रखते थे।

परंतु अपनी आजीविका भर से वे मतलब रखते थे, धन संपत्ति जोड़ना वे उचित नहीं समझते थे। थोड़े ही में संतोष करने का उन्होंने उपदेश दिया है। जो कुछ वे दिन भर में कमाते थे, उसका कुछ अंश अवश्य साधु संतों की सेवा में लगाते थे, और कभी कभी तो सब कुछ उनकी सेवा में अर्पित कर डालते और आप निराहार रह जाते थे। कहते हैं, एक दिन वे गाढ़े का एक थान बेचने के लिये हाट गए। वस्त्र के अभाव से दुखी एक फकीर को देखकर उन्होंने उसमें से आधा उसे दे दिया। पर जब फकीर ने कहा कि मेरा तन ढकने के लिये यह काफी नहीं है, तब उन्होंने सारा उसे ही दे डाला और आप खाली हाथ घर चले आए। धन

धरती जोड़ना कबीर की संतोषी वृत्ति के विरुद्ध था। उन्होंने कहा भी है—

काहे कूँ भीत बनाऊँ टाटी, का जाएं कहँ परिहै माटी।
काहे कूँ मंदिर महल चिनाऊँ, मूवाँ पीछैं घड़ी एक रहन न पाऊं॥
काहे कूँ छाऊँ ऊँच उचेरा, साढ़े तीन हाथ घर मेरा।
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुइँ लीजै॥

कबीर अत्यंत सरल-हृदय थे। बालकों में सरलता की पराकाष्ठा होती है, यह सब जानते हैं। इसका कारण वर्ड्सवर्थ के अनुसार यह है कि बालक में पारमार्थिकता अधिक रहती है। पर ज्यों ज्यों बालक की अवस्था बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसमें पारमार्थिकता की न्यूनता होती जाती है। इसी लिये अपने खोए हुए बालकत्व के लिये वर्ड्सवर्थ कवि क्षुब्ध हैं। परंतु कबीर कहते हैं कि यदि मनुष्य स्वयं भक्ति भाव से अपने मन को निर्मल कर परमात्मा की ओर मुड़े तो वह फिर से इस सरलता को प्राप्त कर बालक हो सकता है—

जौ तन माहैं मन धरै, मन धरि निर्मल होइ।
साहिब सौं सनमुख रहै, तौ फिरि बालक होइ॥

कबीर का सारल्य ऐसे ही बालकत्व का फल था।

कबीर की गर्वोक्तियों के कारण लोग उन्हें घमंडी समझते हैं। ये गर्वोक्तियाँ कम नहीं हैं। उनके नाम से प्रसिद्ध नीचे लिखा पद, जो इस ग्रंथावली में नहीं है, लोगों में बहुत प्रसिद्ध है—

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहै कै ताना काहै के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया॥
आठ कँवल दल चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साँइ को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥

इस ग्रंथावली में भी ऐसी गर्वोक्तियों की कोई कमी नहीं है—

(क) हम न मरैं मरिहै संसारा।

(ख) एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाकै राम अधारा॥

(ग) देखौ कर्म कबीर का, कछू पूरब जनम का लेखा।
जाका महल न मुनि लहै, सो दोसत किया अलेखा॥

(घ) कबीर जुलाहा पारपू, अनभै उतरथा पार।

परंतु यह गर्व लोगों को नीचा देखनेवाला गर्व नहीं है—साक्षात्कार-जन्य गर्व है, स्वामी के आधार का गर्व है, जो सबमें पारमात्मिकता का अनुभव करके प्राणिमात्र को समता की दृष्टि से देखता है। अपनी पारमात्मिकता की अनुभूति की गरमी में उनका ऐसा कहना स्वाभाविक ही है जो उनके मुँह से अनुचित भी नहीं लगता। जो हो, कम से कम छोटे मुँह बड़ी बात की कहावत उनके विषय में चरितार्थ नहीं हो सकती। वे पहुँचे हुए महात्मा थे। उन्होंने स्वयं ही अपनी गिनती गोपीचंद, भर्तृहरि और गोरखनाथ के साथ की है—

गोरष भरथरि गोपीचंदा। ता मन सौं मिलि करैं अनंदा॥
अकल निरंजन सकल सरीरा। ता मन सैां मिलि रहा कबीरा॥

परंतु इतने ऊँचे पद पर वे विनय के द्वारा ही पहुँच सके हैं। इसी से उनका गर्व उच्चतम मनुष्यता का प्रेममय गर्व है जिसकी आत्मा विनय है। सच्चे भक्त की भाँति उन्होंने परमात्मा के महत्त्व और अपनी हीनता का अनुभव किया है—

तुम्ह समानि दाता नहीं, हम से नहीं पापी।

स्वामी के सामने वे विनय के अवतार हैं—

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउँ॥

उनकी विनय यहाँ तक पहुँची है कि वे बाट का रोड़ा होकर रहना चाहते हैं जिस पर सबके पैर पड़ते हैं। परंतु रोड़ा पाँव में चुभकर बटोहियों को दुःख देता है, इसलिये वे धूल के समान रहना उचित समझते हैं। किंतु धूल भी उड़कर शरीर पर गिरती है और उसे मैला करती है, इसलिये पानी की तरह होकर रहना चाहिए जो सबका मैल धोवे। पर पानी भी ठंढा और गरम होता है जो अरुचि का विषय हो सकता है। इसलिये भगवान् की ही तरह होकर रहना चाहिए। कबीर का गर्व और दैन्य दोनों मनुष्य को उसकी पारमात्मिकता की अनुभूति करानेवाले हैं।

कबीर पहुँचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियों से चुराई हुई सामग्री नहीं था और न वह सुनी सुनाई बातों का बेमेल भंडार ही था। पढ़े लिखे तो वे थे नहीं परंतु सत्संग से भी जो बातें उन्हें मालूम हुईं, उन्हें वे अपनी विचार-धारा के द्वारा मानसिक पाचन से सर्वथा अपना ही बना लेने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने स्वयं कहा है 'सो ज्ञानी आप विचारै'। फिर भी कई बातें उनमें ऐसी मिलती हैं जिनका उनके सिद्धांतों के साथ मेल नहीं पड़ता। उनकी ऐसी उक्तियों को समय और परिस्थितियों का तथा भिन्न भिन्न मतावलंबियों के संसर्ग का अलक्ष्य प्रभाव समझना चाहिए।

कबीर बहुश्रुत थे। सत्संग से वेदांत, उपनिषदों और पौराणिक कथाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान उनको हो गया था परंतु वेदों का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था। उन्होंने वेदों की जो निंदा की है, वह यह समझकर कि पंडितों में जो पाषंड फैला हुआ है, वह वेदज्ञान के कारण ही है। योग की क्रियाओं के विषय में भी उनकी जानकारी थी। इंगला, पिंगला, सुषुम्ना, षट्चक्र आदि का उन्होंने उल्लेख किया है परंतु वे योगी नहीं थे। उन्होंने योग को भी माया में सम्मिलित किया है। केवल हिंदू मुसलमान दो धर्मों का उन्होंने

मुख्यतया उल्लेख किया है पर इससे यह न समझना चाहिए कि भारतवर्ष में प्रचलित और धर्मों से वे परिचित नहीं थे। वे कहते हैं—

अरु भूले षटदरसन भाई। पाषंड भेष रहे लपटाई।
जैन बोध और साकत सैना। चारवाक चतुरंग विहूना॥
जैन जीव की सुधि न जानै। पाती तोरी देहुरै आनै।

इससे ज्ञात होता है कि अन्य धर्मों से भी उनका परिचय था, पर कहाँ तक उनके गूढ़ रहस्यों को वे समझते थे यह नहीं विदित होता। जहाँ तक देखा जाता है, ऐसा जान पड़ता है कि ऊपरी बातों पर ही उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। मार्मिक तात्त्विक बातों तक ये नहीं गए हैं। ईसाई धर्म का उनके समय तक इस देश में प्रवेश नहीं हुआ था पर विलाइत का नाम उनकी साखी में एक स्थान पर अवश्य आया है।' बिन बिलाइत बड़ राज'। यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि 'बिलाइत' से उनका यूरोप के किसी देश से अभिप्राय था अथवा केवल विदेश से। कबीरदास जी ने शाक्तों की बड़ी निंदा की है। जैसे—

बैस्नों की छपरी भली, ना साकत का बड़गाँव।
सापत ब्राभण मति मिलै, बैसनों मिलै चँडाल।
अंक माल दे भेटिये मानौं मिले गोपाल॥

रहस्यवाद

कबीर रहस्यवादी कवि हैं। रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। संसार चक्र का प्रवर्त्तन किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा होता है, इस बात का अनुभव मनुष्य अनादि काल से करता चला आया है। उस अज्ञात शक्ति को जानने की इच्छा सदैव मनुष्य को रही है और रहेगी। परंतु वह शक्ति उस प्रकार स्पष्टता से नहीं दिखाई दे सकती जिस प्रकार जगत् के अन्य दृश्य रूप; और न उसका ज्ञान ही उस प्रकार साधारण विचार धारा के द्वारा हो सकता है जिस प्रकार इन

दृश्य रूपों का होता है। अपनी लगन से जो इस क्षेत्र में सिद्ध हो गए हैं उन्होंने जब जब अपनी अनुभूति का निरूपण करने का प्रयत्न किया है, तब तब अपनी उक्तियों को स्पष्टता देने में अपने आपको असमर्थ पाया है। कबीर ने स्पष्ट कह दिया है कि परमात्मा का प्रेम और उसकी अनुभूति गूँगे का सा गुड़ है—

(क) अकथ कहानी प्रेम की, कछू कही न जाइ।
गूँगे केरी सरकरा, बैठा मुसकाइ॥

(ख) तजि बावें दाहिनें विकार, हरि पद दिढ़ करि गहिये।
कहै कबीर गूँगै गुड़ खाया, बूझै तो का कहिये॥

यही रहस्यवाद का मूल है। वेद और उपनिषदों में रहस्यवाद की झलक विद्यमान है। गीता में भगवान् के मुँह से उनकी विभूति का जो वर्णन कराया गया है, वह भी अत्यंत रहस्यपूर्ण है।

परमात्मा को पिता, माता, प्रिया, प्रियतम, पुत्र अथवा सखा के रूप में देखना रहस्यवाद ही है; क्योंकि लौकिक अर्थ में परमात्मा इनमें से कुछ भी नहीं है। आदर्श पुरुषों में परमात्मा की विशेष कला का साक्षात्कार कर उनको अवतार मानने के मूल में भी रहस्य-वाद ही है। मूर्त्ति को परमात्मा मानकर उसे मस्तक नवाना आदिम रहस्यवाद है।

परमात्मा के पितृत्व की भावना बहुत प्राचीन काल के वेदों ही में मिलने लगती है। ऋग्वेद की एक ऋचा में 'यो नः पिता जनिता यो विधाता' कहकर परमात्मा का स्मरण किया गया है। वेदों में परमात्मा को माता भी कहा गया है—'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ' परमात्मा के मातृ-पितृत्व से प्राणियों के भ्रातृत्व की भावना का उदय होता है—'अज्येष्ठासो अकनिष्ठासो एते संभ्रातरो'। बहुत पीछे के ईसाई ईश्वरवाद में परमात्मा के पितृत्व और प्राणियों के भ्रातृत्व की यही भावना पाई जाती

है; अतएव पश्चिमी रहस्यवाद में भी इस भावना का प्राबल्य है। कबीर में भी यह भावना मिलती है—

बाप राम राया अब हूँ सरन तिहारी।

उन्होंने परमात्मा को 'माँ' भी कहा है—

हरि जननी मैं बालिक तेरा।

परंतु भारतीय रहस्यवाद की विशेषता सर्वात्मवाद-मूलक होने में है जो भारतीयों की ब्रह्मजिज्ञासा का फल है। उपनिषदों और गीता का रहस्यवाद यही रहस्यवाद है। जिज्ञासु जब ज्ञानी की कोटि पर पहुँचकर कवि भी होना चाहता है तब तो अवश्य ही वह इस रहस्यवाद की ओर झुकता है। चिंतन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर इस रहस्यवाद का रूप पकड़ता है। सर्वात्मवादी कवि के रहस्योद्भावी मानस में संसार उसी रूप में प्रतिबिंबित नहीं होता जिस रूप में साधारण मनुष्य उसे देखता है। वह परमात्मा के साथ सारी सृष्टि का अखंड संबंध देखता है जिसको चरितार्थ करने का प्रयत्न करते हुए जायसी ने जगत् के सब रूपों को दिखलाया है। जगत् के नाना रूप उसकी दृष्टि में परमात्मा से भिन्न नहीं हैं, उसी के भिन्न भिन्न व्यक्त रूप हैं। स्वातंत्र्य के अवतार, स्त्रीत्व का आध्यात्मिक मूल समझनेवाले अँगरेजी के कवि शेली को भी सर्वात्मवादी रहस्यवाद ही "मर्मर करते हुए काननों में, झरनों में, उन पुष्पों की पराग-गंध में जो उस दिव्य चुंबन के सुखस्पर्श से सोए हुए कुछ वर्तों से मुग्ध पवन को उसका परिचय दे रहे हैं, इसी प्रकार मंद या तीव्र समीर में; प्रत्येक आते जाते मेघ खंड की झड़ी में, वसंतकालीन विहंगमों के कलकूजन में और सब ध्वनियों और स्तब्धता में भी अपनी प्रियतमा की मधुर वाणी सुनाई है। कबीर में ऊपर परिगणित कुछ अन्य रहस्यवादी भावनाओं के होते हुए भी प्रधानता

इसी रहस्यवाद की है। मुसलमान कवियों की प्रेमाख्यानक परंपरा के जायसी एक जगमगाते रत्न हैं। वे रहस्यवादी कवियों की ही एक लड़ी हैं जिनमें सूफियों के मार्ग से होते हुए भारतीय सर्वात्मवाद आया है।

सर्वात्मवाद-मूलक रहस्यवाद में 'माधुर्य भाव' का उदय हुआ, जो कबीर और प्रेमाख्यानक सब मुसलमान कवियों में विद्यमान है। वैष्णवों और सूफियों की उपासना माधुर्य भाव से युक्त होती है। दार्शनिकों ने परमात्मा को पुरुष और जगत् को स्त्री रूप प्रकृति कहा है। माधुर्य भाव इसी का भावुक रूप है जिसमें परमात्मा की प्रियतम के रूप में भावना की जाती है और जगत् के नाना रूप स्त्री रूप में देखे जाते हैं। मीराबाई ने तो केवल कृष्ण को ही पुरुष माना है, जगत् में पुरुष उन्हें और कोई दिखाई ही नहीं दिया। कबीर भी कहते हैं—

(क) कहै कबीर ब्याहि चले हैं पुरिष एक अविनासी।
(ख) सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा॥

इस तरह के एक दो नहीं कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। राम की सुहागिन पहले अपना प्रेम निवेदन करती है—

गोकुल नायक बीठुला मेरौ मन लागौ तोहि रे।

यह जीवात्मा का परमात्मा में लगन लगने का आरंभिक रूप है, इसे ब्याह के पहले का पूर्वानुराग समझना चाहिए।

कभी वह वियोगिनी के रूप में प्रकट होती है और उस वियोगाग्नि में जले हुए हृदय के उद्गार प्रकट करती है—

यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणि करौं करंक की, लिखि राम पठाउँ॥

परमात्मा के वियोग से जनित सारी सृष्टि का दुःख कितना घना होकर कबीर के हृदय में समाया है।

राम की वियोगिन आकुलता से उन दिनों की बाट देखती है जब वह प्रियतम का आलिंगन करेगी—

वै दिन कब आवेंगे भाइ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौं अंग लगाइ॥

यहाँ जीवात्मा के परमात्मा से मिलने की आकुलता की ओर संकेत है। इस आकुलता के साथ साथ भय भी रहता है। सारा विश्व जिसका व्यक्त रूप है, उस प्रियतम से मिलने के लिये असाधारण तैयारी करने की आवश्यकता होती है। 'हरि की दुलहिन' को भय इस आशंका से होता है कि वह उतनी तैयारी कर सकेगी या नहीं। उसे अपने ऊपर विश्वास नहीं होता। फिर रहस्य केलि के समय प्रियतम के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना होगा, वह यह भी नहीं जानती—

मन प्रतीति न प्रेम रस ना इस तन में ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूँ कैसे रहसी रंग॥

इसमें साक्षात्कार की महत्ता का आभास है जो एक साधारण घटना नहीं है :

ज्यों ज्यों जीवात्मा को अपनी पारमात्मिकता का अनुभव होता जाता है, त्यों त्यों उसका भय जाता रहता है। लौकिक भाषा में इसी की ओर इस पद में इशारा है—

अब तोहिं जान न देहूँ राम पियारे। ज्यूँ भावै त्यूँ होहु हमारे॥

यह प्रेम की ढिठाई है।

परमात्मा से मिलने के लिये ऐसी 'ऊँचो गैल, राह रपटीली' नहीं तै करनी पड़ती जहाँ 'पावँ नहीं ठहराय'। वह तो घर बैठे मिल जायँगे पर उसके लिये पहुँचा हुई लगन चाहिए, क्योंकि परमात्मा तो हृदय ही में है—

बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये। भाग बड़े घरि बैठे आये।

कबीरदास के नाम से लोगों की जिह्वा पर जो यह पद—

मो को कहाँ ढूँढै बंदे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में॥

बहुत दिनों से चढ़ा चला आ रहा है, उसका भी यही भाव है। जायसी ने यही भाव यों प्रकट किया है—

पिउ हिरदय महँ भेंट न होई, को रे मिलाव, कहौं केहि रोई!!

रहस्यमय उक्तियों की रहस्यात्मकता उसके लोकनियोजित शब्दार्थ में नहीं है। उस अर्थ को मानने से उनकी रहस्यात्मकता जाती रहती है; उनका संकेत मात्र ग्रहण करना चाहिए। मूर्ति को परमात्मा मानकर उसका पूजन इसी लिये करना चाहिए कि ईश्वर-प्राप्ति में आगे की सीढ़ी सहज में चढ़ सके, क्योंकि साधारणतः सब लोग परमात्मा या ब्रह्म का ठीक ठीक स्वरूप समझने में नितान्त असमर्थ होते हैं। अतः मूर्तिपूजा के द्वारा मानों मनुष्य को ब्रह्म के भी साक्षात्कार की प्रारंभिक शिक्षा मिलती है। उससे आगे बढ़-कर सचमुच पत्थर को परमात्मा मानने में फिर कोई रहस्य नहीं रह जाता। ईसाइयों ने परमात्मा के पितृत्व भाव की उसी समय इति-श्री कर दी जब ईसा को लौकिक अर्थ में परमात्मा या पवित्रात्मा का पुत्र मान लिया। राम और कृष्ण को साक्षात् परमात्मा ही मानने के कारण तुलसी और सूर में अवतारवाद की मूलीभूत रहस्यभावना नहीं आ पाई है। सखी संप्रदाय ने मनुष्यों को सचमुच स्त्री मानकर और उनके नाम भी स्त्रियों जैसे रखकर और यहाँ तक कि उनसे ऋतुमती स्त्रियों का अभिनय कराकर 'माधुर्य भाव' के रहस्य-वाद को वास्तववाद का रूप दे दिया। रहस्यवाद के वास्तववाद में पतित हो जाने के कारण ही सदुद्देश्य से प्रवर्त्तित अनेक धर्म्म-संप्र-दायों में इंद्रिय-लोलुपता का नारकी नृत्य देखने में आता है। रहस्य-वादी कवियों को वास्तववादियों से इसी बात में भेद है कि वास्तव-

वादी कवि अपने विषय का यथातथ्य वर्णन करते हैं, और रहस्यवादी केवल संकेत मात्र कर देते हैं, अपने वर्ण्य विषय का आभास भर दे देते हैं। उनमें जो यह धुँधलापन पाया जाता है, उसका कारण उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। परमात्मा की सत्ता का आभास मात्र ही दिया जा सकता है। इसके लिये वे व्यंजनावृत्ति से अधिकतर काम लिया करते हैं और चित्राधान उनका प्रधान उपादान होता है। उनकी बातें अन्योक्ति के रूप में हुआ करती हैं। किसी प्रत्यक्ष व्यापार के चित्र को लेकर वे उससे दूसरे परोक्ष व्यापार के चित्र की व्यंजना करते हैं। इसी से रहस्यवादी कवियों में वास्तववादियों की अपेक्षा कल्पना का प्राचुर्य अधिक होता है।

रसिकों की सम्मति में कबीर का रहस्यवाद रूखा है, उनका माधुर्य भाव भी उन्हें फीका लगता है; उनके चित्रों में उन्हें अनेक-रूपता नहीं दिखाई देती। कबीर ने अपनी उक्तियों को काव्य की काटछाँट नहीं दी है, परंतु इसकी उन्हें जरूरत ही नहीं थी। इस बात का प्रयास वह करेगा जिसमें कुछ सार न हो।

कबीर में चित्रों की अनेकरूपता न देखना उनके साथ अन्याय करना है। ब्याह का ही दृश्य वे कई बार अवश्य लाए हैं, पर जैसा कि पाठकों को आगे चलने पर मालूम होता जायगा, उनका रहस्यवाद माधुर्य भाव में ही नहीं समाप्त हो जाता। प्रकृति से चुने चुने चित्र उनकी उक्तियों में अपने आप आ बैठे हैं। हाँ, उन्होंने प्रयास करके अपनी उक्तियों को काव्य की मधुरता नहीं दी है। फिर भी उनकी ऊपरी सहृदयता न सही तो अनन्यहृदयता और तल्लीनता व्यर्थ कैसे जा सकती थी! जो उन्हें बिल्कुल ही रूखा समझते हैं, उन्हें उनकी रहस्यमयी अन्योक्तियों को देखना चाहिए।

काहे री नलिनीं ! तू कुमिलानीं। तेरे ही नालि सरोवर पानीं ॥
जल में उतपति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास ॥

ना तलि तपति न ऊपर आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि ॥
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हमारे जान ॥

कैसा मृदुल मनोमोहक चित्र है! इसका सहज माधुर्य किसे न मोह लेगा। प्रकृति का प्रतिनिधि मनुष्य नलिनी है, जल ब्रह्म-तत्त्व है। इसी में प्रकृति के नाना रूपों की उत्पत्ति होती है, यही पोषक तत्त्व है जो मनुष्य और नाना रूपों में स्वयं विद्यमान है। इस जल की शीतलता के सामने कोई ताप ठहर नहीं सकता। यह तत्त्व समझकर इस पोषण-सामग्री का उपयोग करनेवाला (अर्थात् ज्ञानी) मर ही कैसे सकता है?

औद्यानिक भाषा में सांसारिक जीवन की नश्वरता का कितना प्रभावशाली आभास नीचे लिखे दोहे में है—

मालन आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकार।
फूले फूले चुणि लिए, काल्हि हमारी बार॥

और देखिए—

बाढ़ी आवत देखि करि, तरिवर डोलन लाग।
हम कटे की कुछ नहीं, पंखेरू घर भाग॥

बढ़ई काल है, वृक्ष का डोलना वृद्धावस्था का कंप है, पक्षी आत्मा है। यह डोलना आत्मा को इस बात की चेतावनी देता है कि शरीर के नाश का दुःख न करके ब्रह्म तत्त्व में लीन होने का प्रबन्ध करो; पक्षी का घर भागना यही है। काटते समय पेड़ को हिलते और वृद्धावस्था में शरीर को काँपते किसने नहीं देखा होगा। परंतु किस लिये वह हिलता-काँपता है, इसका रहस्य कबीर ही जान पाए हैं। यह आभास किसको नहीं मिलता, पर कितने हैं जो उसको समझ पाते हैं!

नाश नीची स्थितिवालों के लिये ही मुँह बाए नहीं खड़ा है, ऊँची स्थितिवाले भी उसी घाट उतरेंगे इस बात का संकेत यह दोहा देता है—

फागुण आवत देखि करि, बन रूना मन माहिं।
ऊँची डाली पात हैं, दिन दिन पीले थाहिं॥

कबोर की चमत्कारपूर्ण उलटवाँसियाँ भी रहस्यपूर्ण हैं। कठोपनिषद् के अनुसार मनुष्य का शरीर रथ है जिसमें इंद्रियों के घोड़े जुते हैं, घोड़ों पर मन की लगाम लगी हुई है जो सारथी रूपी बुद्धि के हाथ में है। 'परमपद' का पथिक आत्मा इस रथ पर सवार है, उसकी इच्छा के अनुसार उसका परिचालन होना चाहिए। शरीर सेवक है आत्मा स्वामी है। यह स्वाभाविक क्रम है। परंतु जब स्वामी सो जाय, सारथी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाय और घोड़ों की लगाम निरुद्देश्य ढोली पड़ जाय, तब यह क्रम उलट जाता है; स्वामी का स्थान सेवक ले लेता है। रथ के अधीन होकर स्वामी भटका फिरता है। और प्राय: ऐसा होता है कि घोड़ों (इंद्रियों) के मनमाने आचरण से रथ (शरीर) और स्वामी (आत्मा) दोनों को अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। भव-जाल में पड़े हुए मनुष्यों की इसी उलटी अवस्था को विशेष कर कबीर ने अपनी उलटवाँसियों द्वारा व्यंजित कर लोगों को आश्चर्य में डाला है—

ऐसा अद्भुत मेरा गुरु कथ्या, मैं रह्या उभेषै।
मूसा हस्ती सों लड़ै, कोई बिरला पेषै॥
मूसा बैठा बांबि मैं, लारै सापणि धाई।
उलटि मूसै सापिण गिली, यहु अचरज भाई॥
चींटी परवत ऊषण्यां, ले राख्यौ चौड़ै।
मूर्गा मिनकी सूँ लड़ै, झल पांणीं दौड़ै॥
सुरहीं चूंषै बछतलि, बछा दूध उतारै।
ऐसा नवल गुणी भया, सारदूलहि मारै॥
भील लुक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै।
कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि बिचारै॥

सबका कारण परब्रह्म किसी का कार्य नहीं है, इस बात का आभास देनेवाला यह सांकेतिक पद कितना रहस्यपूर्ण है।

बाँझ का पूत, बाप बिन जाया, बिन पाँउँ तरवर चढ़िया।
अस-बिन पाषर, गज-बिन गुड़िया, बिन पंडै संग्राम लड़िया॥
बीज-बिन अंकूर,पेड़-बिन तरवर, बिन-सापा तरवर फलिया।
रूप-बिन नारी, पुहुप-बिन परिमल, बिन-नीरै सर भरिया॥

सभी संत कवियों के काव्य में थोड़ा बहुत रहस्यवाद मिलता है। पर उनका काव्य विशेषकर कबीर का ही ऋणी है। बँगला के वर्तमान कवींद्र रवींद्र को भी कबीर का ऋण स्वीकार करना पड़ेगा। अपने रहस्यवाद का बीज उन्होंने कबीर ही में पाया। परंतु उनमें पाश्चात्य भड़कीली पालिश भी है। भारतीय रहस्यवाद को उन्होंने पाश्चात्य ढंग से सजाया है। इसी से यूरोप में उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई है। जब से उन्हें नोबेल प्राइज (पुरस्कार) मिला तब से लोग उनकी गीतांजलि की बेतरह नकल करने पर तुले हुए हैं। हिंदी का वर्तमान रहस्यवाद अब तक नकल ही सा लगता है। सच्चे रहस्यवाद के आविर्भाव के लिये प्रतिभा की अपेक्षा होती है। कबीर इसी प्रतिभा के कारण सफल हुए हैं। पिंगल के नियमों का भंग करके खड़ा किया हुआ निरर्थक शब्दाडम्बर रहस्यवादी कविता का आसन नहीं प्राप्त कर सकता।

कबीर के काव्य के विषय में बहुत कुछ बातें उनके रहस्यवाद के अंतर्गत आ चुकी हैं; यहाँ पर बहुत कम कहना शेष है। कविता

काव्यत्व

के लिये उन्होंने कविता नहीं की है। उनकी विचारधारा सत्य की खोज में बही है, उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय है। उनकी विचार-धारा का प्रवाह जीवन-धारा के प्रवाह से भिन्न नहीं। उसमें उनका हृदय घुला मिला है। उनकी प्रतिभा हृदय-समन्वित है। उनकी बातों

में बल है जो दूसरे पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। अक्खड़ ढंग से कही होने पर भी उनकी बेलाग बातों में एक और ही मिठास है जो खरी खरी बातें कहनेवाले ही की बातों में मिल सकती है। उनकी सत्यभाषिता और प्रतिभा का ही फल है कि उनकी बहुत सी उक्तियाँ लोगों की जबान पर चढ़कर कहावतों के रूप में चल पड़ी हैं। हार्दिक उमंग की लपेट में जो सहज विग्दधता उनकी उक्तियों में आ गई है, वह अत्यंत भावापन्न है। उसी में उनकी प्रतिभा का चमत्कार है। शब्दों के जोड़ तोड़ से चमत्कार लाने के फेर में पड़ना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। दूर की सूझ जिस अर्थ में केशव बिहारी आदि कवियों में मिलती है, उस अर्थ में उनमें पाना असंभव है। प्रयत्न उनकी कविता में कहीं नहीं दिखाई देता। अर्थ की जटिलता के लिये उनकी उलटबासियाँ केशव की शब्दमाया को मात करती हैं। परंतु उनमें भी प्रयत्न दृष्टिगत नहीं होता। रात दिन आँखों में आनेवाले प्रकृति के समान्य व्यापारों के उलटे व्यवहार को ही उन्होंने सामने रखा है। सत्य के प्रकाश का साधन बनकर, जिसकी प्रगाढ़ अनुभूति उनको हुई थी, कविता स्वयमेव उनकी जिह्वा पर आ बैठी है। इसमें संदेह नहीं कि कबीर में ऐसी भी उक्तियाँ हैं जिनमें कवित्त के दर्शन नहीं होते—और ऐसे पद्य कम नहीं हैं—किंतु उनके कारण कबीर के वास्तविक काव्य का महत्त्व कम नहीं हो सकता, जो अत्यंत उच्च कोटि का है और जिसका बहुत कुछ माधुर्य रहस्यवाद के प्रकरण के अंतर्गत दिखाया जा चुका है।

जैसे कबीर का जीवन संसार से ऊपर उठा था, वैसे ही उनका काव्य भी साधारण कोटि से ऊँचा था। अतएव सीखकर प्राप्त की हुई रसिकता को उनमें काव्यानंद नहीं मिलता। परंपरा से बँधे हुए लोगों को काव्य-जगत में भी इंद्रिय-लोलुपता का कीड़ा बनकर

रहना ही भला लगता है। कबीर ऐसे लोगों की परितुष्टि की परवा कैसे कर सकते थे, जिनको निरपेक्षों के प्रति होनेवाला उनका प्रेम भी शुष्क लगता है। प्रेम की पराकाष्ठा आत्म-समर्पण का मानो काव्य जगत् में कोई मूल्य ही नहीं है।

कबीर ने अपनी उक्तियों पर बाहर बाहर से अलंकारों का मुलम्मा नहीं चढ़ाया है। जो अलंकार उनमें मिलते भी हैं वे उन्होंने खोज खोजकर नहीं बैठाए हैं। मानसिक कलाबाजी और कारीगरी के अर्थ में कला का उनमें सर्वथा अभाव है। 'बे सिर पैर की बातों', 'वायवी अवस्तुओं' का स्थान और नाम निर्देश कर देने को कवि-कर्म कहकर शेक्सपियर ने कवियों को सन्निपात या पागलपन में बे सिर पैर की बातें बकनेवालों की श्रेणी में रख दिया है। जिन कवियों के संबंध में 'किं न जल्पंति' कहा जा सकता है, उन्हीं का उल्लेख 'किं न खादंति' वाले वायसों के साथ हो सकता है। सच्ची कला के लिये तथ्य आवश्यक है। भावुकता के दृष्टि-कोण से कला आडंबरों के बंधन से निर्मुक्त तथ्य है। एक विद्वान् कृत इस परिभाषा को यदि काव्य क्षेत्र में प्रयुक्त करें तो बहुत कम कवि सच्चे कलाकारों की कोटि में आ सकेंगे। परंतु कबीर का आसन उस ऊँचे स्थान पर अविचल दिखाई देता है। यदि सत्य के खोजी कबीर के काव्य में तथ्य की स्वतंत्रता नहीं मिलती तो और कहीं नहीं मिल सकती। कबीर के महत्त्व का अनुमान इसी से हो सकता है।

कबीर के काव्य में नीचे लिखी हुई खटकनेवाली बातें भी हैं जिनकी ओर स्थान स्थान पर संकेत करते आए हैं—

(१) एक ही बात को उन्होंने कई बार दुहराया है जिससे कहीं कहीं रोचकता जाती रही है।

(२) उनके ज्ञानीपन की शुष्कता का प्रतिबिंब उनकी भाषा पर अक्खड़पन होकर पड़ा है।

(३) उनकी आधी से अधिक रचना दार्शनिक पद्य मात्र है जिसको कविता नहीं कहना चाहिए।

(४) उनकी कविता में साहित्यिकता का सर्वथा अभाव है। थोड़ी सी साहित्यिकता आ जाने से परंपरानुबद्ध रसिकों के लिये उपालंभ का स्थान न रह जाता।

(५) न उनकी भाषा परिमार्जित है और न उनके पद्य पिंगल-शास्त्र के नियम के अनुकूल है।

कबीरदास छंदःशास्त्र से अनभिज्ञ थे, यहाँ तक कि वे दोहों को पिंगल की खराद पर न चढ़ा सके। डफली बजाकर गाने में जो शब्द जिस रूप में निकल गया, वही ठीक था! मात्राओं के घट बढ़ जाने की चिंता करना व्यर्थ था। पर साथ ही कबीर में प्रतिभा थी, मौलिकता थी, उन्हें कुछ संदेसा देना था और उसके लिये शब्द की मात्रा गिनने की आवश्यकता न थी, उन्हें तो इस ढंग से अपनी बातें कहने की आवश्यकता थी जो सुननेवालों के हृदयों में पैठ जायँ और पैठकर जम जायँ। तिसपर वह हिन्दी कविता के आरंभ के दिन थे। पर आजकल के रहस्यवादी काव्यों में न प्रतिभा के दर्शन होते हैं और न मौलिकता का आभास मिलता है। केवल ऊटपटांग कह देने और भाषा तथा पिंगल की उपेक्षा दिखाने ही में उन आवश्यक गुणों के अभावों की पूर्ति नहीं हो सकती।

कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है क्योंकि वह खिचड़ी है। कबीर की रचना में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं, परंतु भाषा का निर्णय अधिकतर शब्दों पर निर्भर नहीं है। भाषा के आधार क्रियापद, संयोजक शब्द तथा कारक चिह्न हैं जो वाक्य-विन्यास की विशेष-

भाषा

ताओं के लिये उत्तरदायी होते हैं। कबीर में केवल शब्द ही नहीं क्रियापद कारक चिह्नादि भी कई भाषाओं के मिलते हैं, क्रियापदों के रूप अधिकतर ब्रजभाषा और खड़ी बोली के हैं। कारक चिह्नों में से कै, सन, सा आदि अवधी के हैं, कौ ब्रज का है और थैं राजस्थानी का। यद्यपि उन्होंने स्वयं कहा है—'मेरी बोली पूरबी' तथापि खड़ी, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी-फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट भी उनकी उक्तियों पर चढ़ा हुआ है। 'पूरबी' से उनका क्या तात्पर्य है, यह नहीं कह सकते। उनका बनारस-निवास पूरबी से अवधी का अर्थ लेने के पक्ष में है; परंतु उनकी रचना में बिहारी का भी पर्याप्त मेल है, यहाँ तक कि मृत्यु के समय मगहर में उन्होंने जो पद कहा है उसमें मैथिली का भी कुछ संसर्ग दिखाई देता है। यदि 'बोली' का अर्थ मातृभाषा लें और 'पूरबी' का बिहारी तो कबीर के जन्म के विषय पर एक नया ही प्रकाश पड़ जाता है। उनका अपना अर्थ जो कुछ हो, पर पाई जाती हैं उनमें अवधी और बिहारी, दोनों बोलियाँ।

इस पँचमेल खिचड़ी का कारण यह है कि उन्होंने दूर दूर के साधु-संतों का सत्संग किया था जिससे स्वाभाविक ही उन पर भिन्न भिन्न प्रांतों की बोलियों का प्रभाव पड़ा।

खड़ी बोली का पुट इस दोहे में देखिए—

> कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ।
> राम कहे भला होइगा, नहिंतर भला होइ॥
> आऊँगा न जाऊँगा, मरूँगा न जीऊँगा।
> गुरु के सबद रमि रमि रहूँगा॥

इसमें शुद्ध खड़ी बोली के दर्शन होते हैं।

'जब लगि धसै न आभ' में धसै ब्रजभाषा का है और आभ फारसी के आब का बिगड़ा हुआ रूप है। आगे लिखे दोहे में

अंषड़ियाँ, जीभड़ियाँ आदि रूप पंजाबी का और पड़या क्रिया राजस्थानी प्रभाव प्रकट करते हैं—

> अंषड़ियां झांई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
>
> जीभड़ियां छाला पड़या, राम पुकारि पुकारि॥

पंजाबी के केवल बहुत से शब्द ही नहीं मुहावरे भी उनमें मिलते हैं, जैसे—

१—रलि गया आटे लूण

२—लूण बिल्गा पाणियां, पाणी लूण बिलग।

इनके उच्चारण पर भी पंजाबी का प्रभाव दृष्टिगत होता है। न को ण कहना पंजाबी की ही विशेषता है। पंजाबी विवेक का उच्चारण बबेक करते हैं। कबीर में भी यह शब्द इसी रूप में मिलता है। बँगला के भी इनमें कुछ प्रयोग मिलते हैं। आछिलो शब्द बँगला का छिलो है जो "था" के अर्थ में प्रयुक्त होता है—कह कबीर कछु आछिलो जहिया। इसी प्रकार "सकना" अर्थ में पारना क्रिया के रूप भी जो अब केवल बँगला में मिलते हैं, पर जिनका प्रयोग जायसी और तुलसी ने भी किया है, इनकी भाषा में पाए जाते हैं—

> गांइ कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै।

संस्कृत वर्ज्य से बिगड़कर बना हुआ एक बाज शब्द तुलसी और जायसी दोनों में मिलता है। जायसी में यह बाझ रूप में मिलता है। पर आजकल इसका प्रयोग अधिकतर पंजाबी में ही होता है, जहाँ इसका रूप "बाझों" होता है।

> भिस्त न मेरे चाहिए बाझ पियारे तुझ।

जेम, ससिहर, आदि शुद्ध अपभ्रंश के भी कई शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है। "जेम" शब्द संस्कृत "यद्व" से निकला है और ससिहर सं० शशधर से। अपभ्रंश में संस्कृत के क का ग हो जाता

है जैसे प्रकट का प्रगट। कबीर ने मनमाने ढंग से भी ऐसे परिवर्त्तन किए हैं। उपकारी का उन्होंने उपगारी बनाया है। संस्कृत के महाप्राण अक्षर प्राकृत और अपभ्रंश में प्रायः ह रह जाते हैं जैसे शशधर से ससिहर। कबीर में इसका विपर्यय भी मिलता है। उन्होंने दहन को दाझन कहा है।

फारसी के एक ही शब्द का हमने ऊपर उदाहरण दिया है। यत्र तत्र फारसी अरबी के शब्द तो उनमें मिलते ही हैं उनके कुछ पद भी ऐसे हैं जिनमें अरबी और फारसी शब्दों की ही भरमार है। उदाहरण के लिये उनकी पदावली का २५८ वाँ पद ले लीजिए जिसकी दो पंक्तियाँ हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

> हम रफ़्त रहबरहु समां, मैं ख़ुर्दा सुमां बिसियार।
> हम जिमीं असमांन खलिक, गुंद मुसकिल कार॥

हम कह चुके हैं कि कबीर पढ़े लिखे नहीं थे इसी से वे बाहरी प्रभावों के बहुत अधिक शिकार हुए। भाषा और व्याकरण की स्थिरता उनमें नहीं मिलती। या यह भी सम्भव है कि उन्होंने जान बूझकर अनेक प्रान्तों के शब्दों का प्रयोग किया हो। अथवा शब्द-भंडार की कमी के कारण जब जिस भाषा का सुना सुनाया शब्द उनके सामने आ गया हो उन्होंने अपनी कविता में रख दिया हो। शब्दों को उन्होंने तोड़ा मरोड़ा भी बहुत है। सन को सन्नि, सनां, सूँ—चाहे जिस रूप में तोड़ मरोड़कर उन्होंने आवश्यकतानुसार अपनी उक्तियों में ला बैठाया है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में अक्खड़पन है और साहित्यिक कोमलता या प्रसाद का सर्वथा अभाव है। कहीं कहीं उनकी भाषा बिलकुल गँवारू लगती है, पर उनकी बातों में खरेपन की मिठास है जो उन्हीं की विशेषता है और उसके सामने यह गँवारपन छूप जाता है।

हिंदी के काव्य-साहित्य में कबीर के स्थान का निर्णय करना कठिन है। तुलना के लिये एक ही क्षेत्र के कवियों को लेना चाहिए। कबीर का काव्य मुक्तक क्षेत्र के अंतर्गत है। उसमें भी उन्होंने कुछ ज्ञान पर कहा है और कुछ नीति पर। नानक, दादू, सुंदरदास आदि ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्त कवियों में वे सहज ही सबसे बढ़कर हैं। नानक दादू आदि कबीर की ही पुनरावृत्तियाँ हैं, परंतु उस शक्ति के साथ नहीं। सुंदरदास में साहित्यिकता कबीर से अधिक है परंतु आँचल में अस्वाभाविकता भी वे खूब बाँध लाए हैं। नीति-काव्य की सफलता की कसौटी उसकी सर्वप्रियता है। कबीर के नीति-काव्य की सर्वप्रियता न वृंद को प्राप्त हुई और न रहीम को। रहीम में कबीर के भाव ज्यों के त्यों मिलते हैं। कहीं तो दोहे का दोहा रहीम ने अपना लिया है; यथा—

उपसंहार

> कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं।
> सीस उतारै हाथ करि सो पैसे घर मांहिं॥
>
> —कबीर।
>
> रहिमन घर है प्रेम का खाला का घर वाहिं।
> सीस उतारै भुइँ धरै सो जावै घर माहिं॥
>
> —रहीम।

वृंद और कबीर की विदग्धता एक सी है। रहस्यवादी कवियों में भी कबीर का ही आसन सब से ऊँचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है। प्रेमाख्यानक कवियों का रहस्यवाद तो उनके प्रबंध के बीच बीच में बहुत जगह थिगली सा लगता है और प्रबंध से अलग उसका अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है। अन्य क्षेत्रों के कवियों के साथ कबीर की तुलना की ही नहीं जा सकती। तुलसी और सूर कविता के साम्राज्य में सर्वसम्मति से और सब कवियों

की पहुँच के बाहर हैं। चंदकृत पृथ्वीराजरासो नामक जो प्रक्षिप्त महाकाव्य प्रसिद्ध है, उसी में उनके महत्त्व का बहुत कुछ दर्शन हो जाता है। अतएव जब तक उनकी रचना के विषय में कोई निश्चयात्मक निर्णय नहीं हो जाता, तब तक उनको किसी के साथ तुलना के लिये खड़ा करना उन पर अन्याय करना है। केशव को काव्यशास्त्र का आचार्य भले ही मान लें, पर उनको नैसर्गिक कवियों में गिनना कवित्व का तिरस्कार करना है। बिहारी की कोटि के कवियों की कविता को सच्ची स्वाभाविक कविता में गिनने में भी संकोच हो सकता है। मूड़ मुँड़ाकर श्रृंगार के पीछे पड़नेवाले सब कवि इसी श्रेणी में हैं। पर भूषण, जायसी और कबीर में कौन बड़ा है, इसका निर्णय नहीं हो सकता। तीनों में सच्चे कवि की आकुलता विद्यमान है और अपने क्षेत्र में तीनों की पूरी पहुँच है, तीनों एक श्रेणी के हैं, फिर भी यदि आध्यात्मिकता को भौतिकता से श्रेष्ठ ठहराकर कोई कबीर को श्रेष्ठ ठहरावे तो रुचिस्वातंत्र्य के कारण उसे यह अधिकार है। प्रभाव से यदि श्रेष्ठता मानें तो तुलसी के बाद कबीर ही का नाम आता है; क्योंकि तुलसी को छोड़कर हिंदी-भाषी जनता पर कबीर के समान या उनसे अधिक प्रभाव किसी कवि का नहीं पड़ा।

कबीर-ग्रंथावली

(१) साखी

(१) गुरदेव कौ अंग

सतगुर सवाँन को सगा, सोधी सईं न दाति।
हरिजी सवाँन को हितू, हरिजन सईं न जाति॥ १॥
बलिहारी गुर आपणौं, द्यौं हाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार॥ २॥
सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥ ३॥
राम नाम कै पटंतरै, देबे कौं कुछ नांहि।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन मांहि॥ ४॥
सतगुर कै सदकै करूं, दिल अपणीं का साछ।
कलियुग हम स्यूं लड़ि पड़्या, मुहकम मेरा बाछ॥ ५॥
सतगुर लई कमांण करि, बांहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतरि रह्या सरीर॥ ६॥
सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही भैं मिलि गया, पड़्या कलेजै छेक॥ ७॥

---

(२) क-ख—देवता के आगे 'क्या' पाठ है जो अनावश्यक है।

(५) ख—सदफै करौं। ख—साच। तुक मिलाने के लिये 'साछ' 'साच' लिखा है।

सतगुर मारया बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि ।
अंगि उघाड़ै लागिया, गई दवा सूँ फूटि ॥ ८ ॥
हँसै न बोलै उनमनीं, चंचल मेल्ह्या मारि ।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियारि ॥ ९ ॥
गूंगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान ।
पाऊं थैं पंगुल भया, सतगुर मारया बाण ॥ १० ॥
पीछैं लागा जाइ था, लोक बेद के साथि ।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि ॥ ११ ॥
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट ।
पूरा किया बिसाहुणां, बहुरि न आँवौं हट्ट ॥ १२ ॥
ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ ।
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ ॥ १३ ॥
कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लूंण ।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौंण ॥ १४ ॥
जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध ।
अंधै अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़ंत ॥ १५ ॥
नां गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव ।
दून्यूं बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव ॥ १६ ॥
चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहि ।
तिहिं घरि किसकौ चानिणौं, जिहि घरि गोब्यंद नांहि ॥ १७ ॥
निस अँधियारी कारणैं, चौरासी लख चंद ।
अति आतुर उदै किया, तऊ दिष्टि नहीं मंद ॥ १८ ॥

---

(१२) क-ख-अघट, हट ।
(१३) क—गोब्यंद
(१५) क—चेला हैजा चंद (? है गा अंध)
(१७) ख—चांरिणौं । ख—तिंहि···जिंहिं ।

भली भई जु गुर मिल्या, नहीं तर होती हांणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूं, पड़ता पूरी जांणि ॥ १९ ॥
माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं पड़ंत।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरंत ॥ २० ॥
सतगुर बपुरा क्या करै, जे सिषही मांहै चूक।
भावै त्यूं प्रमोधि ले, ज्यूं बँसि बजाई फूक ॥ २१ ॥
संसै खाया सकल जुग, संसा किनहूँ न खद्ध।
जे बेधे गुर अष्षिरां,तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध ॥ २२ ॥
चेतनि चौकी बैसि करि, सतगुर दीन्हां धीर।
निरभै होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर ॥ २३ ॥
सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोल।
पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल ॥ २४ ॥
बूड़े थे परि ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि ॥ २५ ॥
गुर गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ॥ २६ ॥
कबीर सतगुर नां मिल्या, रही अधूरी सीष।
स्वांग जती का पहरि करि, घरि घरि मांगै भीष ॥ २७ ॥

---

(२१) ख–प्रमोधिए। जांणै बास जनाई कूद।
(२२) ख–सैल जुग।
(२५) ख–जाजरा।
(२६) इस दोहे के आगे ख प्रति में यह दोहा है—
कबीर सब जग यों भ्रम्या फिरै, ज्यूं रामे का रोज।
सतगुर थैं सोधी भई, तब पाया हरि का षोज ॥ २७ ॥
(२७) इसके आगे ख प्रति में यह दोहा है—
कबीर सतगुर ना मिल्या, सुणी अधूरी सीष।
मूँड मुंडावैं मुकति कूं, चालि न सकई बीष ॥ २८ ॥

सतगुर साँचा सूरिवाँ, तातैं लोहिं लुहार ।
कसणी दे कंचन किया, ताइ लिया ततसार ॥ २८ ॥

थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर ।
कबीर हीरा-बणजिया, मानसरोवर तीर ॥ २९ ॥

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर ।
निपजी मैं साझी घणां, बाँटै नहीं कबीर ॥ ३० ॥

चौपड़ि माँडी चौहटै, अरध उरध बाजार ।
कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत विचार ॥ ३१ ॥

पासा पकड़्या प्रेम का, सारी किया सरीर ।
सतगुर दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥ ३२ ॥

सत गुर हम सूं रीझि करि, एक कह्या प्रसंग ।
बरस्या बादल प्रेम का,भीजि गया सब अंग ॥ ३३ ॥

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ ।
अंतरि भीगी आत्मां, हरी भई बनराइ ॥ ३४ ॥

पूरे सूं परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि ।
निर्मल कीन्हीं आत्मां, ताथैं सदा हजूरि ॥ ३५ ॥

---

(२) सुमिरण कौ अंग

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ ।
राम कहें भला होइगा, नहिं तर भला न होइ ॥ १ ॥

---

(२८) ख—सतगुर मेरा सूरिवाँ ।

(२९) इसके आगे ख प्रति में यह दोहा है—
कबीर हीरा बणजिया हिरदै उकठी खाणि
पारब्रह्म क्रिपा करी, सतगुर भये सुजांण ॥

(३५) ख में नहीं है ।

Service to humanity is service

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नाँव ततसार है, सब काहू उपदेस ॥ २ ॥
तत तिलक तिहूँ लोक मैं, राम नाँव निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार ॥ ३ ॥
भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा क्रमनां, कबीर सुमिरण सार ॥ ४ ॥
कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल ॥ ५ ॥
च्यंता तौ हरि नाँव की, और न चिंता दास।
जे कुछ चितवैं राम बिन, सोइ काल की पास ॥ ६ ॥
पंच सँगी पिव पिव करै, छठा जु सुमिरे मंन।
आई सूति कबीर की, पाया राम रतंन ॥ ७ ॥
मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ॥ ८ ॥
तूं तूं करता तूं भया, मुझ मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ ॥ ९ ॥
कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति।
तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति ॥ १० ॥
कबीर सूता क्या करे, जागि न जपै मुरारि।
एक दिनां भी सोवणां, लंबे पाँव पसारि ॥ ११ ॥
कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि।
जाका संग तैं बीछुड़या, ताही के सँग लागि ॥ १२ ॥
कबीर सूता क्या करै, उठि न रोवै दुक्ख।
जाका बासा गोर मैं, सो क्यूं सोवै सुक्ख ॥ १३ ॥

(३) ख. में नहीं है।

कबीर सूता क्या करै, गुण गोबिंद के गाइ।
तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच कदे का खाइ॥ १४॥

कबीर सूता क्या करै, सूतां होइ अकाज।
ब्रह्मा का आसण खिस्या, सुणत काल की गाज॥ १५॥

केसौ कहि कहि कूकिये, नां सोइयै असरार।
राति दिवस कै कूकणैं, (मत) कबहूँ लगै पुकार॥ १६॥

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम।
ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम॥ १७॥

कबीर प्रेम न चषिया, चषि न लीया साव।
सूनें घर का पाहुणां, ज्यूं आया त्यूं जाव॥ १८॥

पहली बुरा कमाइ करि, बाँधी विष की पोट।
कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की वोट॥१९॥

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।
अनेक जुग जे पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ॥ २०॥

जिहि हरि जैसा जांणियां, तिन कूं तैसा लाभ।
ओसां प्यास न भाजई, जब लग धसै न आभ॥ २१॥

राम पियारा छाड़ि करि, करै आन का जाप।
बेस्वां केरा पूत ज्यूं, कहै कौन सूं बाप॥ २२॥

कबीर आपण राम कहि, औरां राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न उचरे, तिहि मुख फेरि कहाइ॥ २३॥

जैसैं माया मन रमैं, यूं जे राम रमाइ।
(तौ) तारा-मंडल छाड़ि करि, जहाँ के सो तहाँ जाइ॥ २४॥

---

(१६) ख. में नहीं है।
(१७) क—आइ संसार में
(२३) ख—जा मुष, ता मुष।

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम है लूटि ।
पीछैं हो पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि ॥ २५ ॥

लूटि सकै तौ लूटियै, राम नाम भंडार ।
काल कंठ तैं गहैगा, रूंधै दसूं दुवार ॥ २६ ॥

लंबा मारग दूरि घर, बिकट पंथ वहु मार ।
कहौ संतौ क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि-दीदार ॥ २७ ॥

गुण गाये गुण नाम कटैं, रटै न राम बिवोग ।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूं पावै दुलभ जोग ॥ २८ ॥

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरतां हरि-नाम ।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरूं त नाहीं ठाम ॥ २९ ॥

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत ।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत ॥ ३० ॥

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अंमृत गुण गाइ ।
फूटा नग ज्यूं जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ ॥ ३१ ॥

कबीर चित चमंकिया, चहुं दिसि लागी लाइ ।
हरि सुमिरण हाथूं घड़ा, बेगे लेहु बुझाइ ॥ ३२ ॥ ६७ ॥

---

(३) बिरह कौ अंग

रात्यूं रूंनी बिरहनीं, ज्यूं बंचौ कूं कुंज ।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज ॥ १ ॥

अंबर कुंजां कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल ।
जिनि पैं गोबिंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल ॥ २ ॥

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति ।
जे जन बिछुटे राम सूं, ते दिन मिले न राति ॥ ३ ॥

बासुरि सुख नाँ रैंणि सुख, नाँ सुख सुपिनै माहिं ।
कबीर बिछुट्या राम सूं, नाँ सुख धूप न छाँह ॥ ४ ॥
बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ ।
एक सबद कहि पीव का, कबर मिलैंगे आइ ॥ ५ ॥
बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम ।
जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नाहीं विश्राम ॥ ६ ॥
बिरहिन ऊठै भी पड़े, दरसन कारनि राम ।
मूवां पीछैं देहुगे, सो दरसन किहि काम ॥ ७ ॥
मूवां पोछैं जिनि मिलै, कहै कबीरा राम ।
पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कौणें काम ॥ ८ ॥
अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसौ कहियां ।
कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पासि गयां ॥ ९ ॥
आइ न सकौं तुझ पैं, सकूं न तुझ बुलाइ ।
जियरा यौंही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ ॥ १० ॥
यहु तन जालौं मसि करूं, ज्यूं धूवां जाइ सरग्गि ।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि ॥ ११ ॥
यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउं ।
लेखणिं करूं करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ ॥ १२ ॥
कबीर पीर पिरावनीं, पंजर पीड़ न जाइ ।
एक ज पीड़ परीति की, रही कलेजा छाइ ॥ १३ ॥
चोट सतांणीं बिरह की, सब तन जर जर होइ ।
मारणहारा जांणिहै, कै जिहिं लागी सोइ ॥ १४ ॥
कर कमाण सर साँधि करि, खैंचि जु मारया मांहि ।
भीतरि भिद्या सुमार है, जीवै कि जीवै नांहि ॥ १५ ॥
जबहूँ मारया खैंचि करि, तब मैं पाई जांणि ।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छांणि ॥ १६ ॥

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या ।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सचपाऊं नहीं ॥ १७ ॥
बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ ।
राम बिवोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ॥ १८ ॥
बिरह भुवंगम पैसि करि, किया कलेजै घाव ।
साधू अंग न मोड़ही, ज्यूं भावै त्यूं खाव ॥ १९ ॥
सब रँग तंतरबाबतन, बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुणि सकै, कै साईं कै चित्त ॥ २० ॥
बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान ।
जिस घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान ॥ २१ ॥
अंषड़ियां झांईं पड़ी, पंथ निहारि निहारि ।
जीभड़ियां छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि ॥ २२ ॥
इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूं जीव ।
लोही सींचौं तेल ज्यूं, कब मुख देखौं पीव ॥ २३ ॥
नैंनां नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम ।
पपीहा ज्यूं पिव पिव करौं, कबरु मिलहुगे राम ॥ २४ ॥
अंषड़ियां प्रेम कसाइयां, लोग जांणैं दुखड़ियां ।
साईं अपणैं कारणैं, रोइ रोइ रतड़ियां ॥ २५ ॥
सोई आंसू सजणां, सोई लोक बिड़ांहि ।
जे लोइण लोंहीं चुवै, तौ जांणौं हेत हियांहि ॥ २६ ॥
कबीर हसणां दूरि करि, करि रोवण सौं चित्त ।
बिन रोयां क्यूं पाइए, प्रेम पियारा मित्त ॥ २७ ॥
जौ रोऊं तौ बल घटै, हँसौं तौ राम रिसाइ ।
मनही मांहि बिसूरणां, ज्यूं घुंण काठहिं खाइ ॥ २८ ॥
हँसि हँसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ ।
जे हांसेंही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागनि कोइ ॥ २९ ॥

हाँसी खेलौं हरि मिलै, तौ कौण सहै षरसान ।
काम क्रोध त्रिष्णां तजै, ताहि मिलै भगवान ॥ ३० ॥

पूत पियारो पिता कौं, गौंहनि लागा धाइ ।
लोभ मिठाई हाथि दे, आपण गया भुलाइ ॥ ३१ ॥

डारी खाँड़ पटकि करि, अंतरि रोस उपाइ ।
रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाइ ॥ ३२ ॥

नैंनां अंतरि आचरूं, निस दिन निरषौं तोंहि ।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोंहि ॥ ३३ ॥

कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ ।
बिरहणि पिव पावै नहीं, जियरा तलपै माइ ॥ ३४ ॥

कै बिरहनि कूं मींच दे, कै आपा दिखलाइ ।
आठ पहर का दाझणां, मोपैं सह्या न जाइ ॥ ३५ ॥

बिरहणि थी तौ क्यूं रहीं, जली न पिव के नालि ।
रहु रहु मुगध गहेलड़ी, प्रेम न लाजूं मारि ॥ ३६ ॥

हौं बिरह की लकड़ी, समझि समझि धूंधाउं ।
छूटि पड़ौं या बिरह तैं, जे सारीही जलि जाऊं ॥ ३७ ॥

कबीर तन मन यौं जल्या, बिरह अगनि सूं लागि ।
मृतक पीड़ न जांणई, जांणैंगी यहु आगि ॥ ३८ ॥

बिरह जलाई मैं जलौं, जलती जल हरि जाऊं ।
मो देख्यां जल हरि जलै, संतौ कहां बुझाऊं ॥ ३९ ॥

परबति परबति मैं फिरया, नैंन गँवाये रोइ ।
सो बूटी पाँऊं नहीं, जातैं जीवनि होइ ॥ ४० ॥

---

(३२) ख—में इसके अनन्तर यह दोहा है—

मो चित तिलौं न बीसरौ, तुम्ह हरि दूरि थंयाह ।
इहि अंगि औलू भाइ जिसी, जदि तदि तुम्ह म्यलियांह ॥

फाड़ि पुटोला धज करौं, कामलड़ी पहिराउं।
जिहिं जिहि भेषां हरि मिलै, सोइ सोइ भेष कराउं ॥ ४१ ॥
नैंन हमारे जलि गए, छिन छिन लोड़ैं तुझ।
नां तूं मिलै न मैं खुसी, ऐसी बेदन मुझ ॥ ४२ ॥
भेला पाया श्रम सौं, भौसागर के मांहि।
जे छांडौं तौ डूबिहौं, गहौं त डसिये बांह ॥ ४३ ॥
रैंणा दूर बिछोहिया, रहु रे संषम झूरि।
देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊगे सूरि ॥ ४४ ॥
सुखिया सब संसार है, खायै अरू सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोवै ॥ ४५ ॥ ११२ ॥

---

(४) ग्यान बिरह कौ अंग

दीपक पावक आंणिया, तेल भी आंण्या संग।
तीन्यूं मिलि करि जोइया, (तब) उडि उडि पड़ैं पतंग ॥ १ ॥
मारया है जे मरैगा, बिन सर थोथी भालि।
पड़या पुकारै ब्रिछ तरि, आजि मरै कै कालिह ॥ २ ॥
हिरदा भीतरि दौं बलै, धूंवां न प्रगट होइ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ ॥ ३ ॥
झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूत ॥ ४ ॥
अगनि जु लागी नीर मैं, कंदू जलिया झारि।
उतर दषिण के पंडिता, रहे बिचारि बिचारि ॥ ५ ॥

---

(४३) ख—में इसके आगे यह दोहा है।

बिरह जलाई मैं जलौं, मो बिरहनि कै दुष।
छाहन बैसों डरपती, मति जलि ऊठै रूष ॥ ४६ ॥

दौं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ ।
दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाय ॥ ६ ॥
गुर दाधा चेला जल्या, बिरहा लागी आगि ।
तिणका बपुड़ा ऊबरया, गलि पूरे कै लागि ॥ ७ ॥
अहेड़ी दौं लाइया, मृग पुकारे रोइ ।
जा बन मैं क्रीला करी, दाझत है बन सोइ ॥ ८ ॥
पाणीं मांहैं प्रजली, भई अप्रबल आगि ।
बहती सलिता रहि गई, मंछ रहे जल त्यागि ॥ ९ ॥
समंदर लागी आगि, नदियां जलि कोइला भईं ।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढि गईं ॥ १० ॥ १२२ ॥

---

(५) परचा कौ अंग

कबीर तेज अनंत का, मानौं ऊगी सूरज सेणि ।
पति सँगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि ॥ १ ॥
कौतिग दीठा देह बिन, रवि ससि बिना उजास ।
साहिब सेवा मांहिं है, बेपरवांही दास ॥ २ ॥
पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान ।
कहिबे कूं सोभा नहीं, देख्याही परवान ॥ ३ ॥
अगम अगोचर गमि नहीं, तहां जगमगै जोति ।
जहां कबीरा बंदिगी, (तहां) पाप पुन्य नहीं छोति ॥ ४ ॥
हदे छाडि बेहदि गया, हुवा निरंतर बास ।
कवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास ॥ ५ ॥

---

(६) ख—कवल जो फूला फूल बिन ।
(१०) ख—में इसके आगे यह दोहा है—
बिरहा कहै कबीरकौं तूं जनि छांड़ै मोहि
पारब्रह्म के तेज मैं, तहाँ ले राखौं तोहि ॥

कबीर मन मधकर भया, रह्या निरंतर बास ।
कवल ज फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास ॥ ६ ॥

अंतरि कवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहाँ होइ ।
मन भवरा तहां लुबधिया, जांणैंगा जन कोइ ॥ ७ ॥

सायर नाहीं सीप बिन, स्वांति बूंद भी नाहिं ।
कबीर मोती नीपजैं, सुन्नि सिषर गढ मांहि ॥ ८ ॥

घट मांहैं औघट लह्या, औघट मांहैं घाट ।
कहि कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट ॥ ६ ॥

सूर समांणां चंद मैं, दहूं किया घर एक ।
मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख ॥ १० ॥

हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान ।
मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया बिश्राम ॥ ११ ॥

देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख ।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख ॥ १२ ॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत ।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत ॥ १३ ॥

प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास ।
मुखि कसतूरी महमहीं, बांणीं फूटी बास ॥ १४ ॥

मन लागा उन मन्न सौं, गगन पहुँचा जाइ ।
देख्या चंद बिहूँणां चांदिणां, तहां अलख निरंजन राइ ॥१५॥

मन लागा उन मन सौं, उन मन मनहि बिलग ।
लूंण बिलगा पांणियां, पांणीं लूंण बिलग ॥ १६ ॥

पांणीं ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ ॥ १७ ॥

---

(९) क—औघट पाइया ।

भली भई जु मै पड्या, गई दसा सब भूलि ।
पाला गलि पांणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि ॥ १८ ॥

चौहटै च्यंतामंणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि ।
मीरां मुझसूं मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि ॥ १९ ॥

पंषि उडाणीं गगन कूं, प्यंड रह्या परदेस ।
पांणीं पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देस ॥ २० ॥

पंषि उडानीं गगन कूं, उड़ी चढ़ी असमान ।
जिहिं सर मंडल भेदिया, सो सर लागा कान ॥ २१ ॥

सुरति समांणीं निरति मैं, निरति रही निरधार ।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार ॥ २२ ॥

सुरति समांणीं निरति मैं, अजपा मांहैं जाप ।
लेख समांणां अलेख मैं, यूं आपा मांहैं आप ॥ २३ ॥

आया था संसार मैं, देषण कौं बहु रूप ।
कहै कबीरा संत हौ, पड़ि गया नजरि अनूप ॥ २४ ॥

अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं नांहीं धीर ।
कहै कबीर ते क्यूं मिलैं, जब लग दोइ सरीर ॥ २५ ॥

सचुपाया सुख ऊपनां, अरु दिल दरिया पूरि ।
सकल पाप सहजैं गये, जब सांईं मिल्या हजूरि ॥ २६ ॥

धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया, नहीं तारा ।
तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा ॥ २७ ॥

जा दिन कृतमनां हुता, होता हट न पट ।
हुता कबीरा राम जन, जिनि देखै औघट घट ॥ २८ ॥

थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ ॥ २९ ॥

---

(२६) ख—सकल अघ

हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप ।
निस बासुरि सुख निध्य लह्या, जब अंतरि प्रगट्या आप ॥३०॥
तन भीतरि मन मानियां, बाहरि कहा न जाइ ।
ज्वाला तैं फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ ॥ ३१ ॥
तत पाया तन बीसरया, जब मनि धरिया ध्यान ।
तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान ॥ ३२ ॥
जिनि पाया तिनि सू गह गह्या, रसनां लागी स्वादि ।
रतन निराला पाईया, जगत ढंढोल्या बादि ॥ ३३ ॥
कबीर दिल स्याबति भया, पाया फल संम्रथ्थ ।
सायर मांहि ढंढोलतां, हीरैं पड़ि गया हथ्थ ॥ ३४ ॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नांहि ।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या मांहि ॥ ३५ ॥
जा कारणि मैं ढूंढता, सनमुख मिलिया आइ ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ ॥ ३६ ॥
जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाई ठौर ।
सोई फिरि आपण भया, जासूं कहता और ॥ ३७ ॥
कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ ।
तेज पुंज पारस धणीं, नैंनूं रहा समाइ ॥ ३८ ॥
मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं ।
मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं ॥ ३९ ॥
गगन गरजि अंमृत चवै, कदली कवल प्रकास ।
तहां कबीरा बंदिगी, कै कोई निज दास ॥ ४० ॥
नींव बिहूंणां देहुरा, देह बिहूंणां देव ।
कबीर तहां बिलंबिया, करे अलष की सेव ॥ ४१ ॥
देवल मांहैं देहुरी, तिल जेहै बिसतार ।
मांहैं पाती मांहिं जल, मांहैं पूजणहार ॥ ४२ ॥

कबीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।
निस अँधियारी मिटि गई, बागे अनहद नूर॥ ४३ ॥

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान॥ ४४ ॥

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पांणीं को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥ ४५ ॥

सिव सकती दिसि कौंण जु जोवै, पछिम दिसा उठै धूरि।
जल मैं स्यंघ जु घर करै, मछली चढै खजूरि॥ ४६ ॥

अंमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारषू, अनभै उतरया पार॥ ४७ ॥

ममिता मेरा क्या करै, प्रेम उघाड़ीं पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौड़ि॥४८॥१७०॥

---

(६) रस कौ अंग

कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि॥ १ ॥

राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, मांगै सीस कलाल॥ २ ॥

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाइ॥ ३ ॥

हरि रस पीया जांणिये, जे कबहूं न जाइ खुमार।
मैमंता घूँमत रहै, नांही तन की सार॥ ४ ॥

मैमंता तिण नां चरै, सालै चिता सनेह।
बारि जु बांध्या प्रेम कै, डारि रह्या सिरि षेह॥ ५ ॥

मैमंता अविगत रता, अकलप आसा जीति।
राम अमलि माता रहै, जीवत मुकति अतीति ॥ ६ ॥
जिहि सर घड़ा न डूबता, अब मैं गल मलि मलि न्हाइ।
देवल बूडा कलस सूं, पंषि तिसाई जाइ ॥ ७ ॥
सबै रसांइण मैं किया, हरि सा और न कोइ ॥
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥ ८ ॥ १६८ ॥

---

(७) लांबि कौ अंग

काया कमंडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
तन मन जोबन भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर ॥ १ ॥
मन उलट्या दरिया मिल्या, लागा मलि मलि न्हांन।
थाहत थाह न आवई, तूं पुरा रहिमांन ॥ २ ॥
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूंद समानी समद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥ ३ ॥
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूंद मैं, सो कत हेर्‍या जाइ ॥ ४ ॥ १७२ ॥

---

(८) जर्णां कौ अंग

भारी कहौं त बहु डरौं, हलका कहूँ तौ झूठ।
मैं का जांणौं राम कूं, नैंनूं कबहूँ न दीठ ॥ १ ॥
दीठा है तौ कस कहूँ, कह्यां न को पतियाइ।
हरि जैसा है तैसा रहौ, तूं हरिषि हरषि गुण गाइ ॥ २ ॥

---

(८) ख—रिंचक घट मैं संचरै।

(१) क—हलवा कहूँ

ऐसा अदभुत जिनि कथै, अदभुत राखि लुकाइ।
बेद कुरानौं गमि नहीं, कह्यां न को पतियाइ ॥ ३ ॥
करता की गति अगम है, तूं चलि अपणैं उनमान।
धीरैं धीरैं पाव दे, पहुँचैंगे परवान ॥ ४ ॥
पहुँचैंगे तब कहैंगे, अमड़ैंगे उस ठांइ।
अजहूं बेरा समंद मैं, बोलि बिगूचैं कांइ ॥ ५ ॥ १७७ ॥

(९) हैरान कौ अंग

पंडित सेती कहि रहे, कह्यां न मानै कोइ।
ओ अगाध एका कहैं, भारी अचिरज होइ ॥ १ ॥
बसै अपंडी पंड मैं, ता गति लषै न कोइ।
कहै कबीरा संत हौ, बड़ा अचंभा मोहि ॥ २ ॥ १७९ ॥

(१०) लै कौ अंग

जिहि बन सीह न संचरै, पंषि उड़े नहीं जाइ।
रैनि दिवस का गमि नहीं, तहां कबीर रह्या ल्यौ लाइ ॥ १ ॥
सुरति ढीकुली ले जल्यौ, मन नित ढोलन हार।
कँवल कुवाँ मैं प्रेम रस, पीवै वारंवार ॥ २ ॥
गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुंनि ल्यौ घाट।
तहां कबीरै मठ रच्या, मुनि जन जोवैं बाट ॥ ३ ॥ १८२ ॥

(११) निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाले कंत ॥
जे हँसि बोलौं और सौं, तौं नील रँगाऊँ दंत ॥ १ ॥

(१०-२) ख—मन चित

नैनां अंतरि आव तूं, ज्यूं हौं नैन झँपेउं ।
नां हौं देखौं और कूं, नां तुझ देखन देउं ॥ २ ॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझकौं सौंपतां, क्या लागै मेरा ॥ ३ ॥
कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैंनूं रमइया रमि रह्या, दूजा कहां समाइ ॥ ४ ॥
कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास ।
समदहि तिणका बरि गिणै, स्वाँति बूंद की आस ॥ ५ ॥
कबीर सुख कौं जाइ था, आगैं आया दुख ।
जाहि सुख घरि आपणैं, हम जाणैं अरु दुख ॥ ६ ॥
दो जग तौ हम अंगिया, यहु डर नाहीं मुझ ।
भिस्त न मेरे चाहिये, बाझ पियारे तुझ ॥ ७ ॥
जे वो एकै जांणियां, तौ जांण्यां सब जांण ।
जे ओ एक न जांणियां, तो सबहीं जांण अजांण ॥ ८ ॥
कबीर एक न जांणियां, तौ बहु जांण्यां क्या होइ ।
एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥ ९ ॥
जब लग भगति सकांमता, तब लग निर्फल सेव ।
कहै कबीर वै क्यूं मिलैं, निहकांमी निज देव ॥ १० ॥
आसा एक जु राम की, दूजी आस निरास ।
पांणी मांहैं घर करैं, ते भी मरैं पियास ॥ ११ ॥

---

(७) ख—भिसति ।

(११) इसके आगे ख. में ये दोहे हैं—

आसा एक ज राम की, दूजी आस निवारि ।
आसा फिरि फिरि मारसी, ज्यूं चौपड़ि की सारि ॥ ११ ॥
आसा एक ज राम की, जुग जुग पुरवै आस ।
जै पाडल क्यों रे करै, बसैहिं जु चंदन पास ॥ १२ ॥

ज़े मन लागै एक सूं, तौ निरबाल्या जाइ ।
तूरा दुह मुखि बाजणां, न्याइ तमाचे खाइ ॥ १२ ॥

कबीर कलिजुग आइ करि, कीये बहुतज मीत ।
जिन दिल बंधी एक सूं, ते सुखु सोवै नचींत ॥ १३ ॥

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नांउं ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचै तित जाउं ॥ १४ ॥

तो तो करै त बाहुड़ौं, दुरि दुरि करै तौ जाउं
ज्यूं हरि राखै त्यूं रहौं, जो देवै सो खाउँ ॥ १५ ॥

मन प्रतीति न प्रेम रस, नां इस तन मैं ढंग ।
क्या जाणौं उस पीव सूं, कैसैं रहसी रंग ॥ १६ ॥

उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज ।
पतिव्रता नाँगी रहै, तौ उसही पुरिस कौं लाज ॥ १७ ॥

घरि परमेसुर पांहुणां, सुणौं सनेही दास ॥
षट रस भोजन भगति करि, ज्यूं कदे न छाड़ै पास ॥१८॥२०७॥

———

(१२) चितावणी कौ अंग

कबीर नौबति आपणीं, दिन दस लेहु बजाइ ।
ए पुर पटन ए गली, बहुरि न देखै आइ ॥ १ ॥

जिनकै नौबति बजाती, मैंगल बँधते बारि ।
एकै हरि के नाँव बिन, गए जन्म सब हारिं ॥ २ ॥

ढोल दमामा दुड़बड़ी, सहनाई संगि भेरि ।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोई राखै फेरि ॥ ३ ॥

सातौं सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग ।
ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग ॥ ४ ॥

कबीर थोड़ा जीवणां, माड़े बहुत मँड़ाण ।
सबही ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलितान ॥ ५ ॥
इक दिन ऐसा होइगा, सब सूं पड़ै बिछोह ।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होई ॥ ६ ॥
कबीर पटण कारिवां, पंच चोर दस द्वार ।
जम रांणौं गढ भेलिसी, सुमिरि लै करतार ॥ ७ ॥
कबीर कहा गरबियौ, इस जोबन की आस ।
केसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास ॥ ८ ॥
कबीर कहा गरबियौ, देही देखि सुरंग ।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यूं कांचली भुवंग ॥ ९ ॥
कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि अवास ।
काल्हि परयुं भ्वैं लेटणां, ऊपरि जामैं घास ॥ १० ॥
कबीर कहा गरबियौ, चांम पलेटे हड ।
हैंवर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा खड ॥ ११ ॥
कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस ।
नां जांणौं कहां मारिसी, कै घरि कै परदेस ॥ १२ ॥
यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल ।
दिन दस के ब्यौहार कौं, झूठै रंगि न भूलि ॥ १३ ॥

---

(६) ख० में इसके आगे यह दोहा है—

ऊजड़ खेड़ै ठीकरी, घड़ि घड़ि गए कुँभार ।
रावण सरीखे चलि गए, लंका के सिकदार ॥ ७ ॥

(७) ख—जम...भेलसी, बोल गले गोपाल ।

(१२) ख—कत मारसी ।

(१३) ख० में इसके आगे ये दोहे हैं—

मौति बिसारी बावरे, अचिरज कीया कौन ।
तन माटी मैं मिलि गया, ज्यूं आटे मैं लूण ॥ १५ ॥

जांमण मरण बिचारि करि, कूड़े कांम निवारि ।
जिनि पंथूं तुझ चालणां, सोई पंथ सँवारि ॥ १४ ॥
बिन रखवाले बाहिरा, चिड़ियैं खाया खेत ।
आधा प्रधा ऊबरै, चेति सकै तौ चेति ॥ १५ ॥
हाड जलै ज्यूं लकड़ी, केस जलै ज्यूं घास ।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास ॥ १६ ॥
कबीर मंदिर ढहि पड़या, सैंट भई सैवार ।
कोई चेजारा चिणि गया, मिल्या न दूजी बार ॥ १७ ॥
कबीर देवल ढहि पड़या, ईंट भई सैंवार ॥
करि चिजारा सौं प्रीतिड़ी, ज्यूं ढहै न दूजी बार ॥ १८ ॥
कबीर मंदिर लाष का, जड़िया हीरैं लालि ।
दिवस चारि का पेषणां, बिनस जाइगा कालिह ॥ १९ ॥
कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ो ज बांधी एह ।
दिवस चारि का पेषणां, अंति षेह की षेह ॥ २० ॥

[१६, १७ नंबर के दोहे क० प्रति में २२, २३ नंबर पर हैं]
आजि कि कालिह कि पचे दिन, जंगल होइगा बास ।
ऊपरि ऊपरि फिरहिंगे, ढोर चरंदे घास ॥ १८ ॥
मरहिंगे मरि जाहिंगे, नांव न लेगा कोइ ।
ऊजड़ जाइ बसाहिंगे, छाड़ि बसंती लोइ ॥ १९ ॥
कबीर खेति किसांण का, म्रगौं खाया झाड़ि ।
खेत बिचारा क्या करै, जो खसम न करई बारे ॥ २० ॥
(१६) ख० में इसके आगे ये दोहे हैं—
मडा जलै लकड़ी जलै, जलै जलावणहार ।
कौतिगहारे भी जलैं, कासनि करौं पुकार ॥ २३ ॥
कबीर देवल हाड़ का, मारी तणा बधांण ।
खड हडतां पाया नहीं, देवल का सहनांण ॥ २४ ॥
(१७) ख—देवल ढहि ।
(१८) ख—धूलि समेटि ।

कबीर जे धंधै तौ धूलि, बिन धंधै धूलै नहीं ।
ते नर बिनठे मूलि, जिनि धंधै मैं ध्याया नहीं ॥ २१ ॥
कबीर सुपनैं रैनि कै, ऊघड़ि आये नैंन ।
जीव पड़्या बहु लूटि मैं, जागै तौ लैंण न दैण ॥ २२ ॥
कबीर सुपनैं रैंनि कै, पारस जीय मैं छेक ।
जे सोऊं तौ दोइ जणां, जे जागूं तौ एक ॥ २३ ॥
कबीर इस संसार मैं, घणौ मनिष मतिहींण ।
रान नाम जांणैं नहीं, आए टापा दीन ॥ २४ ॥
कहा कीयौ हम आइ करि, कहा कहैंगे जाइ ।
इत के भए न उत के, चाले मूल गँवाइ ॥ २५ ॥
आया अणआया भया, जे बहुरता संसार ।
पड़्या भुलांवां गाफिलां, गये कुबुधी हारि ॥ २६ ॥
कबीर हरि की भगति बिन, ध्रिग जीमण संसार ।
धूंवाँ केरा धौलहर, जात न लागै बार ॥ २७ ॥
जिहि हरि की चोरी करी, गये राम गुण भूलि ।
ते बिधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि ॥ २८ ॥
माटी मलणि कुँभार की, घणीं सहै सिरि लात ।
इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अब की घात ॥ २९ ॥
इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूं पाली देह ।
राम नाम जाण्या नहीं, अंति पड़ी मुख षेह ॥ ३० ॥

---

(२२) ख—बहु भूलि मैं ।
(२३) इसके आगे ख. में यह दोहा है—
कबीर इहै चितावणीं, जिन संसारी जाइ ।
जे पहली सुख भोगिया, तिनका गुड ले खाइ ॥ ३० ॥
(२४) ख. में इसके आगे यह दोहा है—
पीपल रूनौं फूल बिन, फल बिन रूनी गाइ ।
एकां एकां माणसां, टापा दीन्हा आइ ॥ ३२ ॥

राम नाम जाण्यौं नहीं, लागी मोटी षोड़ि ।
काया हाँडो काठ की , ना ऊँ चढै बहोड़ि ॥ ३१ ॥
राम नाम जाण्या नहीं, बात बिनंठो मूल ।
हरत इहां ही हारिया, परति पड़ो मुखि धूलि ॥ ३२ ॥
राम नाम जाण्यां नहीं, पाल्यो कटक कुटंब ।
धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न बंब ॥ ३३ ॥
मनिषा जनम दुलभ है, देह न बारंबार ।
तरवर थैं फल झड़ि पड़्या, बहुरि न लागै डार ॥ ३४ ॥
कबीर हरि की भगति करि, तजि विषिया रस चोज ।
बार बार नहीं पाइए, मनिषा जन्म की मौज ॥ ३५ ॥
कबीर यहु तन जात है, सकै तौ ठाहर लाइ ।
कै सेवा करि साध की , कै गुण गोबिंद के गाइ ॥ ३६ ॥
कबीर यहु तन जात है, सकै तौ लेहु बहोड़ि ।
नागे हाथूं ते गये, जिनकै लाष करोड़ि ॥ ३७ ॥
यहु तन काचा कुंभ है, चोट चहूं दिसि खाइ ।
एक राम के नाँव बिन, जदि तदि प्रलै जाइ ॥ ३८ ॥

---

(३२) ख० में इसके आगे ये दोहे हैं—

राम नाम जाण्यां नहीं, मेल्या मनहि बिसारि ।
ते नर हाली बादरी, सदा पराए बारि ॥ ४२ ॥
राम नाम जाण्यां नहीं, ता मुखि आनहि आन ।
कै मूसा कै कातरा, खातां गया जनम ॥ ४३ ॥
राम नाम जाण्यों नहीं, हूवा बहुत अकाज ।
बूड़ा लौरे बापुड़ा, बड़ां बूटां की लाज ॥ ४४ ॥

(३५) ख० में इसके आगे यह दोहा है—

पाणीं ज्यौर तलाब का, दह दिसि गया बिलाइ ।
यह सब यौंही जायगा, सकै तो ठाहर लाइ ॥ ४८ ॥

(३६) ख—कै गोविंद का गुण गाइ ।

(३७) ख—नागे पाऊं ।

यहु तन काचा कुंभ है, लियां फिरै था साथि।
ढबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि॥ ३९॥
काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि।
राम कबीरै रुचि भई, याही ओषदि साधि॥ ४०॥
कबीर अपनें जीवतैं, ए दोइ बातैं धोइ।
लोभ बडाई कारणै, अछता मूल न खोइ॥ ४१॥
खंभा ऐक गइंद दोइ, क्यूं करि बंधिसि बारि।
मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि॥ ४२॥
दीन गँवाया दुनीं सौं, दुनी न चाली साथि।
पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपणै हाथि॥ ४३॥
यहु तन तौ सब बन भया, करंम भए कुहाड़ि।
आप आप कूं काटिहैं, कहै कबीर बिचारि॥ ४४॥
कुल खोयाँ कुल ऊबरै, कुल राख्याँ कुल जाइ।
राम निकुल कुल भेंटि लै, सब कुल रह्या समाइ॥ ४५॥
दुनियां के धोखै मुवा, चलै जु कुल की कांणि।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धरया मसांणि॥ ४६।
दुनियां भाँडा दुख का, भरी मुहांमुह भूष।
अदया अलह राम की, कुरहै ऊंणीं कूष॥ ४७॥
जिहि जेवड़ी जग बंधिया, तूं जिनि बँधै कबीर।
ह्वैसी आटा लूंण ज्यूं, सोना सँवाँ सरीर॥ ४८॥

---

(३९) ख० में इसके आगे यह दोहा है—

यह तन काचा कुंभ है, माँहि किया ढिग बास।
कबीर नैंण निहारियाँ, तौ नहीं जीवण की आस॥ ४२॥

(४६) ख—का कौ लाजसी।

(४७) इसके आगे ख. में यह दोहा है—

दुनियाँ कै मैं कुछ नहीं, मेरे दुनी अकथ।
साहिब दरि देखौं खड़ा, सब दुनिया दोजग जंत॥ ८१॥

कहत सुनत जग जात है, विषै न सूझै काल ।
कबीर प्यालै प्रेम कै, भरि भरि पिवै रसाल ॥ ४९ ॥
कबीर हद के जीव सूं, हित करि मुखां न बोलि ।
जे लागे बेहद सूं, तिन सूं अंतर खोलि ॥ ५० ॥
कबीर केवल राम की, तूं जिनि छाड़ै ओट ।
घण अहरणि बिचि लोह ज्यूं, घणीं सहै सिरि चोट ॥ ५१ ॥
कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी झालि ।
कूड़ बड़ाई बूड़सी, भारी पड़सी कालिह ॥ ५२ ॥
काया मंजन क्या करै, कपड़ धोइम धोइ ।
उजल हूवा न छूटिए, सुख नींदड़ीं न सोइ ॥ ५३ ॥
उजल कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खांहिं ।
एकै हरि का नाँव बिन, बांधे जमपुरि जांहिं ॥ ५४ ॥
तेरा संगी को नहीं, सब स्वारथ बंधी लोइ ।
मनि परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ ॥ ५५ ॥
मांइ बिड़ांणीं बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ांह ।
दरिया केरी नाव ज्यूं, संजोगे मिलियांह ॥ ५६ ॥
इत प्रघर उत घर, बणजण आये हाट ।
करम किरांणां बेचि करि; उठि ज लागे बाट ॥ ५७ ॥

---

(५०) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
कबीर साषत की सभा, तूं मत बैठे जाइ ।
एकै बाड़ै क्यूं बड़ै, रोझ गदहड़ा गाइ ॥ ६९ ॥
(५४) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
थली चरतै म्रिघ लै, बींध्या एकज सौंण ।
हम तौ पंथी पंथ सिरि, हरथा चरैगा कौण ॥ ७० ॥
(५७) ख—
पशि परिचि [illegible] घरि, [illegible] आए हाट ।

नांन्हां काती चित दे, महँगे मोलि बिकाइ।
गाहक राजा राम है, और न नेड़ा आइ ॥ ५८ ॥

डागल उपरि दौड़णां, सुख नींदड़ी न सोइ।
पुनैं पाये द्यौंहड़े, ओछी ठौर न खोइ ॥ ५९ ॥

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तौ निकसी भाजि।
कब लग राखौं हे सखी, रूई पलेटी आगि ॥ ६० ॥

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैंषड़ा, मेरी गल की पास ॥ ६१ ॥

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवणहार।
हलके हलके तिरि गये, बूड़े तिनि सिर भार ॥ ६२ ॥ २६२॥

---

(५९) ख—पुन पाया देहड़ी, वोछी ठौर न खांइ ॥

(५९) ख० में इसके आगे यह दोहा है—

ज्यूं कोली पेतां बुणैं, बुणतां आवै बोड़ि।
ऐसा लेखा मीच का, कछु दौड़ि सकैं तो दौड़ि ॥ ७६ ॥

(६१) ख० में इसके आगे ये दोहे हैं—

मेर तेर की जिवड़ी, बसि बंध्या संसार।
कहाँ सकुंणवा सुत कलित, दाझणि बारंबार ॥ ७९ ॥

मेर तेर की रासड़ीं, बलि बंध्या संसार।
दास कबीरा जिमि बँधै, जाकै राम अधार ॥ ८२ ॥

कबीर नांव जरजरी, भरी बिरांणै भारि।
खेवट सौं परचा नहीं, क्यों करि उतरै पारि ॥ ८३ ॥

(६२) ख० में इसके आगे यह दोहा है—

कबीर पगड़ा दूरि है, जिनकै बिचिहै राति।
का जाणौं का होइगा, ऊगवै तै परभाति ॥ ८९ ॥

(१३) मन कौ अंग

मन कै मतै न चालिये, छाडि जीव की बांणि ।
ताकू केरे सूत ज्यूं, उलटि अपूठा आंणि ॥ १ ॥
चिंता चिति निबारिये, फिरि बूझिये न कोइ ।
इंद्री पसर मिटाइये, सहजि मिलैगा सोइ ॥ २ ॥
आसा का ईंधण करूं, मनसा करूं बिभूति ।
जोगी फेरी फिल करौं, यौं बिननां वैं सूति ॥ ३ ॥
कबीर सेरी सांकड़ी, चंचल मनवां चोर ।
गुण गावै लैलीन होइ, कछू एक मन मैं और ॥ ४ ॥
कबीर मारूं मन कूं, टूक टूक ह्वै जाइ ।
बिष की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ ॥ ५ ॥
इस मन कौं बिसमल करौं दीठा करौं अदीठ ।
जे सिर राखौं आपणां, तौ पर सिरिज अंगीठ ॥ ६ ॥
मन जांणैं सब बात, जाणत ही औगुण करै ।
काहे की कुसलात, कर दीपक कूँवै पड़ै ॥ ७ ॥
हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ ।
मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुबिधा जाइ ॥ ८ ॥
मन दीयां मन पाइए, मन बिन मन नहीं होइ ।
मन उनमन उस अंड ज्यूं, अनल अकासां जोइ ॥ ९ ॥

---

(१) ख—केरा तार ज्यूँ ।
(२) ख—पसर निबारिए ।
(८) ख. में इसके आगे ये दोहे हैं—

कबीर मन मृघा भया, खेत बिराना खाइ ।
सूलां करि करि से किसी, जब खसम पहूँचे आइ ॥ ६ ॥
मन को मन मिलता नहीं, तौ होता तन का भंग ।
अब है रहु काली कांवली, ज्यौं दूजा चढ़ै न रंग ॥ १० ॥

मन गोरख मन गोव्यिंदौ, मन हीं औघड़ होइ ।
जे मन राखै जतन करि, तौ आपैं करता सोइ ॥ १० ॥
एक ज दोसत हम किया, जिस गलि लाल कबाइ ।
सब जग धोबी धोइ मरै, तौ भी रंग न जाय ॥ ११ ॥
पांणीं हीं तैं पातला, धूंवां हीं तैं झींण ।
पवनां बेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह ॥ १२ ॥
कबीर तुरी पलांणियां, चाबक लीया हाथि ।
दिवस थकां सांईं मिलौं, पीछैं पड़िहै राति ॥ १३ ॥
मनवां तौ अधर बस्या, बहुतक झीणां होइ ।
आलोकत सचुपाइया, कबहूं न न्यारा सोइ ॥ १४ ॥
मन न मारया मन करि, सके न पंच प्रहारि ।
सील साच सरधा नहीं, इंद्री अजहूं उघारि ॥ १५ ॥
कबीर मन बिकरै पड़या, गया स्वाद कै साथि ।
गलका खाया बरजतां, अब क्यूं आवै हाथि ॥ १६ ॥
कबीर मन गाफिल भया, सुमिरण लागै नाहिं ।
घणीं सहैगा सासनां, जम की दरगह माहिं ॥ १७ ॥
कोटि कर्म पल मैं करै, यहु मन बिषिया स्वादि ।
सतगुर सबद न मानई, जनम गँवाया बादि ॥ १८ ॥
मैंमंता मन मारि रे, घटहीं माहैं घेरि ।
जबहीं चालै पीठि दे, अंकुस दे दे फेरि ॥ १९ ॥
मैमंता मन मारि रे, नांन्हां करि करि पीसि ।
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीसि ॥ २० ॥
कागद केरी नाँव री, पांणी केरी गंग ।
कहै कबीर कैसैं तिरूं, पंच कुसंगी संग ॥ २१ ॥

---

(१९) ख० में इसके आगे यह दोहा है—
जै तन मांहै मन धरै, मन धरि निर्मल होइ ।
साहिब सौं सनमुख रहै, तौ फिरि बालक होइ ॥ ५२ ॥

कबीर यहु मन कत गया, जो मन होता काल्हि ।
डूंगरि बूठा मेह ज्यूं, गया निबांणां चालि ।। २२ ।।

मृतक कूं धी जैं नहीं, मेरा मन बी है ।
बाजै बाव बिकार की, भी मूवा जीवै ।। २३ ।।

काटी कूटी मछली, छींकै धरी चहोड़ि ।
कोइ एक अषिर मन बस्या, दह मैं पड़ी बहोड़ि ।। २४ ।।

कबीर मन पंषी भया, बहुतक चढ़्या अकास ।
उहां हीं तैं गिरि पड़्या, मन माया के पास ।। २५ ।।

भगति दुवारा संकड़ा, राई दसवैं भाइ ।
मन तौ मैंगल ह्वै रह्यो, क्यूं करि सकै समाइ ।। २६ ।।

करता था तौ क्यूं रह्या, अब करि क्यूं पछताइ ।
बोवै पेड बंबूल का, अंब कहां तैं खाइ ।। २७ ।।

काया देवल मन धजा, बिषै लहरि फहराइ ।
मन चाल्यां देवल चलै, ताका सर्वस जाइ ।। २८ ।।

मनह मनोर्थ छाड़ि दे, तेरा किया न होइ ।
पांणीं मैं घीव नीकसै, तौ रूखा खाइ न कोइ ।। २९ ।।

काया कसूं कमांण ज्यूं, पंचतत्त करि बांण ।
मारौं तौ मन मृग कौं, नहीं तौ मिथ्या जांण ।। ३० ।। २९२ ।।

---

(२४) इसके आगे ख० में ये दोहे हैं—

मूवा मन हम जीवत देख्या, जैसैं मड़िहट भूत ।
मूवां पीछे उठि उठि लागै, ऐसा मेरा पूत ।। ४७ ।।
मूवै कौंधी जैं नहीं, मन का किसा बिसास ।
साधू तब लग डर करै, जब लग पंजर सास ।। २८ ।।

(३०) इसके आगे ख० में यह दोहा है—

कबीर हरि दिवान कै क्यूंकर पावै दादि ।
पहली बुरा कमाइ करि, पीछे करै फिलादि ।। [illegible] ।।

(१४) सूषिम मारग कौ अंग

कौण देस कहां आइया, कहु क्यूं जांण्यां जाइ।
वहु मार्ग पावैं नहीं, भूलि पड़े इस मांहिं ॥ १ ॥
उतीथैं कोइ न आवई, जाकूं बूझौं धाइ।
इतथैं सबै पठाइये, भार लदाइ लदाइ ॥ २ ॥
सबकूं बूझत मैं फिरौं, रहण कहै नहीं कोइ।
प्रीति न जोड़ी राम सूं, रहण कहां थैं होइ ॥ ३ ॥
चलौ चलौं सबको कहै, मोहि अँदेसा और।
साहिब सूं पर्चा नहीं, ए जांहिगे किस ठौर ॥ ४ ॥
जाइबे कौं जागा नहीं, रहिबे कौं नहीं ठौर।
कहै कबीरा संत हौ, अबिगति की गति और ॥ ५ ॥
कबीर मारिग कठिन है, कोई न सकई जाइ।
गए ते बहुड़े नहीं, कुसल कहै को आइ ॥ ६ ॥
जन कबीर का सिषर घर, बाट सलैली सैल।
पाव न टिकै पपीलका, लोगनि लादे बैल ॥ ७ ॥
जहां न चींटी चढि सकै, राई ना ठहराइ।
मन पवन का गमि नहीं, तहां पहूँचे जाइ ॥ ८ ॥
कबीर मारग अगम है, सब मुनिजन बैठे थाकि।
तहां कबीरा चलि गया, गहि सतगुर की साषि ॥ ९ ॥
सुर नर थाके मुनि जनां, जहां न कोई जाइ।
मोटे भाग कबीर के, तहां रहे घर छाइ ॥ १० ॥ ३०२ ॥

---

(२) इसके आगे ख० में यह दोहा है—
कबीर संसा जीव मैं, कोइ न कहै समझाइ।
नांनां बांणी बोलता, सो कत गया बिलाइ ॥ २ ॥

(१५) सूषिम जनम कौ अंग

कबीर सूषिम सुरति का, जीव न जांणैं जाल ।
कहै कबीरा दूरि करि, आतम अदिष्टि काल ॥ १ ॥

प्रांण पंड कौं तजि चलै, मूवा कहैं सब कोइ ।
जीव छंतां जांमैं मरै, सूषिम लखै न कोइ ॥ २ ॥ ३०४ ।

---

(१६) माया कौ अंग

जग हटवाड़ा स्वाद ठग, माया वेसां लाइ ।
रामचरन नीकां गही, जिनि जाइ जनम ठगाइ ॥ १ ॥

कबीर माया पापणीं, फंध ले बैठी हाटि ।
सब जग तौ फंधै पड़्या, गया कबीरा काटि ॥ २ ॥

कबीर माया पापणीं, लालै लाया लोग ।
पूरी किनहूँ न भोगई, इनका इहै बिजोग ॥ ३ ॥

कबीर माया पापणीं, हरि सूं करै हराम ।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥ ४ ॥

(१५-२) इसके आगे ये दोहे ख० में हैं—

कबीर अंतहकरन मन, करन मनोरथ मांहि ।
उपजित उतपति जांणिए, बिनसै जब बिसरांहि ॥ ३ ॥

कबीर संसा दूरि करि, जांमण मरन भरम ।
पंच तत्त तत्तहि मिलै, सुंनि समाना मन ॥ ४ ॥

(१६-१) ख० में इसके आगे यह दोहा है—

कबीर जिभ्या स्वाद तें क्यूं पल में ले काम ।
अंगि अविद्या ऊपजै, जाइ हिरदा में राम ॥ २ ॥

जांणौं जे हरि कौं भजौं, मो मनि मोटी आस ।
हरि बिचि घालै अंतरा, माया बड़ी बिसास ॥ ५ ॥
कबीर माया मोहनी, मोहे जांण सुजांण ।
भागां हीं छूटै नहीं, भरि भरि मारै बांण ॥ ६ ॥
कबीर माया मोहनी, जैसी मींठी खाँड ।
सतगुर की कृपा भई, नहीं तौ करती भाँड ॥ ७ ॥
कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घांणि ।
कोइ एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की कांणि ॥ ८ ॥
कबीर माया मोहनी, माँगी मिलै न हाथि ।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथि ॥ ९ ॥
माया दासी संत की, ऊँभी देइ असीस ।
बिलसी अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस ॥ १० ॥
माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर ।
आसा त्रिष्णां नां मुई, यौं कहि गया कबीर ॥ ११ ॥
आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ ।
सोइ मूवे धन संचते, सो उबरे जे खाइ ॥ १२ ॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगैं कूं होइ ।
सीस चढांयें पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥ १३ ॥
त्रीया त्रिष्णां पापणीं, तासूं प्रीति न जोड़ि ।
पैंड़ी चढि पाछां पड़ै, लागै मोटी खोड़ि ॥ १४ ॥
त्रिष्णां सींची नां बुझै, दिन दिन बधती जाइ ।
जवासा के रूष ज्यूं, घण मेहां कुमिलाइ ॥ १५ ॥

---

(५) ख०—हरि क्यौं मिलैं ।
(११) ख०—यूं कहै दास कबीर ।
(१२) ख०—सोई बूड़े जुधन संचते ।

कबीर जग की को कहै, भौ जलि बूडैं दास ।
पारब्रह्म पति छाड़ि करि, करैं मानि की आस ॥ १६ ॥
माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहीं जाइ ।
मानि बड़े मुनियर गिले, मानि सबनि कौं खाइ ॥ १७ ॥
रांमहिं थोड़ा जांणि करि, दुनियां आगैं दीन ।
जीवां कौं राजा कहैं, माया के आधीन ॥ १८ ॥
रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप ।
रांम नांम बिन बूडिहै, कनक कांमणीं कूप ॥१६ ॥
माया तरवर त्रिविध का, साखा दुख संताप ।
सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीकौ तनि ताप ॥ २० ॥
कबीर माया डाकणीं, सब किसही कौं खाइ ।
दांत उपाड़ौं पापणीं, जे संतौं नेड़ी जाइ ॥ २१ ॥
नलनी सायर घर किया, दौं लागी बहुतेणि ।
जलही माहैं जलि मुई, पूरब जनम लिषेणि ॥ २२ ॥
कबीर गुण की बादली, ती तरवानीं छांहि ।
बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगे मंदिर मांहिं ॥ २३ ॥
कबीर माया मोह की, भई अँधारी लोइ ।
जे सूते ते मुसि लिए, रहे बसत कूं रोइ ॥ २४ ॥
संकल ही तैं सब लहै, माया इहि संसार ।
ते क्यूं छूटैं बापुड़े, बाँधे सिरजनहार ॥ २५ ॥
बाड़ि चढ़ंती बेलि ज्यूं, उलझी आसा फंध ।
तूटै पणि छूटै नहीं, भई ज बाचा बंध ॥ २६ ॥

---

(२४) इसके आगे ख० में ये दोहे हैं—
माया काल की खाँणि है, धरि त्रिगुणी वपरीति ।
जहां जाइ तहां सुख नहीं, यहु माया की रीति ॥ २५ ॥
माया मन की मोहनी, सुर नर रहे लुभाइ ।
इनि माया जग खाइया, माया कौ कोई न खाइ ॥ २६

सब आसण आसा तणां, निवर्तिकै को नाहिं ।
निवरति कै निबहै नहीं, परवति परपंच मांहिं ॥ २७ ॥
कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह ।
जिहि घरि जिता बंधावणां, तिहिं घरि तिता अँदोह ॥ २८ ॥
माया हमसौं यों कह्या, तू मति दे रे पूठि ।
और हमारा हम बलू, गया कबीरा रूठि ॥ २९ ॥
बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़्या कलंक ।
और पँखेरू पी गए, हंस न बोवै चंच ॥ ३० ॥
कबीर माया जिनि मिलै, सौ बरियां दे बांह ।
नारद से मुनियर गिले, किसौ भरौसौ त्यांह ॥ ३१ ॥
माया की झल जग जल्या, कनक कांमिणीं लागि ।
कहु धौं किहि बिधि राखिये, रुई पलेटी आगि ॥ ३२ ॥ ३४६॥

---

(१७) चांणक कौ अंग

जीव बिलंब्या जीव सौं, अलष न लषिया जाइ ।
गोबिंद मिलै न झल बुझै, रही बुझाइ बुझाइ ॥ १ ॥
इही उदर कै कारणें, जग जांच्यौ निस जाम ।
स्वांमीं-पणौ जु सिरि चढ्यो, सर्‌या न एको काम ॥ २ ॥
स्वांमीं हूंणां सोहरा, दोद्धा हूंणां दास ।
गाडर आंणीं ऊन कूं, बांधी चरै कपास ॥ ३ ॥
स्वांमीं हूवा सीत का, पैका कार पचास ।
राम नांम कांठै रह्या, करै सिषां की आस ॥ ४ ॥
कबीर तष्टा टोकणीं, लीए फिरै सुभाइ ।
राम नांम चीन्हैं नहीं, पीतलि ही कै चाइ ॥ ५ ॥

---

(२९) ख०—गया कबीरा छूटि ।
(३२) ख०—रुई लपेटी आगि ।

कलि का स्वांमीं लोभिया, पीतलि धरी षटाइ ।
राज दुवारां यौं फिरै, ज्यूं हरिहाई गाइ ॥ ६ ॥

कलि का स्वांमीं लोभिया, मनसा धरी बधाइ ।
दैंहि पईसा ब्याज कौं, लेखाँ करतां जाइ ॥ ७ ॥

कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ ।
लालच लोभी मसकरा, तिनकूं आदर होइ ॥ ८ ॥

चारिउं बेद पढ़ाइ करि, हरि सूं न लाया हेत ।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूंढै खेत ॥ ९ ॥

बांह्मण गुरू जगत का, साधूं का गुरु नाहिं ।
उरझि पुरझि करि मरि रह्या, चारिउं बेदां माहिं ॥ १० ॥

साषित सण का जेवड़ा, भींगां सूं कठठाइ ।
दोइ अषिर गुरु बाहिरा, बांध्या जमपुरि जाइ ॥ ११ ॥

---

(८) ख०—कबीर कलिजुग आइया ।

(९) ख०—चारिवेद पंडित पढ्या, हरि सों किया न हेत ।

(१०) ख०—बांम्हण गुरु जगत का भर्म कर्म का पाइ ।
उलझि पुलझि करि मरि गया, चारयौं बेंदा मांहि ॥

(१०) इसके आगे ख० में ये दोहे हैं—

कलि का बाम्हण मसकरा, ताहि न दीजै दान ।
स्यौं कुटंब नरकहि चलै, साथ चल्या जजमान ॥ ११ ॥

ब्राम्हण बूड़ा बापुड़ा, जेनेऊ कै जोरि ।
लख चौरासी मां गेलई, पारब्रह्म सौं तोड़ि ॥ १२ ॥

(११) इसके आगे ख० में ये दोहे हैं—

कबीर साषत की सभा, तूं जिनि बैसे जाइ ।
एक दिवाड़ै क्यूं बड़ै, रीझ गदेहड़ा गाइ ॥ १४ ॥

साषत ते सूकर भला, सूचा राखे गाँव ।
बूड़ा साषत बापुड़ा, बैसि सभरणी नाँव ॥ १५ ॥

साषत बाम्हण जिनि मिलै, बैसनौ मिलौ चँडाल ।
अंक माल दे भेंटिए, मानूं मिले गोपाल ॥ १६ ॥

पाड़ोसी सू रूसणां, तिल तिल सुख की हांणि ।
पंडित भए सरावगी, पांणीं पीवें छांणि ।। १२ ।।
पंडित सेती कहि रह्या, भीतरि भेद्या नाहिं ।
औरूं कौं परमोधतां, गया मुहरकां मांहि ।। १३ ।।
चतुराई सूवै पढ़ी, सोई पंजर मांहि ।
फिरि प्रमोधै आंन कौं, आपण समझै नाहिं ।। १४ ।।
राखि पराई राषतां, खाया घर का खेत ।
औरों कौं प्रमोधतां, मुख मैं पड़िया रेत ।। १५ ।।
तारां मंडल बैसि करि, चंद बड़ाई खाइ ।
उदै भया जब सूर का, स्यूं तारां छिपि जाइ ।। १६ ।।
देषण के सबको भले, जिसे सीत के कोट ।
रवि कै उदै न दीसहीं, बँधै न जल की पोट ।। १७ ।।
तीरथ करि करि जग मुवा, डूंघै पांणीं न्हाइ ।
रांमहि रांम जपंतड़ां, काल घसीट्यां जाइ ।। १८ ।।
कासी कांठैं घर करैं, पीवैं निर्मल नीर ।
मुकति नहीं हरि नांव बिन, यौं कहै दास कबीर ।। १९ ।।
कबीर इस संसार कौं, समझाऊँ कै बार ।
पूंछ ज पकड़ै भेद की, उतर्या चाहै पार ।। २० ।।

---

(१३) ख०—कबीर व्यास कथा कहै, भीतरि भेदै नाहिं ।
(१४) इसके आगे ख० में यह दोहा है—
कबीर कहै पीर कूं, तूं समझावै सब कोइ ।
संसा पड़गा आपकौ, तौ और कहैं का होइ ।। २१ ।।
(१७) इसके आगे ख० में यह दोहा है—
सुणत सुणावत दिन गए, उलझि न सुलझ्या मान ।
कहै कबीर चेत्यौ नहीं, अजहुं पहलौ दिन ।। २४ ।।
(२०) इसके आगे ख० में यह दोहा है—
पद गायां मन हरषियां, साषी कह्यां आनंद ।
सो तत नांव न जाणियां, गल मैं पड़ि गया फंद ।। २७ ।।

कबीर मन फूल्या फिरै, करता हूँ मैं ध्रंम ।
कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखै भ्रंम ॥ २१ ॥
मेर तेर की जेवड़ी, बलि बंध्या संसार ।
कां सिकडूं बासुत कलित, दाझण बार बार ॥ २२ ॥ ३६८ ॥

---

(१८) करणीं बिना कथणीं कौ अंग

कथणीं कथी तौ क्या भया, जे करणीं नां ठहराइ ।
कालबूत के कोट ज्यूं, देषतहीं ढहिं जाइ ॥ १ ॥
जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै चाल ।
पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल मैं करै निहाल ॥ २ ॥
जैसी मुष तैं नीकसै, तैसी चालै नाहिं ।
मानिष नहीं ते स्वान गति, बांध्या जमपुर जांहि ॥ ३ ॥
पद गांएँ मन हरषिया, साषी कह्यां अनंद ।
सो तत नांव न जांणियां, गल मैं पड़िया फंध ॥ ४ ॥
करता दीसै कीरतन, ऊंचा करि करि तूंड ।
जांणैं बूझै कुछ नहीं, यौंहीं आंधां रूंड ॥ ५ ॥ ३७३ ॥

---

(१८) कथणीं बिना करणीं कौ अंग

मैं जांन्यूं पढ़िबौ भलौ, पढ़िबा थैं भलौ जोग ।
रांम नांम सूं प्रीति करि, भल भल नींदौ लोग ॥ १ ॥
कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुसतक देइ बहाइ ।
बांवन अषिर सोधि करि, ररै ममैं चित लाइ ॥ २ ॥
कबीर पढ़िबा दूरि करि, आथि पढ़्या संसार ।
पीड़ न उपजी प्रीति सूं, तौ क्यूंकरि करै पुकार ॥ ३ ॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ ।
ऐकै अषिर पीव का, पढ़ै सुपंडित होइ ॥ ४ ॥ ३७७ ॥

---

(२०) कामीं नर कौ अंग

कांमणि काली नागणीं, तीन्यूं लोक मँझारि ।
रांम सनेही ऊबरे, बिषई खाये झारि ॥ १ ॥
कांमणि मींनीं षांणि की, जे छेड़ौं तौ खाइ ।
जे हरि चरणां राचिया, तिनके निकटि न जाइ ॥ २ ॥
पर-नारी राता फिरैं, चोरी बिढ़ता खांहिं ।
दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला जांहिं ॥ ३ ॥
पर-नारी पर-सुंदरी, बिरला बंचै कोइ ।
खातां मींठी खाँड सी, अंति कालि बिष होइ ॥ ४ ॥
पर-नारी कै राचणैं, औगुण है गुण नांहि ।
षार समंद मैं मंछला, केता बहि बहि जांहिं ॥ ५ ॥
पर-नारी को राचणौं, जिसी ल्हसण की षांनि ।
षूंणैं बैसि रषाइए, परगट होइ दिवानि ॥ ६ ॥
नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम ।
कहै कबीर ते रांम के, जे सुमिरैं निहकाम ॥ ७ ॥
नारी सेती नेह, बुधि बबेक सबहीं हरै ।
कांइ गमावैं देह, कारिज कोई नां सरै ॥ ८ ॥

(२०-४) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

जहाँ जलाई सुंदरी, तहां तूं जिनि जाइ कबार ।
भसमी ह्वै करि जासिसी, सो मैं सवां सरीर ॥ २ ॥
नारी नाहीं माहरी, करै नैन की चोट ।
कोई एक हरिजन ऊबरै, पारब्रह्म की ओट ॥ ६ ॥

(६) क०—प्रगट होइ निदानि ।

नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रंग।
बेगि छाड़ि पछिताइगा, ह्वै है मूरति भंग ॥ ९ ॥
नारि नसावैं तीनि सुख, जा नर पासैं होइ।
भगति मुकति निज ग्यान मैं, पैसि न सकई कोइ ॥ १० ॥
एक कनक अरु कांमनीं, बिष फल कीएउ पाइ।
देखै हीं थैं बिष चढ़ै, खांयें सूं मरि जाइ ॥ ११ ॥
एक कनक अरु कांमनीं, दोऊ अगंनि की झाल।
देखें हीं तन प्रजलै, परस्यां ह्वै पैमाल ॥ १२ ॥
कबीर भग की प्रीतड़ी, केते गए गडंत।
केते अजहूँ जाइसी, नरकि हसंत हसंत ॥ १३ ॥
जोरू जूठणि जगत की, भले बुरे का बीच।
उत्यम ते अलगे रहैं, निकटि रहैं तें नीच ॥ १४ ॥
नारी कुंड नरक का, बिरला थंभै बाग।
कोइ साधू जन ऊबरै, सब जग मूवा लाग ॥ १५ ॥
सुंदरि थैं सूली भली, बिरला बंचै कोइ।
लोह निहाला अगनि मैं, जलि बलि कोइला होय ॥ १६ ॥
अंधा नर चेतै नहीं, कटै न संसै सूल।
और गुनह हरि बकससी, कांमीं डाल न मूल ॥ १७ ॥
भगति बिगाड़ी कांमियां, इंद्री केरै स्वादि।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गँवाया बादि ॥ १८ ॥
कामीं अमीं न भावई, बिषई कौं ले सोधि।
कुबधि न जाई जीव की, भावै स्यंभ रहौ प्रमोधि ॥ १९ ॥
बिषै बिलंबी आत्मां, ताका मजकण खाया सोधि।
ग्यांन अंकूर न ऊगई, भावै निज प्रमोध ॥ २० ॥

(१३) ख०—नरकि हसंत हसंत।

बिषै कर्म की कंचुली, पहरि हुआ नर नाग।
सिर फोड़ै सूझै नहीं, को आगिला अभाग॥ २१॥
कांमीं कदे न हरि भजै, जपै न केसौ जाप।
रांम कह्यां थैं जलि मरै, को पूरिबला पाप॥ २२॥
कांमीं लज्या नां करै, मन मांहैं अहिलाद।
नींद न मांगै सांथरा, भूष न मांगै स्वाद॥ २३॥
नारि पराई आपणीं, भुगत्या नरकहिं जाइ।
आगि आगि सबरौ कहै, तामैं हाथ न वाहि॥ २४॥
कबीर कहता जात हौं, चेतै नहीं गँवार।
बैरागी गिरही कहा, कांमीं वार न पार॥ २५॥
ग्यांनीं तौ नींडर भया, मांनैं नांहीं संक।
इंद्री केरे बसि पड़्या, भूँचै बिषै निसंक॥ २६॥
ग्यांनीं मूल गँवाइया, आपण भये करता।
ताथैं संसारी भला, मन मैं रहै डरता॥ २७॥ ४०४॥

---

(२१) सहज कौ अंग

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजैं बिषिया तजी, सहज कहीजै सोइ॥ १॥

---

(२२) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है--
रांम कहंता जे खिजैं, कोढ़ी ह्वै गलि जांहि।
सूकर होइ करि औतरैं, नांक बूंडतैं खांहि॥ २५॥

(२३) इसके आगे ख० में यह दोहा है--
कांमी थैं कूतौ भलौ, खोलै एक जु काछ।
रांम नांम जाणै नहीं, बांबी जेही बाच॥ २७॥

(२७) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है--
कांम कांम सबको कहै, कांम न चीन्हैं कोइ।
जेती मन में कांमनां, कांम कहींजै सोइ॥ ३२॥

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ ।
पाँचू राखै परसती, सहज कहींजै सोइ ॥ २ ॥
सहजैं सहजैं सब गए, सुत वित कांमणि कांम ।
एकमेक ह्वै मिलि रह्या, दासि कबीरा रांम ॥ ३ ॥
सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ ।
जिन्ह सहजैं हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ ॥ ४ ॥ ४०८ ॥

---

(२२) साच कौ अंग

कबीर पूंजी साह की, तूं जिनि खोवै ष्वार ।
खरी बिगूचनि होइगी, लेखा देती बार ॥ १ ॥
लेखा देणां सोहरा, जे दिल साँचा होइ ।
उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकड़ै कोइ ॥ २ ॥
कबीर चित चमंकिया, किया पयाना दूरि ।
काइथि कागद काढिया, तब दरिगह लेखा पूरि ॥ ३ ॥
काइथि कागद काढिया, तब लेखै वार न पार ।
जब लग सांस सरीर मैं, तब लग रांम सँभार ॥ ४ ॥
यहु सब झूठी बंदिगी, बरियां पंच निवाज ।
साचै मारै झूठ पढि, काजी करै अकाज ॥ ५ ॥
कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ ।
चढि मसीति एकै कहै, दरि क्यूं साचा होइ ॥ ६ ॥
काजी मुलां भ्रंमियां, चल्या दुनीं कै साथि ।
दिल थैं दींन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥ ७ ॥
जोरी करि जिबहै करैं, कहते हैं ज हलाल ।
जब दफतर देखैगा दई, तब ह्वैगा कौंण हवाल ॥ ८ ॥

जोरी कीयां जुलम है, मांगै न्याव खुदाइ।
खालिक दरि खूनी खड़ा, मार मुहे मुहिं खाइ॥ ९॥
सांई सेती चोरियां, चोरां सेती गुझ।
जांणैंगा रे जीवड़ा, मार पड़ैंगी तुझ॥ १०॥
सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौं कहां खुदाइ॥ ११॥
खूब खांड़ है खीचड़ी, मांहि पड़ै टुक लूंण।
पेड़ा रोटी खाइ करि, गला कटावै कौंण॥ १२॥
पापी पूजा बैसि करि, भषैं मांस मद दोइ।
तिनकी दष्या मुकति नहीं, कोटि नरक फल होइ॥ १३॥
सकल बरण इकत्र ह्वै, सकति पूजि मिलि खांहि।
हरि दासनि की भ्रांति करि, केवल जमपुरि जांहि॥ १४॥
कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नांहीं साच।
जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़ैं काच॥ १५॥
कबीर जिनि जिनि जांणियां, करता केवल सार।
सो प्रांणीं काहे चलै, झूठे जग की लार॥ १६॥
झूठे कौं झूठा मिलै, दूणां बधै सनेह।
झूठे कूं साचा मिलै, तब ही तूटै नेह॥ १७॥ ४२५॥

---

(२३) भ्रम बिधौंसण कौ अंग

पांहण केरा पूतला, करि पूजैं करतार।
इही भरोसै जे रहे, ते बूडे काली धार॥ १॥
काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पांहनि बोई पृथमीं, पंडित पाड़ी बाट॥ २॥

पांहन कूं का पूजिए, जे जनम न देई जाब ।
आंधा नर आसामुषी, यौंहीं खोवै आब ॥ ३ ॥
हम भी पांहन पूजते, होते रन के रोझ ।
सतगुर की कृपा भई, डारया सिर थैं बोझ ॥ ४ ॥
जेती देषैं आत्मां, तेता सालिगरांम ।
साधू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सूं कांम ॥ ५ ॥
सेवैं सालिगरांम कूं, मन की भ्रांति न जाइ ।
सीतलता सुपिनैं नहीं, दिन दिन अधकी लाइ ॥ ६ ॥
सेवैं सालिगरांम कूं, माया सेती हेत ।
बोढें काला कापड़ा, नांव धरावैं सेत ॥ ७ ॥
जप तप दीसैं थोथरा, तीरथ व्रत बेसास ।
सूवै सैं बल सेविया, यौं जग चल्या निरास ॥ ८ ॥
तीरथ त सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ ।
कबीर मूल निकंदिया, कौंण हलाहल खाइ ॥ ९ ॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जांणि ।
दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछांणि ॥ १० ॥
कबीर दुनियां देहुरै, सीस नवांवण जाइ ।
हिरदा भीतरि हरि बसै, तूं ताही सौं ल्यौ लाइ ॥ ११ ॥ ४३६ ॥

---

(३) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—
पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव ।
पूजणहारा अंधला, लागा खोटी सेव ॥ ४ ॥
कबीर गुड की गमि नहीं, पांहण दिया बनाइ ।
सिष सोधी बिन सेविया, पारि न पहुंच्या जाइ ॥ ५ ॥
(४) ख०—होते जंगल के रोझ ।

(२४) भेष कौ अंग

कर सेती माला जपै, हिरदै बहै डंडूल ।
पग तौ पाला मैं गिल्या, भाजण लागी सूल ॥ १ ॥

कर पकरैं अंगुरी गिनैं, मन धावै चहुँ वोर ।
जाहि फिरांयां हरि मिलै, सो भया काठ की ठौर ॥ २ ॥

माला पहरै मनमुषी, ताथैं कछू न होइ ।
मन माला कौं फेरतां, जुग उजियारा सोइ ॥ ३ ॥

माला पहरे मन मुषी, बहुतैं फिरैं अचेत ।
गांगी रोलै बहि गया, हरि सूं नांहीं हेत ॥ ४ ॥

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि ।
मन न फिरावै आपणां, कहा फिरावै मोहि ॥ ५ ॥

कबीर माला मन की, और सँसारी भेष ।
माला पहर्‌यां हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देष ॥६॥

माला पहर्‌यां कुछ नहीं, रुल्य मूवा इहि भारि ।
बाहरि ढोल्या हींगलू, भीतरि भरी भँगारि ॥ ७ ॥

माला पहर्‌यां कुछ नहीं, काती मन कै साथि ।
जब लग हरि प्रगटै नहीं, तब लग पड़ता हाथि ॥ ८ ॥

---

(५) ख० प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

कबीर माला काठ की मेल्ही मुगधि झुलाइ ।
सुमिरण की सोधी नहीं, जांणै डीगरि घाली जाइ ॥ ६ ॥

(६) इसके आगे ख० में यह दोहा है—

माला फेरत जुग भया, पाय न मन का फेर ।
कर का मनका छाड़ि दे, मन का मनका फेर ॥ ८ ॥

माला पहर्‌यां कुछ नहीं, गांठि हिरदा की खोइ ।
हरि चरनूं चित राखिये, तौ अमरापुर होइ ॥ ९ ॥
माला पहर्‌यां कुछ नहीं, भगति न आई हाथि ।
माथौ मुंछ मुंडाइ करि, चल्या जगत कै साथि ॥ १० ॥
सांईं सेंती साँच चलि, औरां सूं सुध भाइ ।
भावै लंबे केस करि, भावै घुरड़ि मुड़ाइ ॥ ११ ॥
केसों कहा बिगाड़िया, जे मूंडै सौ बार ।
मन कौं काहे न मूंडिए, जामैं बिषै बिकार ॥ १२ ॥
मन मैवासी मूंडि ले, केसौं मूंडै कांइ ।
जे कुछ किया सु मन किया, केसौं कीया नांहि ॥ १३ ॥
मूंड मुंडावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया रांम ।
रांम नांम कहु क्या करै, जे मन के औरै कांम ॥ १४ ॥
स्वांग पहरि सोरहा भया, खाया पीया षूंदि ।
जिहि सेरी साधू नीकले, सो तौ मेल्ही मूंदि ॥ १५ ॥
बैसनौं भया तौ का भया, बूझा नहीं बबेक ।
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ॥ १६ ॥
तन कौं जोगी सब करैं, मन कों बिरला कोइ ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ ॥ १७ ॥
कबीर यहु तौ एक है, पड़दा दीया भेष ।
भरम करम सब दूरि करि, सबहीं मांहिं अलेष ॥ १८ ॥

---

(९) ख० में इसके आगे यह दोहा है ।

माला पहर्‌यां कुछ नहीं, बांह्मण भगत न जाण ।
ब्यांह सरांधां कारटां, उंभू बैसे ताणि ॥ १२ ॥

(११) ख०—साधौं सैं सुध भाइ ।
(१५) ख०—जिहि सेरी साधु नीसरै, सो सेरी मेल्ही मूँदि ॥

भरम न भागा जीव का, अनंतहि धरिया भेष।
सतगुर परचै बाहिरा, अंतरि रह्या अलेष ॥ १९ ॥
जगत जहंदम राचिया, झूठे कुल की लाज।
तन बिनसें कुल बिनसिहै, गह्यौ न रांम जिहाज ॥ २० ॥
पष ले बूडो पृथमीं, झूठी कुल की लार।
अलष बिसारयौ भेष मैं, बूड़े काली धार ॥ २१ ॥
चतुराई हरि नां मिलै, ए बातां की बात।
एक निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ ॥ २२ ॥
नवसत साजे कांमनीं, तन मन रही सँजोइ।
पीव कै मनि भावै नहीं, पटम कीयें क्या होइ ॥ २३ ॥
जब लग पीव परचा नहीं, कन्यां कँवारी जांणि।
हथलेवा हैंसैं लिया, मुसकल पड़ी पिछांणि ॥ २४ ॥
कबीर हरि की भगति का, मन मैं षरा उल्हास।
मैंवासा भाजै नहीं, हूंण मतै निज दास ॥ २५ ॥
मैंवासा मोई किया, दुरिजन काढ़े दूरि।
राज पियारे रांम का, नगर बस्या भरिपूरि ॥२६॥४६२॥

---

(२५) कुसंगति कौ अंग

निरमल बूंद अकास की, पड़ि गई भोमि बिकार।
मूल बिनंठा मांनवी, बिन संगति भठछार ॥ १ ॥
मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भवंग मुषी, एक बूंद तिहुँ भाइ ॥ २ ॥
हरिजन सेती रूसणां, संसारी सूं हेत।
ते नर कदे न नीपजै, ज्यूं कालर का खेत ॥ ३ ॥
मारी मरूं कुसंग की, केला कांठै बेरि।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग न बेरि ॥ ४ ॥

मेर नीसांणीं मीच की, कुसंगति ही काल ।
कबीर कहै रे प्रांणियां, बांणीं ब्रह्म सँभाल ॥ ५ ॥
माषी गुड़ मैं गडि रही, पंष रही लपटाइ ।
ताली पीटै सिरि धुनैं, मींठै बोई माइ ॥ ६ ॥
ऊँचै कुल क्या जनमियां, जे करणीं ऊँच न होइ ।
सोवन कलस सुरै भर्या, साधूं निंद्या सोइ ॥ ७ ॥ ४६६ ॥

---

(२६) संगति कौ अंग

देखा देखी पाकड़ै, जाइ अपरचै छूटि ।
बिरला कोई ठाहरै, सतगुर सांमीं मूठि ॥ १ ॥
देखा देखी भगति है, कदे न चढई रंग ।
बिपति पड़्यां यूं छाड़सी, ज्यूं कंचुली भवंग ॥ २ ॥
करिए तौ करि जांणिये, सारीषा सूं संग ।
लीर लीर लोई थई, तऊ न छाड़ै रंग ॥ ३ ॥
यहु मन दीजै तास कौं, सुठि सेवग भल सोइ ।
सिर ऊपरि आरास है, तऊ न दूजा होइ ॥ ४ ॥
पांहण टांकि न तोलिए, हाडि न कीजै वेह ।
माया राता मांनवी, तिन सूं किसा सनेह ॥ ५ ॥
कबीर तासूं प्रीति करि, जो निरबाहै ओड़ि ।
बनिता बिबधि न राचिये, देषत लागै षोड़ि ॥ ६ ॥
कबीर तन पंषी भया, जहां मन तहां उड़ि जाइ ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ ॥ ७ ॥

---

(५) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
कबीर केहनैं क्या बणैं, अणमिलता सै संग ।
दीपक कै भावै नहीं, जलि जलि परै पतंग ॥ ६ ॥
(२६-४) ख०—तऊ न न्यारा होइ ।

काजल केरी कोठड़ी, तैसा यहु संसार ।
बलिहारी ता दास की, पै सिर निकसणहार ॥ ८॥ ४७७ ॥

---

(२७) असाध कौ अंग

कबीर भेष अतीत का, करतूति करै अपराध ।
बाहरि दीसै साध गति, मांहैं महा असाध ॥ १ ॥
उज्जल देखि न धोजिये, बग ज्यूं मांडै ध्यान ।
धोरै बैठि चपेटसी, यूं ले बूड़ै ग्यांन ॥ २ ॥
जेता मीठा बोलणां, तेता साध न जांणि ।
पहली थाह दिखाइ करि, ऊँडै देसी आंणि ॥ ३ ॥ ४८० ॥

---

(२८) साध कौ अंग

कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ ।
चंदन होसी बांवना, नींब न कहसी कोइ ॥ १ ॥
कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ ॥ २ ॥
मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ ।
साध संगति हरि भगति बिन, कछू न आवै हाथ ॥ ३ ॥
मेरे संगी दोइ जणां, एक बैष्णों एक रांम ।
वो है दाता मुकति का, वो सुमिराबै नांम ॥ ४ ॥
कबीर बन बन मैं फिरा, कारणि अपणैं रांम ।
रांम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब कांम ॥ ५ ॥

(२७-३) ख०—तेता भगति न जांणि ।
(२८-४) ख०—सुमिरावै रांम ।

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलांहिं ।
अंक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौं जांहि ॥ ६ ॥
कबीर चांदन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास ।
आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास ॥ ७ ॥
कबीर खाई कोट की, पांणीं पिवै न कोइ ।
जाइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदिक होइ ॥ ८ ॥
जांनि बूझि साचहिं तजैं, करैं झूठ सूँ नेह ।
ताकी संगति रांम जी, सुपिनैं ही जिनि देहु ॥ ९ ॥
कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तूं बसै ।
नहीं तर बेगि उठाइ, नित का गंजन को सहै ॥ १० ॥
केती लहरि समंद की, कत उपजै कत जाइ ।
बलिहारी ता दास की, उलटी मांहिं समाइ ॥ ११ ॥
काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट ।
बलिहारी ता दास की, जे रहै रांम की ओट ॥ १२ ॥
भगति हजारी कपड़ा, तामैं मल न समाइ ।
साषित काली काँवली, भावै तहां बिछाइ ॥ १३ ॥ ४९३ ॥

---

(२९) साध साषीभूत कौ अंग

निरवैरी निह-कांमता, सांई सेती नेह ।
बिषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह ॥ १ ॥

---

(११) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

पंच बल धिया फिरि कड़ी, ऊझड़ ऊजड़ि जाइ ।
बलिहारी ता दास की, बवकि अणांवै ठांइ ॥ १२ ॥
काजल केरी कोठड़ी, तैसा यहु संसार ।
बलिहारी ता दास की, पैसि जु निकसणहार ॥ १३ ॥

संत न छाड़ै संतई, जे कोटिक मिलैं असंत ।
चँदन भुवंगा बेठिया, तउ सीतलता न तजंत ॥ २ ॥
कबीर हरि का भांवता, दूरैं थैं दीसंत ।
तन षोणां मन उनमनां, जग रूठड़ा फिरंत ॥ ३ ॥
कबीर हरि का भांवता, झीणां पंजर तास ।
रैंणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मास ॥ ४ ॥
अणरता सुख सोवणां, रातै नींद न आइ ।
ज्यूं जल टुटै मंछली, यूं बेलंत बिहाइ ॥ ५ ॥
जिन्य कुछ जांण्यां नहीं, तिन्ह सुख नींदड़ी बिहाइ ।
मैंर अबूझी बूझिया, पूरी पड़ी बलाइ ॥ ६ ॥
जांण भगत का नित मरण, अण-जांणें का राज ।
सर अपसर समझै नहीं, पेट भरण सूं काज ॥ ७ ॥
जिहि घटि जांण बिनांण है, तिहिं घटि आवटणां घणां ।
बिन षंडै संग्रांम है, नित उठि मन सौं झूझणां ॥ ८ ॥
रांम वियोगी तन बिकल, ताहि न चीन्हैं कोइ ।
तंबोली के पांन ज्यूं, दिन दिन पीला होइ ॥ ९ ॥
पीलक दौड़ी सांइयां, लोग कहै पिंड रोग ।
छांनै लंघण नित करै, रांम पियारे जोग ॥ १० ॥
काम मिलावै रांम कूं, जे कोई जांणै राषि ।
कबीर बिचारा क्या करै, जाकी सुखदेव बोलैं साषि ॥ ११ ॥
कांमणि अंग बिरकत भया, रत भया हरि नांइ ।
साषी गोरखनाथ ज्यूं, अमर भये कलि मांहिं ॥ १२ ॥

---

(४) ख०—अंगनि बाढ़ै घास ।
(५) ख०—तलफत रैंण बिहाइ ।
(१२) ख०—सिध भए कलि मांहिं ।

जदि बिषै पियारी प्रीति सूं, तब अंतरि हरि नांहिं।
जब अंतर हरि जी बसै, तब बिषिया सूं चित नांहिं ॥ १३ ॥
जिहिं घट मैं संसौ बसै, तिहिं घटि रांम न जोइ।
रांम सनेही दास बिचि, तिणां न संचर होइ ॥ १४ ॥
स्वारथ को सबको सगा, जग सगलाही जांणि।
बिन स्वारथ आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछांणि ॥ १५ ॥
जिहि हिरदै हरि आइया, सो क्यूं छांनां होइ।
जतन जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ ॥ १६ ॥
फाटै दीदै मैं फिरौं, नजरि न आवै कोइ।
जिहि घटि मेरा सांइयां, सो क्यूं छांनां होइ ॥ १७ ॥
सब घटि मेरा सांइयां, सूनीं सेज न कोइ।
भाग तिन्हौं का हे सखी, जिहि घटि परगट होइ ॥ १८ ॥
पावक रूपी रांम है, घटि घटि रह्या समाइ।
चित चकमक लागै नहीं, ताथैं धूंवां ह्वै ह्वै जाइ ॥ १९ ॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोइ।
कै जागै बिषई बिष भरया, कै दास बंदगी होइ ॥ २० ॥
कबीर चाल्या जाइ था, आगैं मिल्या खुदाइ।
मीरां मुझ सौं यौं कह्या, किनि फुरमाई गाइ ॥ २१ ॥ ५१४ ॥

---

(३०) साध महिमां कौ अंग

चंदन की कुटकी भली, नां बंबूर की अबरांउं।
बैश्नौं की छपरी भली, नां साषत का बड गांउ ॥ १ ॥
पुरपाटण सूबस बसै, आंनंद ठांयें ठांइ।
रांम सनेही बाहिरा, ऊजँड़ मेरे भाइ ॥ २ ॥

---

(१) ख०—चंदन की चूरी भली।

जिहिं घरि साध न पूजिये, हरि की सेवा नांहिं ।
ते घर मड़हट सारषे, भूत बसै तिन मांहिं ॥ ३ ॥
है गै गैंवर सघन घन, छत्र धजा फरराइ ।
ता सुख थैं भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ ॥ ४ ॥
है गै गैंवर सघन घन, छत्रपती की नारि ।
तास पटंतर नां तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥ ५ ॥
क्यूं नृप नारी नींदये, क्यूं पनिहारी कौं मांन ।
वा मांग संवारै पीव कौं, वा नित उठि सुमिरै रांम ॥ ६ ॥
कबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया बैसनौं पूत ।
रांम सुमरि निरभै हुवा, सब जग गया अऊत ॥ ७ ॥
कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास ।
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥ ८ ॥
साषत बांभण मति मिलै, बैसनौं मिलै चँडाल ।
अंक माल दे भेटिये, मांनौं मिले गोपाल ॥ ९ ॥
रांम जपत दालिद भला, टूटी घर की छांनि ।
ऊँचे मंदिर जालि दे, जहां भगति न सारंगपांनि ॥ १० ॥
कबीर भया है केतकी, भवर भये सब दास ।
जहां जहां भगति कबीर की, तहां तहां रांम निवास ॥११॥ ५२५॥

---

(३१) मधि कौ अंग

कबीर मधि अंग जेको रहै, तौ तिरत न लागै वार ।
दुहु दुहु अंग सूं लागि करि, डूबत है संसार ॥ १ ॥
कबीर दुबिधा दूरि करि, एक अंग ह्वै लागि ।
यहु सीतल वहु तपति है, दोऊ कहिये आगि ॥ २ ॥

---

(६) 'वा मांग' या 'वामांग' दोनों पाठ हो सकता है ।

अनल अकासां घर किया, मधि निरंतर बास ।
बसुधा ब्यौम बिरकत रहै, विनठा हर बिसवास ॥ ३ ॥
बासुरि गमि न रैंणि गमि, नां सुपनैं तरगंम ।
कबीर तहां विलंबिया, जहां छांहड़ी न घंम ॥ ४ ॥
जिहि पैंडै पंडित गए, दुनियां परी बहीर ।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रह्या कबीर ॥ ५ ॥
अगनृकथैं हूँ रह्या, सतगुर के प्रसादि ।
चरन कवँल की मौज मैं, रहिस्यूं अंतिरु आदि ॥ ६ ॥
हिंदू मूये रांम कहि, मुसलमान खुदाइ ।
कहै कबीर सो जीवता, दुह मैं कदे न जाइ ॥ ७ ॥
दुखिया मूवा दुख कौं, सुखिया सुख कौं झूरि ।
सदा अनंदी रांम के, जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि ॥ ८ ॥
कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ ।
रांम सनेही यूं मिले, दून्यूं बरन गँवाइ ॥ ९ ॥
काबा फिर कासी भया, रांम भया रहीम ।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥ १० ॥
धरती अरू असमान बिचि, दोइ तूंबड़ा अबध ।
षट दरसन संसै पड़्या, अरू चौरासी सिध ॥ ११ ॥ ५३६ ॥

---

(३२) सारग्राही कौ अंग

षीर रूप हरि नांव है, नीर आन ब्यौहार ।
हंस रूप कोइ साध है, तत का जांनणा-हार ॥ १ ॥

---

(५) ख०—दुनियां गई बहीर । औघट घाटी नियरा ।
(१) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
सार-संग्रह सूप ज्यूं, त्यागै फटकि असार ।
कबीर हरि हरि नांव ले, पसरै नहीं बिकार ॥ २ ॥

कबीर साषत को नहीं, सबै बैशनौं जांणि ।
जा मुखि रांम न उचरै, ताही तन की हांणि ॥ २ ॥
कबीर औगुंण नां गहै, गुंण ही कौं ले बीनि ।
घट घट महु के मधुप ज्यूं, पर-आत्म ले चीन्हि ॥ ३ ॥
बसुधा बन बहु भांति है, फूल्यौ फल्यौ अगाध ।
मिष्ट सुबास कबीर गहि, बिषम कहै किहि साध ॥ ४ ॥ ५४० ॥

---

(३३) बिचार कौ अंग

रांम नांम सब को कहै, कहिबे बहुत बिचार ।
सोई रांम सती कहै, सोई कौतिग-हार ॥ १ ॥
आगि कह्यां दाझै नहीं, जे नही चंपै पाइ ।
जब लग भेद न जांणिये, रांम कह्या तौ कांइ ॥ २ ॥
कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नांहिं ।
आपा पर जब चीन्हियां, तब उलटि समाना मांहिं ॥ ३ ॥
कबीर पांणीं केरा पूतला, राख्या पवन सँवारि ।
नांनां बांणी बोलिया, जोति धरी करतारि ॥ ४ ॥
नौ मण सूत अलूझिया, कबीर घर घर बारि ।
तिनि सुलझाया बापुड़े, जिनि जांणीं भगति मुरारि ॥ ५ ॥
आधी साषी सिरि कटै, जोर बिचारी जाइ ।
मनि परतीति न ऊपजै, तौ राति दिवस मिलि गाइ ॥ ६ ॥

(३२-४) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

कबीर सब घटि आत्मां, सिरजी सिरजनहार ।
रांम कहै सो रांम में, रमिता ब्रह्म बिचारि ॥ ५ ॥
तत तिलक तिहुँ लोक मैं, रांम नाम निजि सार ।
जन कबीर मसतिकि देया, सोभा अधिक अपार ॥ ६ ॥

(६ ख०—भरि गाइ ।

सोई अषिर सोई बैयन, जन जू जू वाचवंत।
कोई एक मेलै लवणि, अमीं रसांइण हुंत ॥ ७ ॥
हरि मोत्यां की माल है, पोई काचै तागि।
जतन करी झंटा घणां, टूटैगी कहूँ लागि ॥ ८ ॥
मन नहीं छाड़ै विषै, विषै न छाड़ै मन कौं।
इनकौं इहै सुभाव, पूरि लागी जुग जन कौं ॥
खंडित मूल बिनास, कहौ किम विगतह कीजै।
ज्यूं जल मैं प्रतिब्यंब, त्यूं सकल रांमहिं जांणीजै॥
सो मन सो तन सो विषै, सो त्रिभवन-पति कहूँ कस।
कहै कबीर ब्यंदहु नरा, ज्यूं जल पूर्‌या सकल रस ॥ ९ ॥ ५४९॥

---

(३४) उपदेस कौ अंग

हरि जी यहै बिचारिया, साषो कहौ कबीर।
भौसागर मैं जीव हैं, जे कोइ पकड़ै तीर ॥ १ ॥
कली काल ततकाल है, बुरा करौ जिनि कोइ।
अनवावैं लोहा दांहिणैं, बोवै सु लुणतां होइ ॥ २ ॥
कबीर संसा जीव मैं, कोइ न कहै समझाइ।
बिधि बिधि बांणीं बोलता, सो कत गया बिलाइ ॥ ३ ॥

---

(७) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
कबीर भूला दंग में, लोग कहैं यहु भूल।
कै रमइयौ वाट बताइसी, कै भूलत भूलै भूल ॥ ८ ॥
(२) ख०—बुरा न करियो कोइ।
इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
जीवन को समझै नहीं, मुवा न कहै सँदेस।
जाको तन मन सौं परचा नहीं, ताकौ कौण धरम उपदेश ॥ ३ ॥
(३) ख०—नाना बांणी बोलता।

कबीर संसा दूरि करि, जांमण मरण भरंम।
पंचतत तत्तहि मिले, सुरति समाना मंन ॥ ४ ॥
ग्रिही तौ च्यंता घणीं, बैरागी तौ भीष।
दुहु कात्यां बिचि जीव है, दौ हनैं संतौ सीष ॥ ५ ॥
बैरागी बिरकत भला, गिरहीं चित्त उदार।
दुहूं चूकां रीता पड़ै, ताकूं वार न पार ॥ ६ ॥
जैसी उपजै पेड सूं, तैसी निवहै ओरि।
पैका पैका जोड़तां, जुड़िसी लाष करोड़ि ॥ ७ ॥
कबीर हरि के नांव सूं, प्रीति रहै इकतार।
तौ मुख तैं मोती झड़ैं, हीरे अंत न पार ॥ ८ ॥
ऐसी बांणीं बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ ॥ ९ ॥
कोइ एक राखै सावधान, चेतनि पहरै जागि।
बस्तन बासन्न सूं खिसै, चोर न सकई लागि ॥ १० ॥ ५५९ ॥

---

(३५) बेसास कौ अंग

जिनि नर हरि जठरांह, उदिकंथैं पंड प्रगट कियौ।
सिरजे श्रवण कर चरन, जींव जीभ मुख तास दीयौ ॥
उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम रषियौ।
अंन पान जहां जरै, तहां तैं अनल न चषियो ॥
इहिं भांति भयानक उद्र में, उद्र न कबहूं छंछरै।
कृसन कृपाल कबीर कहि, इम प्रतिपालन क्यों करै ॥ १ ॥
भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
भांडा घड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग ॥ २ ॥

---

(८) ख०—सुरति रहै इकतार। हीरा अनंत अपार।

रचनहार कूं चीन्हि लै, खैबे कूं कहा रोइ।
दिल मंदिर मैं पैसि करि, तांणि पछेवड़ा सोइ ॥ ३ ॥
रांम नांमं करि बोंहडा, बांही बीज अघाइ।
अंति कालि सूका पड़ै, तौ निरफल कदे न जाइ ॥ ४ ॥
च्यंतामणि मन मैं बसै, सोई चित मैं आंणि।
बिन च्यंता च्यंता करै, इहै प्रभू की बांणि ॥ ५ ॥
कबीर का तूं चिंतवै, का तेरा च्यंत्या होइ।
अण-च्यंत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होइ ॥ ६ ॥
करम करीमां लिखि रह्या, अब कछू लिख्या न जाइ।
मासा घटै न तिल बधै, जौ कोटिक करै उपाइ ॥ ७ ॥
जाकौ जेता निरमया, ताकौं तेता होइ।
रंती घटै न तिल बधै, जौ सिर कूटै कोइ ॥ ८ ॥
च्यंता न करि अच्यंत रहु, सांई है संम्रथ।
पसु पंषेरू जीव जंत, तिनकी गांडि किसा ग्रंथ ॥ ९ ॥
संत न बांधै गांठड़ी, पेट समाता लेइ।
सांईं सूं सनमुष रहै, जहां मांगै तहां देइ ॥ १० ॥
रांम नांम सूं दिल मिली, जन हम पड़ी बिराइ।
मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरकि न जाइ ॥ ११ ॥
कबीर तूं काहे डरै, सिर परि हरि का हाथ।
हस्ती चढि नहीं डोलिये, कूकर भुसैं जु लाष ॥ १२ ॥

---

(८) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

करीम कबीर जु विह लिख्या, नरसिर भाग अभाग।
जेहूं च्यंता चिंतवै, तऊ स आगैं आग ॥ १० ॥

(१२) ख०—सिर परि सिरजणहार। हस्ती चढ़ि क्या डोलिए। भुसैं हजार

(१२) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

मीठा खांण मधूकरी, भांति भांति कौ नाज ।
दावा किसही का नहीं, बिन विलाइति बड़ राज ॥ १३ ॥
मांनि महातम प्रेम रस, गरवा तण गुण नेह ।
ऐ सबहीं अह लागया, जबहीं कह्या कुछ देह ॥ १४ ॥
मांगण मरण समान है, बिरला बंचै कोइ ।
कहै कबीर रघुनाथ सूं, मतिर मंगावै मोहि ॥ १५ ॥
पांडल पंजर मन भवर, अरथ अनूपम बास ।
रांम नांम सींच्या अंमी, फल लागा बेसास ॥ १६ ॥
मेर मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म बिसास ।
अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस ॥ १७ ॥
जाकी दिल मैं हरि बसै, सो नर कलपै कांइ ।
एकै लहरि समंद की, दुख दलिद्र सब जाइ ॥ १८ ॥
पद गांये लैलीन ह्वै, कटी न संसै पास ।
सबै पिछोड़े थोथरे, एक बिनां बेसास ॥ १९ ॥
गांवण हीं मैं रोज है, रोवण हीं मैं राग ।
इक बैरागी ग्रिह मैं, इक गृहीं मैं बैराग ॥ २० ॥
गाया तिनि पाया नहीं, अण-गांयां थैं दूरि ।
जिनि गाया बिसवास सूं, तिन रांम रह्या भरपूरि ॥२१॥५८०॥

हसतीं चढ़िया ज्ञान कै, सहज दुलीचा डारि ।
स्वान-रूप संसार है, पड़्या भुसौ झपि मारि ॥ १६ ॥

(१५) ख०—जगनांथ सैं ।

(१६) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

कबीर मरौं पै मांगौ नहीं, अपणे तन कै काज ।
परमारथ कै कारणै, मोंहि मांगत न आवै लाज ॥ २० ॥
भगत भरोसै एक कै, निधरक नीची दीठि ।
तिनकूं करम न लागसी, राम ठकोरी पीठि ॥ २१ ॥

(३६) पीव पिछांणन कौ अंग

संपटि मांहिं समाइया, सो साहिब नहीं होइ।
सकल मांड मैं रमि रह्या, साहिब कहिए सोइ ॥ १ ॥
रहै निराला मांड थैं, सकल मांड ता मांहिं।
कबीर सेवै तास कूं, दूजा कोई नांहिं ॥ २ ॥
भोलै भूली खसम कै, बहुत किया बिभचार।
सतगुर गुरू बताइया, पूरिबला भरतार ॥ ३ ॥
जाकै मुह माथा नहीं, नहीं रूपक रूप।
पुहुप बास थैं पतला, ऐसा तत अनूप ॥ ४ ॥ ५८४ ॥

---

(३७) विर्कताई कौ अंग

मेरै मन मैं पड़ि गई, ऐसी एक दरार।
फाटा फटक पषांण ज्यूं, मिल्या न दूजी बार ॥ १ ॥
मन फाटा बाइक बुरै, मिटी सगाई साक।
जौ परि दूध तिवास का, ऊकटि हूवा आक ॥ २ ॥
चंदन भागां गुण करै, जैसै चोली पंन।
दोइ जन भागा नां मिलैं, मुकताहल अरु मंन ॥ ३ ॥
पासि बिनंठा कपड़ा, कदे सुरांग न होइ।
कबीर त्याग्या ग्यांन करि, कनक कामनी दोइ ॥ ४ ॥

(३६-४) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

चत्र भुजा कै ध्यांन मैं, ब्रिजबासी सब संत।
कबीर मगन ता रूप मैं, जाकै भुजा अनंत ॥ ५ ॥

(३७-३) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

मोती भागां बीधतां, मन मैं बस्या कबोल।
बहुत सयानां पचि गया, पड़ि गइ गांठि गढोल ॥ ४ ॥
मोती पोवत बीगस्या, सानैं पाथर आइ राइ।
साजन मेरा नीकल्या, जांमि बटाऊ जाइ ॥ ५ ॥

चित चेतनि मैं गरक ह्वै, चेत्य न देखै मंत ।
कत कत की सालि पाड़िये, गल बल सहर अनंत ॥ ५ ॥
जाता है सो जांण दे, तेरी दसा न जाइ ।
खेवटिया की नाव ज्यूं, घणें मिलैंगे आइ ॥ ६ ॥
नीर पिलावत क्या फिरै, सायर घर घर बारि ।
जो त्रिषावंत होइगा, सो पीवेगा झष मारि ॥ ७ ॥
सत गंठी कोपीन है, साध न मानै संक ।
रांम अमलि माता रहै, गिणैं इंद्र कौं रंक ॥ ८ ॥
दावै दाझण होत है, निरदावै निसंक ।
जे नर निरदावै रहैं, ते गिणैं इंद्र कौं रंक ॥ ९ ॥
कबीर सब जग हंढिया, मंदिल कंधि चढ़ाइ ।
हरि बिन अपनां को नहीं, देखे ठोकि बजाइ ॥ १० ॥ ५९४ ॥

---

(३८) समृथाई कौ अंग

नां कुछ किया न करि सक्या, नां करणें जोग सरीर ।
जे कुछ किया सु हरि किया, ताथैं भया कबीर कबीर ॥ १ ॥
कबीर किया कछू न होत है, अनकीया सब होइ ।
जे किया कुछ होत है, तौ करता औरै कोइ ॥ २ ॥
जिसहि न कोई तिसहि तूं, जिस तूं तिस सब कोइ ।
दरिगह तेरी सांईयां, नांम हरू मन होइ ॥ ३ ॥

---

(९) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
बाजण देह बजंतणी, कुल जंतड़ी न बेड़ि ।
तुझै पराई क्या पड़ी, तूं आपनी निबेड़ि ॥ ८ ॥
(१) ख० प्रति में इस अंग का पहला दोहा यह है—
साईं सों सब होइगा, बंदे थैं कुछ नाहिं ।
राई थैं परबत करै, परबत राई माहिं ॥ १ ॥

एक खड़े ही लहैं, और खड़ा बिललाइ ।
सांईं मेरा सुलषनां, सूतां देइ जगाइ ॥ ४ ॥
सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुंण लिख्या न जाइ ॥ ५ ॥
अबरन कौं का बरनिये, मोपैं लख्या न जाइ ।
अपना बाना बाहिया, कहि कहि थाके माइ ॥ ६ ॥
झल बांवैं झल दांहिनैं, झल हि मांहि ब्यौहार ।
आगैं पीछैं झलमई, राखै सिरजनहार ॥ ७ ॥
सांईं मेरा बांणियां, सहजि करै ब्यौपार ।
बिन डांडी बिन पालड़ै, तोलै सब संसार ॥ ८ ॥
कबीर वारया नांव परि, कीया राई लूंण ।
जिसहि चलावै पंथ तूं, तिसहि भुलावै कौंण ॥ ९ ॥
कबीर करणीं क्या करै, जे रांम न करै सहाइ ।
जिहिं जिहिं डाली पग धरै, सोई नवि नवि जाइ ॥ १० ॥
जदि का माइ जनमियां, कहूँ न पाया सुख ।
डाली डाली मैं फिरौं, पातौं पातौं दुख ॥ ११ ॥
सांईं सूं सब होत है, बंदे थैं कुछ नांहिं ।
राई थैं परबत करै, परबत राई मांहिं ॥ १२ ॥ ६०६ ॥

---

(३८) कुसबद कौ अंग

अणी सुहेली सेल की, पड़तां लेइ उसास ।
चोट सहारै सबद की, तास गुरू मैं दास ॥ १ ॥

---

(८) ख०—ब्यौहार ।

(१२) बारहवें दोहे के स्थान पर ख० प्रति में यह दोहा है—
रैयां दूरां बिछोहियां, रहु रे संयम झूरि ।
देवल देवल बाहिड़ी, देसी अगें सूर ॥ १३ ॥

खुंदन तौ धरती सहै, बाढ सहै बनराइ।
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ॥ २॥
सीतलता तब जांणियें, समिता रहै समाइ।
पष छाड़ै निरपष रहै, सबद न दूष्या जाइ॥ ३॥
कबीर सीतलता भई, पाया ब्रह्म गियान।
जिहि बैसंदर जग जल्या, सो मेरे उदिक समान॥ ४॥ ६१०॥

---

(४०) सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, तार्थें छूटि भरंति॥ १॥
सती संतोषी सावधान, सबद भेद सुबिचार।
सतगुर के प्रसाद थैं, सहज सील मत सार॥ २॥
सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करै सोइ॥ ३॥
सतगुर साचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही भैं मिलि गया, पड़्या कलेजै छेक॥ ४॥
हरि-रस जे जन बेधिया, सतगुण सीं गणि नाँहिं।
लागी चोट सरीर मैं, करक कलेजे माँहिं॥ ५॥
ज्यूं ज्यूं हरि गुण साँभलूं, त्यूं त्यूं लागै तीर।
साँठी साँठी झड़ि पड़ी, भलका रह्या सरीर॥ ६॥

(३९-२) ख०—कांट सहै। साधू सहै।
(३९-४) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

सहज तराजू आंणि करि, सब रस देख्या तोलि।
सब रस माँहैं जीभ रस, जे कोइ जांणै बोलि॥ ५॥

(४) यह दोहा ख० प्रति में नहीं है।

ज्यूं ज्यूं हरि गुण साँभलौं, त्यूं त्यूं लागै तीर।
लागैं थैं भागा नहीं, साहणहार कबीर ॥ ७ ॥
सारा बहुत पुकारिया, पीड़ पुकारै और।
लागी चोट सबद की, रह्या कबीरा ठौर ॥ ८ ॥ ६१८ ॥

---

(४१) जीवन मृतक कौ अंग

जीवत मृतक ह्वै रहै, तजै जगत की आस।
तब हरि सेवा आपण करै, मति दुख पावै दास ॥ १ ॥
कबीर मन मृतक भया, दुरबल भया सरीर।
तब पैंडे लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ॥ २ ॥
कबीर मरि मड़हट रह्या, तब कोइ न बूझै सार।
हरि आदर आगैं लिया, ज्यूं गउ बछ की लार ॥ ३ ॥
घर जालौं घर उबरै, घर राखौं घर जाइ।
एक अचंभा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ ॥ ४ ॥
मरतां मरतां जग मुवा, औसर मुवा न कोइ।
कबीर ऐसैं मरि मुवा, ज्यूं बहुरि न मरनां होइ ॥ ५ ॥
बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार।
एक कबीरा ना मुवा, जिनि के राम अधार ॥ ६ ॥
मन मारया ममिता मुई, अहं गई सब छूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥ ७ ॥
जीवन थैं मरिबौ भलौ, जौ मरि जानैं कोइ।
मरनैं पहली जे मरें, तौ कलि अजरावर होइ ॥ ८ ॥
खरी कसौटी रांम की, खोटा टिकै न कोइ।
रांम कसौटी सो टिकै, जौ जीवत मृतक होइ ॥ ९ ॥

---

(१) ख० प्रति में इस अंग में पहला दोहा यह है—

जिन पांऊं सैं कतरी, हांठत देस बदेस।
तिन पांऊं तिथि पाकड़ी, आगण भया बदेस ॥ १ ॥

आपा मेट्यां हरि मिलै, हरि मेट्यां सब जाइ ।
अकथ कहांणीं प्रेम की, कह्यां न को पत्याइ ॥ १० ॥

निगुसांवां बहि जाइगा, जाकै थाघो नहीं कोइ ।
दीन गरीबी बंदिगी, करतां होइ सु होइ ॥ ११ ॥

दीन गरीबी दीन कौं, दुंदर कौं अभिमान ।
दुंदर दिल बिष सूं भरी, दीन गरीबी राम ॥ १२ ॥

कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास ।
कबीर ऐसैं ह्वै रह्या, ज्यूं पाऊं तलि घास ॥ १३ ॥

रोड़ा ह्वै रहै बाट का, तजि पाषँड अभिमान ।
ऐसा जे जन ह्वै रहै, ताहि मिलै भगवान ॥ १४ ॥ ६३२ ॥

---

(१२) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

कबीर नवै स आपकौं, पर कौं नवै न कोइ ।
घालि तराजू तोलिये, नवैं स भारी होइ ॥ १४ ॥
बुरा बुरा सब को कहै, बुरा न दीसै कोइ
जे दिल खोजौं आपणीं, तौ मुझ सा बुरा न कोइ ॥ १५ ॥

(१४) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देइ ।
हरिजन ऐसा चाहिए, जिसी जिंमीं की खेह ॥ १८ ॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागै अंग ।
हरिजन ऐसा चाहिए, पांणीं जैसा रंग १९ ॥
पांणीं भया तो क्या भया, ताता सीता होइ ।
हरिजन ऐसा चाहिए, जैसा हरि ही होइ ॥ २० ॥
हरि भया तो क्या भया, जासौं सब कुछ होइ ।
हरिजन ऐसा चाहिए, हरि भजि निरमल होइ ॥ २१ ॥

(४२) चित कपटी कौ अंग

कबीर तहाँ न जाइए, जहाँ कपट का हेत।
जालूं कली कनीर की, तन रातै मन सेत ॥ १ ॥
संसारी साषत भला, कंवारी कै भाइ।
दुराचारी बैश्नौं बुरा, हरिजन तहाँ न जाइ ॥ २ ॥
निरमल हरि का नांव सों, कै निरमल सुध भाइ।
कै लै दूणी कालिमां, भावै सौ मण साबण लाइ ॥ ३ ॥ ६३५॥

---

(४३) गुरसिष हेरा कौ अंग

ऐसा कोई नां मिलै, हम कौं दे उपदेस।
भौसागर मैं डूबतां, कर गहि काढ़ै केस ॥ १ ॥
ऐसा कोई नां मिलै, हम कौं लेइ पिछानि।
अपना करि किरपा करै, ले उतारै मैदानि ॥ २ ॥
ऐसा कोई नां मिलै, रांम भगति का गीत।
तन मन सौंपै मृग ज्यूं, सुनैं बधिक का गीत ॥ ३ ॥
ऐसा कोई नां मिलै, अपना घर देइ जराइ।
पंचूं लरिका पटिक करि, रहै रांम ल्यौ लाइ ॥ ४ ॥
ऐसा कोई नां मिलै, जासौं रहिये लागि।
सब जग जलतां देखिये, अपणीं अपणीं आगि ॥ ५ ॥
ऐसा कोई नां मिलै, जासूं कहूं निसंक।
जासूं हिरदै की कहूं, सो फिरि मांडै कंक ॥ ६ ॥

(४२-१) ख० प्रति में इस अंग का पहला दोहा यह है—

नवणि नयौ तौ का भयौ, चित्त न सूधौ ज्यौंह।
पारधियां दूणां नवै, म्रिघाटक ताह ॥ १ ॥

(५) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

ऐसा कोई नां मिलै, बूझै सैन सुजान।
ढोल बजंता ना सुणैं, सुरति बिहूंणा कांन ॥ ६ ॥

ऐसा कोई नां मिलै, सब विधि देइ बताइ।
सुनि मंडल मैं पुरिष एक, ताहि रहै ल्यौ लाइ ॥ ७ ॥
हम देखत जग जात है, जग देखत हम जांह।
ऐसा कोई नां मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांह ॥ ८ ॥
तीनि सनेही बहु मिलैं, चौथै मिलै न कोइ।
सबै पियारे रांम के, बैठे परबसि होइ ॥ ९ ॥
माया मिलै महोबंती, कूड़े आखै बैन।
कोई घाइल वेध्या नां मिलै, साईं हंदा सैंण ॥ १० ॥
सारा सूरा बहु मिलै, घाइल मिलै न कोइ।
घाइल ही घाइल मिलै, तब रांम भगति दिढ होइ ॥ ११ ॥
प्रेमीं ढूंढ़त मैं फिरौं, प्रेमीं मिलै न कोइ।
प्रेमीं कौं प्रेमीं मिलै, तब सब विष अमृत होइ ॥ १२ ॥
हम घर जाल्या आपणां, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौं तास का, जे चलै हमारे साथि ॥ १३ ॥ ६४८ ॥

---

(४४) हेत प्रीति सनेह कौ अंग

कमोदनीं जलहरि बसै, चंदा बसै अकासि।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पास ॥ १ ॥

---

(११) ख०—जब घाइल ही घाइल मिलै।
(१२) ख०—जब प्रेंमी ही प्रेंमी मिलै।
(१३) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

जाणौं ईंछूं क्या नहीं, बूझि न कीया गौन।
भूलै भूल्या मिल्या, पंथ बतावै कौन ॥ १५ ॥
कबीर जानींदा बूझिया, मारग दिया बताइ।
चलता चलता तहां गया, जहां निरंजन राइ ॥ १६ ॥

(१) ख०—जो जाही कै मन बसै।

कबीर गुर बसै बनारसी, सिष समंदां तीर।
बिसारया नहीं बीसरै, जे गुंण होइ सरीर ॥ २ ॥
जो है जाका भावता, जदि तदि मिलसी आइ।
जाकौं तन मन सौंपिया, सो कबहूं छाड़ि न जाइ ॥ ३ ॥
स्वामीं सेवक एक मत, मन ही मैं मिलि जाइ।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन कै भाइ ॥ ४ ॥ ६५२ ॥

---

(४५) सूरा तन कौ अंग

काइर हुवां न छूटिये, कछु सूरा तन साहि।
भरम भलका दूरि करि, सुमिरण सेल संबाहि ॥ १ ॥
षूंणैं पड़या न छूटियो, सुणि रे जीव अबूझ।
कबीर मरि मैदान मैं, करि इंद्रयां सूं झूझ ॥ २ ॥
कबीर सोई सूरिवां, मन सूं मांडै झूझ।
पंच पयादा पाड़ि ले, दूरि करै सब दूज ॥ ३ ॥
सूरा झूझै गिरद सूं, इक दिसि सूर न होइ।
कबीर यौं बिन सूरिवां, भला न कहिसी कोइ ॥ ४ ॥
कबीर आरणि पैसि करि, पीछैं रहै सु सूर।
सांईं सूं साचा भया, रहसी सदा हजूर ॥ ५ ॥
गगन दमांमां बाजिया, पड़्या निसांनैं घाव।
खेत बुहारया सूरिवैं, मुझ मरणे का चाव ॥ ६ ॥
कबीर मेरै संसा को नहीं, हरि रं लागा हेत।
कांम क्रोध सूं झूझणां, चौड़े मांड़या खेत ॥ ७ ॥
सूरै सार सँबाहिया, पहरया सहज सँजोग।
अब कै ग्यांन गयंद चढ़ि, खेत पड़न का जोग ॥ ८ ॥

(४५-३) ख—पंच पयादा पकड़ि ले।

सूरा तबही परषिये, लड़ै धणीं कै हेत।
पुरिजा पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत ॥ ९ ॥
खेत न छाड़ै सूरिवां, झूझै द्वै दल मांहिं।
आसा जीवन मरण की, मन मैं आंणैं नाहिं ॥ १० ॥
अब तौ झूझयां हीं बणैं, मुड़ि चाल्यां घर दूरि।
सिर साहिब कौं सौंपतां, सोच न कीजै सूर ॥ ११ ॥
अब तौ ऐसी ह्वै पड़ी, मनकारु चित कीन्ह।
मरनैं कहा डराइये, हाथि स्यंधौरा लीन्ह ॥ १२ ॥
जिस मरनैं थैं जग डरै, सो मेरे आनंद।
कब मरिहूं कब देखिहूं, पूरन परमांनंद ॥ १३ ॥
कायर बहुत पमांवहीं, बहकि न बोलै सूर।
कांम पड़यां हीं जांणिये, किसके मुख परि नूर ॥ १४ ॥
जाइ पूछौ उस घाइलैं, दिवस पीड़ निस जाग।
बांहण-हारा जाणिहै, कै जांणैं जिस लाग ॥ १५ ॥
घाइल घूंमैं गहि भरया, राख्या रहै न ओट।
जतन कियां जीवै नहीं, बणीं मरम की चोट ॥ १६ ॥
ऊंचा बिरष अकासि फल, पंषी मूए झूरि।
बहुत सयांनें पचि रहे, फल निरमल परि दूरि ॥ १७ ॥
दूरि भया तौ का भया, सिर दे नेड़ा होइ।
जब लग सिर सौंपै नहीं, कारिज सिधि न होइ ॥ १८ ॥
कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहिं।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसै घर मांहिं ॥ १९ ॥
कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पग तलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद ॥ २० ॥

---

(१४) ख०—जाके मुख षटि नूर।
(१७) ख०—पंथी मूए झूरि।

प्रेम न खेतौं नींपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥ २१ ॥
सीस काटि पासंग दिया, जीव सरभरि लीन्ह ।
जाहि भावे सो आइ ल्यौ, प्रेम आट हंम कीन्ह ॥ २२ ॥
सूरै सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस ।
आगैं थैं हरि मुल किया, आवत देख्या दास ॥ २३ ॥
भगति दुहेली रांम की, नहिं कायर का कांम ।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरि नांम ॥ २४ ॥
भगति दुहेली रांम की, जैसि खाँडे की धार ।
जे डोलै तौ कटि पड़ै, नहीं तौ उतरै पार ॥ २५ ॥
भगति दुहेली रांम की, जैसि अगनि की झाल ।
डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ॥ २६ ॥
कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार ।
ग्यांन षड़ग गहि काल सिरि, भली मचाई मार ॥ २७ ॥
कबीर हीरावणा जिया, महँगे मोल अपार ।
हाड़ गला माटी गली, सिर साटै ब्यौहार ॥ २८ ॥
जेते तारे रैणि के, तेतै बैरी मुझ ।
धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौं तुझ ॥ २९ ॥
जे हारया तौ हरि सवाँ, जे जीत्या तो डाव ।
पारब्रह्म कूं सेवतां, जे सिर जाइ त जाव ॥ ३० ॥
सिर साटै हरि सेविये, छाड़ि जीव की बांणि ।
जे सिर दीयां हरि मिलै, तब लग हांणि न जांणि ॥ ३१ ॥
टूटी बरत अकास थैं, कोइ न सकै झड़ झेल ।
साधं सती अरु सूर का, अंणीं ऊपिला खेल ॥ ३२ ॥

---

(३१) ख०— सिर साटै हरि पाइए ।
(३२) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

सती पुकारै सलि चढ़ी, सुनि रे मींत मसांन ।
लोग बटाऊ चलि गये, हंम तुझ रहे निदांन ॥ ३३ ॥
सती बिचारी सत किया, काठौं सेज बिछाइ ।
ले सूती पिव आपणां, चहुं दिसि अगनि लगाइ ॥ ३४ ॥
सती सूरा तन साहि करि, तन मन कीया घांण ।
दिया महौला पीव कूं, तब मड़हट करै बषांण ॥ ३५ ॥
सती जलन कूं नीकली, पीव का सुमरि सनेह ।
सबद सुनत जीव नीकल्या, भूलि गई सब देह ॥ ३६ ॥
सती जलन कूं नीकली, चित धरि एकबमेख ।
तन मन सौंप्या पीव कूं, तब अंतरि रही न रेख ॥ ३७ ॥
हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यूं न मराइ ।
मूंवा पीछैं सत करै, जीवत क्यूं न कराइ ॥ ३८ ॥
कबीर प्रगट रांम कहि, छानैं रांम न गाइ ।
फूस क जौड़ा दूरि करि, ज्यूं बहुरि न लागै लाइ ॥ ३९ ॥
कबीर हरि सबकूं भजै, हरि कूं भजै न कोइ ।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होइ ॥ ४० ॥
आप सवारथ मेदनीं, भगत सवारथ दास ।
कबीरा रांम सवारथी, जिनि छाड़ी तन की आस ॥४१॥६६३॥

---

(४६) काल कौ अंग

झूठे सुख कौं सुख कहै, मानत है मन मोद ।
खलक चबीणां काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद ॥ १ ॥

ढोल दमांमा बाजिया, सबद सुणां सब कोइ ।
जैसल देखि सती भजै, तौ दुहु कुल हासी होइ ॥ ३२ ॥

(३७) ख०—जलन की तीसरी ।

आजक कालिहक निस हमैं, मारगि माल्हंतां ॥
काल सिचांणां नर चिड़ा, औझड़ औच्यंतां ॥ २ ॥
काल सिहाँणैं यौं खड़ा, जागि पियारे म्यंत ।
रांम सनेही बाहिरा, तूं क्यूं सोवै नच्यंत ॥ ३ ॥
सब जग सूता नींद भरि, संत न आवै नींद ।
काल खड़ा सिर ऊपरैं, ज्यूं तोरणि आया बींद ॥ ४ ॥
आज कहै हरि कालिह भजौंगा, कालिह कहै फिरि कालिह ।
आज ही कालिह करंतड़ां, औसर जासी चालि ॥ ५ ॥
कबीर पल की सुधि नहीं, करै कालिह का साज ।
काल अच्यंता झड़पसी, ज्यूं तीतर कों बाज ॥ ६ ॥
कबीर टग टग चोघतां, पल पल गई बिहाइ ।
जीव जँजाल न छाड़ई, जम दिया दमांमां आइ ॥ ७ ॥
मैं अकेला ए दोइ जणां, छेती नांहीं कांइ ।
जे जम आगैं ऊबरौं, तो जुरा पहूंती आइ ॥ ८ ॥
बारी बारी आपणीं, चले पियारे म्यंत ।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै नित ॥ ९ ॥

---

(४) ख०—निसह भरि ।

(७) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

जुरा कूती जोबन ससा, काल अहेड़ी बार ।
पलक बिनामैं पाकड़ै, गरब्यो कहा गँवार ॥ ८ ॥

(९) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

मालन आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकार ।
फूले फूले चुणि लिए, कालिह हमारी बार ॥ ११ ॥
बाढ़ी आवत देखि करि, तरवर डोलन लाग ।
हंम कटे की कुछ नहीं, पंखेरू घर भाग ॥ १२ ॥
फांगुण आवत देखि करि, बन रूना मन मांहि ।
ऊँची डाली पात है, दिन दिन पीले थांहि ॥ १३ ॥

दौं की दाधी लकड़ी, ठाढ़ी करे पुकार ।
मति बसि पड़ौं लुहार कै, जालै दूजी बार ॥ १० ॥
जो ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सो कुमिलाइ ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ॥ ११ ॥
जो पहरया सो फाटिसी, नांव धरया सो जाइ ।
कबीर सोई तत्त गहि, जो गुरि दिया बताइ ॥ १२ ॥
निधड़क बैठा राम बिन, चेतनि करै पुकार ।
यहु तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥ १३ ॥
पांणीं केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति ।
एक दिनां छिप जांहिगे, तारे ज्यूं परभाति ॥ १४ ॥
कबीर यहु जग कुछ नहीं, षिन षारा षिन मींठ ।
काल्हि जु बैठा माड़ियां, आज मसांणां दीठ ॥ १५ ॥
कबीर मंदिर आपणै, नित उठि करती आलि ।
मड़हट देष्यां डरपती, चौड़ै दीन्ही जालि ॥ १६ ॥
मंदिर मांहि झबूकती, दीवा केसी जोति ।
हंस बटाऊ चलि गया, काढौ घर की छोति ॥ १७ ॥

पात पड़ंता यौं कहै, सुनि तरवर बणराइ ।
अब के बिछुड़े नां मिलै, कहिं दूर पड़ैंगे जाइ ॥ १४ ॥

(१०) इस के आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
मेरा वीर लुहारिया, तू जिनि जालै मोहि ।
इक दिन ऐसा होइगा, हूं जालैंगी तोहि ॥ १६ ॥

(१४) ख०—एक दिनां नटि जांहिगे, ज्यूं तारा परभाति
इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
कबीर पंच पखेरुवा, राखे पोष लगाइ ।
एक जु आया पारधी, ले गयो सबै उड़ाइ ॥ २१ ॥

(१५) ख०—काल्हि जु दीठा मैंड़िया ।
(१६) ख०—बैठो करतौं आलि ।

ऊँचा मंदर धौलहर, माँटी चित्री पौलि ।
एक रांम के नांव बिन, जंम पाड़ैगा रौलि ॥ १८ ॥

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस ।
नां जांणौ कहां मारिसी, कै घर कै परदेस ॥ १९ ॥

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गए सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करै, चले बजावणहार ॥ २० ॥

---

(१८) ख० प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं—

काएं चिणांवै मालिया, चुनैं माटी लाइ ।
मीच सुणैगी पापणीं, उधोरा लैली आइ ॥ २६ ॥

काएं चिणांवै मालिया, लांबी भीति उसारि ।
घर तौ साढ़ी तीनि हाथ, घणौं तौ पौंणा चारि ॥ २७ ॥

ऊँचा महल चिणांइयां, सोवन कलसु चढ़ाइ ।
ते मंदर खाली पड़्या, रहे मसाणौं जाइ ॥ २८ ॥

(१९) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

इहर अभागी मांछली, छापरि मांडी आलि ।
डाबरड़ा छूटै नहीं, सकै त समंद सभालि ॥ ३० ॥

मंछी हुआ न छूटिए, झीवर मेरा काल ।
जिहिं जिहिं डाबर हूं फिरौ, तिहिं तिहिं मांड़ै जाल ॥ ३१ ॥

पांणीं मांहि ला मांछली, सकै तौ पाकड़ि तीरि ।
कड़ी कदू की काल की, आइ पहुंता कीर ॥ ३२ ॥

मंछ बिकंता देखिया, झीवर के दरबारि ।
ऊंखड़ियां रत बालियां, तुम क्यूं बंधे जालि ॥ ३३ ॥

पाणीं मांहैं घर किया, चेजा किया पतालि ।
पासा पड़्या करम का, यूं हम बींधे जालि ॥ ३४ ॥

सूकण लागा केवड़ा, तूटीं अरहर-माल ।
पांणीं की कल जांणतां, गया ज सींचणहार ॥ ३५ ॥

(२०) ख०—कबीर जंत्र न बाजई ।

धवणि धवंती रहि गई, बुझि गए अंगार।
अहरणि रह्या ठमूकड़ा, जब उठि चले लुहार ॥ २१ ॥
पंथी ऊभा पंथ सिरि, बुगचा बाँध्या पूठि।
मरणां मुह आगैं खड़ा, जीवण का सब झूठ ॥ २२ ॥
यहु जिव आया दूर थैं, अजौं भी जासी दूरि।
बिच कै बासै रमि रह्या, काल रह्या सर पूरि ॥ २३ ॥
रांम कह्या तिनि कहि लिया, जुरा पहूंती आइ।
मंदिर लागै द्वार थैं, तब कुछ काढणां न जाइ ॥ २४ ॥
बरियां बीती बल गया, बरन पलट्या और।
बिगड़ी बात न बाहुड़ै, कर छिटक्यां कत ठौर ॥ २५ ॥
बरियां बीती बल गया, अरू बुरा कमाया।
हरि जिन छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥ २६ ॥
कबीर हरि सूं हेत करि, कूड़ै चित्त न लाव।
बांध्या बार षटीक कै, तापसु किती एक आव ॥ २७ ॥

---

(२१) ख०—ठमेकड़ा। उठि गए। इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

कबीर हरणी दूबली, इस हरियालै तालि।
लख अहेड़ी एक जीव, कित एक टालौं भालि ॥ ३८ ॥

(२२) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

जिसहि न रहणां इत जगि, सो क्यूं लौड़ै मीत।
जैसे पर घर पाहुणां, रहैं उठाए चीत ॥ ४० ॥

(२५) ख०—कर छूटां कत ठौर।

(२६) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

कबीर गाफिल क्या फिरै, सोवै कहा न चीत।
एवड़ माहि तै ले चल्या, भज्या पकड़ि परीस ॥ ४५ ॥
सांईं सू मिलि मछीला के, जा सुमिरै लाहूत।
कबहीं ऊझंकै कटिसी, हुंण ज्यौं वगमंकाहु ॥ ४६ ॥

(२७) ख०—कड़वे तन लाव।

विष के वन मैं घर किया, सरप रहे लपटाइ ।
ताथैं जियरै डर गह्या, जागत रैंणि बिहाइ ॥ २८ ॥
कबीर सब सुख राम है, और दुखां की रासि ।
सुर नर मुनियर असुर सब, पड़े काल की पासि ॥ २९ ॥
काची काया मन अथिर, थिर थिर कांम करंत ।
ज्यूं ज्यूं नर निधड़क फिरै, त्यूं त्यूं काल हसंत ॥ ३० ॥
रोवणहारे भी मुए, मुए जलांवणहार ।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार ॥ ३१ ॥
जिनि हम जाए ते मुए, हम भी चालणहार ।
जे हम को आगैं मिले, तिन भी बंध्या भार ॥ ३२ ॥ ७२५ ॥

---

(४७) सजीवनि कौ अंग

जहां जुरा मरण ब्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ ।
चलि कबीर तिहि देसड़ै, जहां बैद बिधाता होइ ॥ १ ॥
कबीर जोगी बनि बस्या, षणि खाये कँद मूल ।
नां जाणौं किस जड़ी थैं, अमर भये असथूल ॥ २ ॥
कबीर हरि चरणौं चल्या, माया मोह थैं टूटि ।
गगन मँडल आसण किया, काल गया सिर कूटि ॥ ३ ॥
यहु मन पटकि पछाड़ि लै, सब आपा मिटि जाइ ।
पंगुल ह्वै पिव पिव करै, पीछैं काल न खाइ ॥ ४ ॥
कबीर मन तीषा किया, बिरह लाइ षरसाँण ।
चित चर्णूं मैं चुभि रह्या, तहाँ नहीं काल का पांण ॥ ५ ॥

---

(३०) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

बेटा जाया तौ का भया, कहा बजावै थाल ।
आवण जांणां ह्वै रहा, ज्यौं कीड़ी का नाल ॥ ५१ ॥

(१) ख०—जुरा मीच
(५) ख०—मन तीषा भया ।

तरवर तास बिलंबिए, बारह मास फलंत ।
सीतल छाया गहर फल, पंषी केलि करंत ॥ ६ ॥

दाता तरवर दया फल, उपगारी जीवंत ।
पंषी चले दिसावरां, बिरषा सुफल फलंत ॥ ७ ॥ ७३२ ॥

---

(४८) अपारिष कौ अंग

पाइ पदारथ पेलि करि, कंकर लीया हाथि ।
जोड़ी बिछुटी हंस की, पड़्या बगां कै साथि ॥ १ ॥

एक अचंभा देखिया, हीरा हाटि बिकाइ ।
परिषणहारे बाहिरा, कौड़ो बदलै जाइ ॥ २ ॥

कबीर गुदड़ी बीषरी, सौदा गया बिकाइ ।
खोटा बांध्या गांठड़ी, इब कुछ लिया न जाइ ॥ ३ ॥

पैंडैं मोती बीखर्‌या, अंधा निकस्या आइ ।
जोति बिनां जगदीश की, जगत उलंघ्यां जाइ ॥ ४ ॥

---

(१) इसके पहिले ख० प्रति में ये दोहे हैं—

चंदन रूख बदेस गयौ, जण जण कहै पलास ।
ज्यौं ज्यौं चूल्है झोकिए, त्यूं त्यूं अधिकी बास ॥ १ ॥

हंसड़ौ तौ महारांण कौ, उड़ि पड़्यौ थलियांह ।
बगुलौ करि करि मारियौ, सम न जांणै त्यां ॥ २ ॥

हंस बगां कै पाहुणां, कहीं दसा कै फेरि ।
बगुला कांई गरबियां, बैठा पांख पषेरि ॥ ३ ॥

बगुला हंस मनाइ लै, नेड़ो थकां बहोड़ि ।
त्यांह बैठा तूं उजला, त्यौं हंस्यौं प्रीत न तोड़ि ॥ ४ ॥

ख०—चल्यां बगां कै साथि ।

कबीर यहु जग अंधला, जैसी अंधी गाइ ।
बछा था सो मरि गया, ऊभी चांम चटाइ ॥ ५ ॥ ७३७ ॥

(४८) पारिष कौ अंग

जब गुण कूं गाहक मिलै, तब गुण लाख बिकाइ ।
जब गुण कौं गाहक नहीं, तब कौड़ी बदलै जाइ ॥ १ ॥
कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ ।
बगुला मंझ न जांणई, हंस चुणे चुणि खाइ ॥ २ ॥
हरि हीराजन जौंहरी, ले ले मांडिय हाटि ।
जबर मिलैगा पारिषू, तब हीरां की साटि ॥ ३ ॥ ७४० ॥

---

(५०) उपजणि कौ अंग

नांव न जांणौं गांव का, मारगि लागा जांउं ।
काल्हि जु कांटा भाजिसी, पहिली क्यूं न खड़ांउं ॥ १ ॥
सीष भई संसार थैं, चले जु सांईं पास ।
अविनासी मोहि ले चल्या, पुरई मेरी आस ॥ २ ॥

(४९-२) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
कबीर मनमाना तोलिए, सबदां मोल न तोल ।
गौहर परषण जांणहीं, आपा खोवै बोल ॥ ७ ॥
(४९-३) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—
कबीर सजनहीं साजन मिले, नइ नइ करैं जुहार ।
बोल्यां पीछे जांणिये, जो जाकौ ब्यौहार ॥ ४ ॥
मेरी बोली पूरबी, ताइ न चीन्है कोइ ।
मेरी बोली सो लखै, जो पूरब का होइ ॥ ५ ॥

इंद्रलोक अचिरज भया, ब्रह्मा पड़्या बिचार।
कबीरा चाल्या रांम पैं, कौतिगहार अपार ॥ ३ ॥
ऊंचा चढ़ि असमांन कूं, मेर ऊलंघे ऊड़ि।
पसू पँषेरू जीव ंत, सब रहे मेर मैं बूड़ि ॥ ४ ॥
सद्द पांणीं पाताल का, काढ़ि कबीरा पीव।
बासी पावस पड़ि मुए, बिषै बिलंबे जीव ॥ ५ ॥
कबीर सुपिनैं हरि मिल्या, सूतां लिया जगाइ।
आंषि न मींचौं डरपता, मति सुपिनां ह्वै जाइ ॥ ६ ॥
गोब्यंद के गुंण बहुत हैं, लिखे जु हिरदै मांहिं।
डरता पांणीं नां पीऊं, मति वै धोये जांहिं ॥ ७ ॥
कबीर अब तौ ऐसा भया, निरमोलिक निज नाउं।
पहली काच कथीर था, फिरता ठांवैं ठांउं ॥ ८ ॥
भौ समंद बिष जल भरया, मन नहीं बांधै धीर।
सबल सनेहीं हरि मिले, तब उतरे पारि कबीर ॥ ९ ॥
भला सुहेला ऊतरया, पूरा मेरा भाग।
रांम नांव नौका गह्या, तब पांणीं पंक न लाग ॥ १० ॥
कबीर केसौ की दया, संसा घाल्या खोइ।
जे दिन गये भगति बिन, ते दिन सालैं मोहि ॥ ११ ॥
कबीर जाचण जाइथा, आगैं मिल्या अंच।
ले चाल्या घर आपणैं, भारी पाया संच ॥ १२ ॥ ७५२ ॥

---

(३) ख०—ब्रह्मा भया विचार।
(४) ख०—ऊँचा चाल।
(६) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
कबीर हरि का डर्पतां, ऊन्हां धान न खांउं।
हिरदा भीतरि हरि बसै, ताथैं खरा डराउं ॥ ७ ॥
(११) ख०—संसा मेल्हा

(५१) दया निरबैरता कौ अंग

कबीर दरिया प्रजल्या, दाझै जल थल झोल ।
बस नांहीं गोपाल सौं, बिनसै रतन अमोल ॥ १ ॥
ऊँनमि बिआई बादली, वर्सण लगे अँगार ।
उठि कबीरा धाह दे, दाझत है संसार ॥ २ ॥
दाध बली ता सब दुखी, सुखी न देखौं कोइ ।
जहां कबीरा पग धरै, तहां टुक धीरज होइ ॥ ३ ॥ ७५५ ॥

---

(५२) सुंदरि कौ अंग

कबीर सुंदरि यों कहै, सुणि हो कंत सुजांण ।
बेगि मिलौ तुम आइ करि, नहीं तर तजौं परांण ॥ १ ॥
कबीर जे को सुंदरी, जांणि करै बिभचार ।
ताहि न कबहूँ आदरै, प्रेम पुरिष भरतार ॥ २ ॥
जे सुंदरि साईं भजै, तजै आंन की आस ।
ताहि न कबहूं परहरै, पलक न छाड़ै पास ॥ ३ ॥

(५२-२) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

दाध बली ता सब दुखी, सुखी न दीसै कोइ ।
को पुत्रा को बंधवां, को धणहीना होइ ॥ ३ ॥

(५२-३) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

हूं रोऊं संसार कौं, मुझे न रोवै कोइ ।
मुझकौं सोई रोइसी, जे रामसनेही होइ ॥ ५ ॥
मूरों कौं का रोइए, जो अपणैं घर जाइ ।
रोइए बंदीवान को, जो हाटैं हाट बिकाइ ॥ ६ ॥
बाग बिछिटे म्रिग लौ, तिहिं जिनें मारै कोइ ।
आपैं हीं मरि जाइसी, डावां डोला होइ ॥ ७ ॥

इस मन कौं मैदा करौं, नान्हां करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीस ॥ ४ ॥
दरिया पारि हिंडोलनां, मेल्या कंत मचाइ।
सोई नारि सुलषणीं, नित प्रति झूलण जाइ ॥ ५ ॥७६०॥

---

(५३) कस्तूरियां मृग कौ अंग

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन मांहिं।
ऐसैं घटि घटि रांम है, दुनियां देखै नांहिं ॥ १ ॥
कोइ एक देखै संत जन, जांकै पांचूं हाथि।
जाकै पांचूं बस नहीं, ता हरि संग न साथि ॥ २ ॥
सो सांईं तन मैं बसै, भ्रंम्यौं न जांणैं तास।
कस्तूरी के मृग ज्यूं, फिरि फिरि सूंघै घास ॥ ३ ॥
कबीर खोजी रांम का, गया जु सिंघल दीप।
रांम तौ घट भीतरि रंमि रह्या, जौ आवै परतीत ॥ ४ ॥
घटि बधि कहीं न देखिये, ब्रह्म रह्या भरपूरि।
जिनि जांन्यां तिनि निकटि हैं, दूरि कहैं ते दूरि ॥ ५ ॥
मैं जांण्यां हरि दूरि है, हरि रह्या सकल भरपूरि।
आप पिछांणैं बाहिरा, नेड़ा ही थैं दूरि ॥ ६ ॥
तिणकैं ओल्है रांम है, परबत मेरैं भांइ।
सतगुर मिलि परचा भया, तब हरि पाया घट मांहिं ॥ ७ ॥

---

(६) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

कबीर बहुत दिवस भटकत रह्या, मन से विषै बिसाम।
ढूंढत-ढूंढत जग फिरया, तिण कै ओल्है रांम ॥ ७ ॥

रांम नांम तिहूँ लोक मैं, सकल रह्या भरपूरि ।
यहु चतुराई जाहु जलि, खोजत डोलैं दूरि ॥ ८ ॥
ज्यूं नैनूं मैं पूतली, त्यूं खालिक घट मांहिं ।
मूरिख लोग न जांणहीं, बाहरि ढूंढण जांहिं ॥ ९ ॥ ७६९ ॥

———

(५४) निंद्या कौ अंग

लोग विचारा नींदई, जिनह न पाया ग्यांन ।
रांम नांव राता रहै, तिनहुं न भावै आंन ॥ १ ॥
दोख पराये देखि करि, चल्या हसंत हसंत ।
अपनैं च्यंति न आवई, जिनकी आदि न अंत ॥ २ ॥
निंदक नेड़ा राखिये, आंगणि कुटी बंधाइ ।
बिन साबण पांणीं बिना, निरमल करै सुभाइ ॥ ३ ॥
न्यंदक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मांन ।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आंनहिं आंन ॥ ४ ॥
जे को नींदै साध कूं, संकटि आवै सोइ ।
नरक मांहिं जांमैं मरै, मुकति न कबहूँ होइ ॥ ५ ॥
कबीर घास न नींदिये, जो पाऊं तलि होइ ।
उड़ि पड़ै जब आंखि मैं, खरा दुहेला होइ ॥ ६ ॥

(५३-८) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
हरि दरियां सूभर भरिया, दरिया वार न पार ।
खालिक बिन खाली नहीं, जेवा सूई संचार ॥ १० ॥
(१) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
निंदक तौ नांकी बिना, सोहै न कट्यां मांहिं ।
साधू सिरजनहार के, तिनमैं सोहै नाहिं ॥ २ ॥
(६) ख०—दूसरी पंक्ति—
नरक मांहि जांमैं मरै, मुकति न कबहुं होइ ।

आपन यौं न सराहिए, और न कहिये रंक ।
नां जांणौं किस ब्रिष तलि, कूड़ा होइ करंक ॥ ७ ॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यां दुख होइ ॥ ८ ॥
अब कै जे सांईं मिलै, तौ सब दुख आषौं रोइ ।
चरनूं ऊपरि सीस धरि, कहूँ ज कहणां होइ ॥ ९ ॥ ७७८ ॥

---

(५५) निगुणां कौ अंग

हरिया जांणैं रूंषड़ा, उस पांणीं का नेह ।
सूका काठ न जांणई, कबहूँ बूठा मेह ॥ १ ॥
झिरिमिरि झिरिमिरि बरषिया, पांहण ऊपरि मेह ।
माटी गलि सैंजल भई, पांहण वोही तेह ॥ २ ॥
पार ब्रह्म बूठा मोतियां, घड़ बांधी सिषरांह ।
सगुरां सगुरां चुणि लिया, चूक पड़ी निगुरांह ॥ ३ ॥
कबीर हरि रस बरषिया, गिर डूंगर सिषरांह ।
नीर मिवांणां ठाहरै, नांऊँ छा परड़ांह ॥ ४ ॥
कबीर मूंडठ करमियां, नष सिष पाषर ज्यांह ।
बांहणहारा क्या करै, बांण न लागै त्यांह ॥ ५ ॥
कहत सुनत सब दिन गए, उरझि न सुरझ्या मन ।
कहि कबीर चेत्या नहीं, अजहूँ सुंपहला दिन ॥ ६ ॥

---

(७) आपण यौं न सराहिए, पर निंदिए न कोइ ।
अजहूं लांबा घोहड़ा, ना जाणौं क्या होइ ॥ ८ ॥
(९) यह दोहा ख० प्रति में नहीं है ।
(६) यह दोहा ख० प्रति में नहीं है ।

कहै कबीर कठोर कै, सबद न लागै सार।
सुध बुध कै हिरदै भिदै, उपजि बिबेक बिचार ॥ ७ ॥
मा सीतलता कै कारणैं, नाग बिलंबे आइ।
रोम रोम विष भरि रह्या, अंमृत कहां समाइ ॥ ८ ॥
सरपहि दूध पिलाइये, दूधैं विष ह्वै जाइ।
ऐसा कोई नां मिलै, स्यूं सरपैं विष खाइ ॥ ९ ॥
जालौं इहै बडपणां, सरलै पेड़ि खजूरि।
पंखी छांह न बीसवैं, फल लागे ते दूरि ॥ १० ॥
ऊंचा कुल कै कारणैं, बंस बध्या अधिकार।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार ॥ ११ ॥
कबीर चंदन कै निड़ै, नींव भि चंदन होइ।
बूडा बंस बडाइतां, यौं जिनि बूड़ै कोइ ॥ १२ ॥ ७९० ॥

---

(५६) बीनती कौ अंग

कबीर सांईं तौ मिलहिंगे, पूछहिगे कुसलात।
आदि अंति की कहूंगा, उर अंतर की बात ॥ १ ॥
कबीर भूलि बिगाड़ियां, तूं नां करि मैला चित।
साहिब गरवा लोड़िये, नफर बिगाड़ैं नित ॥ २ ॥

---

(७) इसके आगे ख० प्रति में ये दोहे हैं—

बेकांमी को सर जिनि बाहै, साठी खोवै मूल गंवावै।
दास कबीर ताहि को बाहै, गलि सनाह सनमुख सरसाहै ॥ ८ ॥
पसुवा सौं पांनौं पड़ो, रहि रहि याम खीजि।
ऊसर वाह्यौ न ऊगसी, भावै दूणां बीज ॥ ९ ॥

(१) यह दोहा ख० प्रति में नहीं है।

करता केरे बहुत गुंण, औगुंण कोई नांहिं ।
जे दिल खोजौं आपणौं, तौ सब औगुण मुझ मांहिं ॥ ३ ॥
औसर बीता अलपतन, पीव रह्या परदेस ।
कलंक उतारौ केसवा, भांनौं भरंम अंदेस ॥ ४ ॥
कबीर करत है बीनती, भौसागर कै तांईं ।
बंदे ऊपरि जोर होत है, जंम कूं बरजि गुसांईं ॥ ५ ॥
हज काबै ह्वै ह्वै गया, केती बार कबीर ।
मीरां मुझ मैं क्या खता, मुखां न बोलै पीर॥ ६ ॥
ज्यूं मन मेरा तुझ सौं, यौं जे तेरा होइ ।
ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ ॥ ७ ॥ ७९७ ॥

---

(५७) साषीभूत कौ अंग

कबीर पूछै रांम कूं, सकल भवनपति-राइ ।
सबहो करि अलगा रहौ, सो विधि हमहिं बताइ ॥ १ ॥
जिहि बरियां सांईं मिलै, तास न जांणैं और ।
सबकूं सुख दे सबद करि, अपणीं अपणीं ठौर ॥ २ ॥
कबोर मन का बाहुला, ऊंडा बहै असोस ।
देखत हीं दह मैं पड़ै, दई किसा कौं दोस ॥ ३ ॥ ८०८ ॥

(५६-३) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—

बरियां बीती बल गया, अरु बुरा कमाया ।
हरि जिनि छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥ ३ ॥

(५६-५) ख०—कबीर बिचारा करै बिनती ।

(५८) बेली कौ अंग

अब तौ ऐसी ह्वै पड़ी, नां तूं बड़ी न बेलि ।
जालण आंणीं लाकड़ी, ऊठी कूंपल मेल्हि ॥ १ ॥
आगैं आगैं दौं जलै, पीछैं हरिया होइ ।
बलिहारी ता बिरष की, जड़ काट्यां फल होइ ॥ २ ॥
जे काटौं तौ डहडही, सींचौं तौ कुमिलाइ ।
इस गुणवंती बेलि का, कुछ गुंण कह्या न जाइ ॥ ३ ॥
आंगणि बेलि अकासि फल, अण ब्यावर का दूध ।
ससा सींग की धूनहड़ी, रमैं बांझ का पूत ॥ ४ ॥
कबीर कड़ई बेलड़ी, कड़वा ही फल होइ ।
सांध नांव तब पाइये, जे बेलि बिछोहा होइ ॥ ५ ॥
सींध भई तब का भया, चहुँ दिसि फूटी बास ।
अजहूँ बीज अंकूर है, भीऊगण की आस ॥ ६ ॥ ८०६ ॥

---

(५९) अबिहड़ कौ अंग

कबीर साथी सो किया, जाकै सुख दुख नहीं कोइ ।
हिलि मिलि ह्वै करि खेलिस्यूं, कदे बिछोह न होइ ॥ १ ॥
कबीर सिरजनहार बिन, मेरा हितू न कोइ ।
गुण औगुण बिहड़ै नहीं, स्वारथ बंधी लोइ ॥ २ ॥
आदि मधि अरु अंत लौं, अविहड़ सदा अभंग ।
कबीर उस करता की, सेवग तजै न संग ॥ ३ ॥ ८०९ ॥

(५८-२) ख०—दौं बलै ।
(६) इसके आगे ख० प्रति में यह दोहा है—
सिंधि जु सहजैं फुकि गई, आगि लगी बन मांहि ।
बीज बास दून्यूं जले, ऊगण की कुछ नांहि ॥ ७ ॥

(२) पद

राग गौड़ी]

दुलहनीं गावहु मंगलचार,
हम घरि आये हो राजा रांम भरतार ॥ टेक ॥
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत बराती ।
रांमदेव मोरै पांहुनैं आये, मैं जोबन मैंमाती ॥
सरीर सरोवर वेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार ।
रांमदेव संगि भांवरि लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार ॥
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनियर सहस अठ्यासी ।
कहैं कबीर हंम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ॥१॥

बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घरि बैठें आये ॥ टेक ॥
मंगलचार मांहिं मन राखौं, राम रसांइण रसनां चाषौं ॥
मंदिर मांहिं भया उजियारा, ले सूती अपनां पीव पियारा ॥
मैं रनि रासी जे निधि पाई, हमहि कहा यहु तुमहि बड़ाई ।
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हां, सखी सुहाग रांम मोहि दीन्हां॥२॥

अब तोहि जांन न देहूं रांम पियारे,
ज्यूं भावै त्यूं होह हमारे ॥ टेक ॥
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बडे घरि बैठें आये ॥
चरननि लागि करौं बरियाई, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई ॥
इत मन मंदिर रहौ नित चोषै, कहै कबीर परहु मति धोषै ॥३॥

मन के मोहन बीठुला, यहु मन लागौ तोहि रे।
चरन कंवल मन मांनियां, और न भावै मोहि रे ॥ टेक ॥
षट दल कवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाइ रे।
दहुं कै बीचि समाधियां, तहां काल न पासै आइ रे ॥
अष्ट कंवल दल भींतरा, तहां श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइये, नहीं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे ॥
कदली कुसम दल भींतरा, तहां दस आंगुल का बीच रे।
तहां दुवादस खोजि ले, जनम होत नहीं मींच रे ॥
बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसा की वाट।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भंवर गुफा के घाट रे ॥
त्रिबेणी मनाह न्हवाइए, सुरति मिलै जौ हाथि रे।
तहां न फिरि मघ जोइये, सनकादिक मिलि हैं साथि रे ॥
गगन गरजि मघ जोइये, तहां दीसै तार अनंत रे।
बिजुरी चमकि घन वरषिहै, तहां भीजत हैं सब संत रे ॥
षोडस कंवल जब चेतिया, तब मिलि गए श्री बनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे ॥
गुर गमि तैं पाईये, झंषि मरे जिनि कोइ रे।
तहीं कबीरा रमि रह्या, सहज समाधी सोइ रे ॥ ४ ॥

गोकल नाइक बीठुला, मेरौ मन लागौ तोहि रे।
बहुतक दिन बिछुरें भये, तेरी औसेरि आवै मोहि रे ॥ टेक ॥
करम कोटि कौ ग्रेह रच्यौ रे, नेह गये की आस रे।
आपहिं आप बँधाइया, द्वै लोचन मरहिं पियास रे ॥
आपा पर संमि चीन्हिये, दीसै सरब समांन।
इहिं पद नरहरि भेटिये, तूं छाड़ि कपट अभिमांन रे ॥

नां कतहुं चलि जाइये, नां सिर लीजै भार ।
रसनां रसहि विचारिये, सारंग श्रोरंग धार रे ॥
साधैं सिधि ऐसी पाइये, किंबा होइ महोइ ।
जे दिठ ग्यांन न ऊपजै, तौ अहटि रहै जिनि कोइ रे ॥
एक जुगति एकै मिलै, किंबा जोंग कि भोग ।
इन दून्यूं फल पाइये, रांम नांम सिधि जोग रे ॥
प्रेम भगति ऐसी कीजिये, मुखि अंमृत बरिषै चंद ।
आपही आप विचारिये, तब केता होइ अनंद रे ॥
तुम्ह जिनि जानौं गीत है, यहु निज ब्रह्म बिचार ।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे ॥
चरन कवल चित लाइये, रांम नांम गुन गाइ ।
कहै कबीर संसा नहीं, भगति मुकति गति पाइ रे ॥ ५ ॥

अब मैं पाइबौ रे पाइबौ ब्रह्म गियान,
सहज समाधें सुख मैं रहिबौ, कोटि कलप बिश्राम ॥ टेक ॥
गुर कृपाल कृपा जब कीन्हीं, हिरदै कंवल बिगासा ।
भागा भ्रम दसौं दिस सूझया, परम जोति प्रकासा ॥
मृतक उठ्या धनक कर लीयै, काल अहेड़ी भागा ।
उदया सूर निस किया पयांनां, सोवत थैं जब जागा ॥

---

(१) इसके आगे ख० प्रति में यह पद है—
अब में रांम सकल सिधि पाई
आन कहूं तौ रांम दुहाई ॥ टेक ॥
इह बिधि बासि सबै रस दीठा, रांम नांम सा और न मीठा ।
और रस ह्वै कफ गाता, हरिरस अधिक अधिक सुखदाता ॥
दूजा बणज नहीं कछु बाषर, रांम नांम दोऊ तत आपर ।
कहै कबीर जे हरिरस भोगी, ताकौं मिल्या निरंजन जोगी ॥ ६ ॥

अविगत अकल अनूपम देख्या, कहतां कह्या न जाई।
सैंन करै मनहीं मन रहसै, गूंगै जांनि मिठाई ॥
पहुप बिनां एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।
नारी बिनां नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया ॥
देखत कांच भया तन कंचन, बिन बानी मन मांनां।
उड़्या बिहंगम खोज न पाया, ज्यूं जल जलहि समांनां ॥
पूज्या देव बहुरि नहीं पूजौं, न्हाये उदिक न नांउं।
भागा भ्रम ये कही कहतां, आये बहुरि न आंऊं ॥
आपै मैं तब आपा निरष्या, अपन पैं आपा सूझ्या।
आपै कहत सुनत पुनि अपनां, अपन पैं आपा बूझ्या ॥
अपनैं परचै लागी तारी, अपन पै आप समांनां।
कहै कबीर जे आप विचारै, मिटि गया आवन जांनां ॥ ६॥

नरहरि सहजैं हीं जिनि जांनां।
गत फल फूल तत तर पलव, अंकूर बीज नसांनां ॥ टेक॥
प्रगट प्रकास ग्यांन गुरगमि थैं, ब्रह्म अगनि प्रजारी।
ससि हर सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी ॥
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर-डंड सरपूरा।
गगन गरजि मन सुंनि समांनां, बाजे अनहद तूरा ॥
सुमति सरीर कबीर बिचारी, त्रिकुटी संगम स्वांमीं।
पद आनंद काल थैं छूटै, सुख मैं सुरति समांनीं ॥ ७ ॥

मन रे मन हीं उलटि समांनां।
गुर प्रसादि अकलि भई तोकौं, नहीं तर था बेगांनां ॥ टेक॥
नेड़ै थैं दूरि दूर थैं नियरा, जिनि जैसा करि जांनां।
औ लौ ठीका चढ्या बलींडै, जिनि पीया तिनि मांनां ॥

उलटे पवन चक्र षट बेधा, सुंनि सुरति लै लागी ।
अमर न मरै मरै नहीं जीवै, ताहि खोजि बैरागी ॥
अनभै कथा कवन सौं कहिये, है कोई चतुर बबेकी ।
कहै कबीर गुर दिया पलीता, सो झल विरलै देखी ॥ ८ ॥

इहि तत रांम जपहु रे प्रांनीं, बूझौ अकथ कहांणीं ।
हरि कर भाव होइ जा ऊपरि, जाग्रत रैंनि बिहांनीं ॥ टेक ॥
डांइन डारै सुन हां डोरै, स्यंध रहै बन घेरै ।
पंच कुटंव मिलि झूझन लागे, बाजत सबद संघेरैं ॥
रोहै मृग ससा बन घेरै, पारधी बांण न मेलै ।
सायर जलै सकल बन दाझै, मंछ अहेरा खेलै ॥
सोई पंडित सो तत ग्याता, जो इहि पदहि बिचारै ।
कहै कबीर सोइ गुर मेरा, आप तिरै मोंहि तारै ॥ ९ ॥

अवधू ग्यांन लहरि धुनि मांडी रे ।
सबद अतीत अनाहद राता, इहि बिधि त्रिष्णां षांडी ॥टेक॥
बन कै ससै समंद घर कीया, मछा बसै पहाड़ी ।
सुइ पीवै वांम्हण मतवाला, फल लागा बिन बाड़ी ॥
षाड बुणै कोली मैं बैठी, मैं खूंटा मैं गाड़ी ।
तांणै बांणै पड़ी अनंवासी, सूत कहै बुणि गाढी ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, अगम ग्यांन पद मांहीं ।
गुर प्रसाद सूई कै नांकै, हस्ती आवैं जांहीं ॥ १० ॥

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई ॥ टेक ॥
पहलैं पूत पीछैं भई माइ, चेला कै गुर लागै पाइ ॥
जल की मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई ।

बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई ॥
तलि करि साषा ऊपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल ॥
कहै कबीर या पद कौं बूझै, ताकूं तीन्यूं त्रिभुवन सूझै ॥ ११ ॥

हरि के षारे बड़े पकायें, जिनि जारे तिनि षाये ।
ग्यांन अचेत फिरैं नर लोई, ताथैं जनमि जनमि डहकाये ॥टेक॥
धौल मंदलिया बैलर बाबी, कऊवा ताल बजावै ।
पहरि चोल नांगा दह नाचै, भैंसा निरति करावै ॥
स्यंघ बैठा पांन कतरै, घूंस गिलौरा लावै ।
उंदरी बपुरी मंगल गावै, कछू एक आनंद सुनावै ॥
कहै कबीर सुनहुं रे संतौ गडरी परबत खावा ।
चकवा बैसि अंगारे निगलै, समंद अकासां धावा ॥ १२ ॥

चरषा जिनि जरै ।
कातौंगी हजरी का सूत, नणद के भईया की सौं ॥ टेक ॥
जलि जाई थलि ऊपजी, आई नगर मैं आप ।
एक अचंभा देखिया, बिटिया जायौ बाप ॥
बाबल मेरा ब्याह करि, बर उत्यम ले चाहि ।
जब लग बर पावै नहीं, तब लग तूं हीं ब्याहि ॥
सुबधी कै घरि लुबधी आयो, आन बहू कै भाइ ।
चूल्है अगनि बताइ करिं, फल सौ दीयौ ठठाइ ॥
सब जगही मरि जाइयौ, एक बढइया जिनि मरै ।
सब रांडनि कौ साथ चरषा को धरै ॥
कहै कबीर सो पंडित ग्याता, जो या पदहि बिचारै ।
पहलैं परचै गुर मिलै, तौ पीछैं सतगुर तारै ॥ १३ ॥

अब मोहि ले चलि नणद के वीर, अपनैं देसा।
इन पंचनि मिलि लूटी हूँ, कुसंग आहि वदेसा ॥ टेक ॥
गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानां।
सातौं बिरही मेरे नीपजै, पंचूं मोर किसांनां ॥
कहै कबीर यहु अकथ कथा है, कहतां कही न जाई।
सहज भाइ जिहिं ऊपजै, ते रमि रहे समाई ॥ १४ ॥

अब हम सकल कुसल करि मांनां,
स्वांति भई तब गोब्यंद जांनां ॥ टेक ॥
तन मैं होती कोटि उपाधि, उलटि भई सुख सहज समाधि ॥
जम थैं उलटि भया है रांम, दुख बिसरया सुख कीया विश्रांम ॥
वैरी उलटि भये हैं मींता, साषत उलटि सजन भये चीता ॥
आपा जांनि उलटि ले आप, तौ नहीं ब्यापै तीन्यूं ताप ॥
अब मन उलटि सनातन हूवा, तब हम जांनां जीवत मूवा ॥
कहै कबीर सुख सहज समाऊं, आप न डरौं न और डराऊं।१५।

संतौ भाई आई ग्यांन की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडांणीं, माया रहै न बांधी ॥ टेक ॥
हिति चत की द्वै थूंनीं गिरांनीं, मोह बलींडा तूटा।
त्रिस्नां छांनि परी घर ऊपरि, कुबधि का भांडा फूटा ॥
जोग जुगति करि संतौं बांधी, निरचू चुवै न पांणीं।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जांणीं ॥
आंधी पीछैं जो जल बूठा, प्रेम हरी जन भींनां।
कहै कबीर भांन के प्रगटें, उदित भया तम षींनां ॥ १६ ॥

अब घटि प्रगट भये रांम राई,
सोधि सरीर कनक की नांईं ।। टेक ।।
कनक कसौटी जैसैं कसि लेइ सुनारा,
सोधि सरीर भयो तन सारा ।।
उपजत उपजत बहुत उपाई,
मन थिर भयौ तबै थिति पाई ।।
बाहरि षोजत जनम गंवाया,
उनमनीं ध्यांन घट भीतरि पाया ।।
बिन परचै तन कांच कथीरा,
परचै कंचन भया कबीरा ।। १७ ।।

हिंडोलनां तहां झूलै आतम रांम ।
प्रेम भगति हिंडोलनां, सब संतनि कौ विश्रांम ।। टेक ।।
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि ।
झूलैं पंच पियारियां, तहां झूलै जीय मोर ।।
द्वादस गम के अंतरा, तहां अमृत कौ ग्रास ।
जिनि यहु अमृत चाषिया, सो ठाकुर हंम दास ।।
सहज सुंनि कौ नेहरौ, गगन मंडल सिरिमौर ।
दोऊ कुल हंम आगरी, जौ हंम झूलैं हिंडोल ।।
अरध उरध की गंगा जमुनां, मूल कवल कौ घाट ।
षट चक्र की गागरी, त्रिबेणीं संगम बाट ।।
नाद व्यंद की नावरी, रांम नांम कनिहार ।
कहै कबीर गुंण गाइ ले, गुर गंमि उतरौ पार ।। १८ ।।

को बीनैं प्रेम लागौ री, माई को बोनैं ।
राम रसांइण माते री, माई को बोनैं ॥ टेक ॥
पाई पाई तूं पुतिहाई,
पाई की तुरियां बेचि खाई री, माई को बीनैं ॥
ऐसैं पाई पर बिथुराई,
त्यूं रस आंनि बनायौ री, माई को बीनैं ॥
नाचै तांनां नाचै बांनां,
नाचै कूंच पुरांनां री, माई को बीनैं ॥
करगहि बैठि कबीरा नाचै,
चूहै काट्या तांनां री, माई को बीनैं ॥ १९ ॥

मैं बुनि करि सिरांनां हो रांम, नालि करम नहीं ऊबरे ॥टेक॥
दखिन कूंट जब सुनहां भूंका, तब हम सुगन बिचारा ।
लरके परके सब जागत हैं, हम घरि चोर पसारा हो रांम ॥
तांनां लींन्हां बांनां लींन्हां, लीन्हें गोड के पऊवा ।
इत उत चितवत कठवन लींन्हां, मांड चलवनां डऊवा हो रांम ॥
एक पग दोइ पग त्रेपग, संधें संधि मिलाई ।
करि परपंच मोट बँधि आयो, किलि किलि सबै मिटाई हो रांम ॥
तांनां तनि करि बांनां बुनि करि, छाक परी मोहि ध्यांन ।
कहै कबीर मैं बुंनि सिरांनां, जांनत है भगवांनां हो रांम ॥ २० ॥

तननां बुननां तज्या कबीर, रांम नांम लिखिं लिया सरीर ॥टेक॥
जब लग भरौं नली का बेह, तब लग टूटै रांम सनेह ॥
ठाढी रोवै कबीर की माइ, ए लरिका क्यूं जीवैं खुदाइ ।
कहै कबीर सुनहुं री माई, पूरणहारा त्रिभुवन राई ॥ २१ ॥

जुगिया न्याइ मरै मरि जाइ।
घर जाजरौ वलीडौ टेढौ, औलौती डर राइ ॥ टेक ॥
मगरी तजौं प्रीति पाषें सूं, डांडीं देहु लगाइ।
छींकौ छोडि उपरहि डौ वांधौ, ज्यूं जुगि जुगि रहै समाइ ॥
बैसि परहडा द्वार मुंदावौ, ल्यावौं पूत घर घेरी।
जेठी धीय सासरै पठवौं, ज्यूं बहुरि न आवै फेरी ॥
लहुरी धीइ सबै कुल खोयौ, तब ढिग बैठन पाई।
कहै कबीर भाग बपरी कौ, किलि किलि सबै चुकाई ॥ २२ ॥

मन रे जागत रहिये भाई।
गाफिल होइ वसत मति खोवै, चोर मुसै घर जाई ॥ टेक ॥
षटं चक्र की कनक कोठड़ी, बस्त भाव है सोई।
ताला कूंची कुलफ के लागे, उघड़त बार न होई ॥
पंच पहरवा सोइ गये हैं, वसतैं जागण लागी।
जुरा मरण व्यापै कुछ नांहीं, गगन मंडल लै लागी ॥
करत विचार मनहीं मन उपजी, नां कहीं गया न आया।
कहै कबीर संसा सब छूटा, रांम रतन धन पाया ॥ २३ ॥

चलन चलन सबको कहत है, नां जांनौं बैकुंठ कहां है ॥टेक॥
जोजन एक प्रमिति नहीं जांनैं, बातनि हीं बैकुंठ बषानैं ॥
जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नहीं हरि चरन निवासा
कहें सुनें कैसैं पतिअइये, जब लग तहां आप नहीं जइये ॥
कहैं कबीर यहु कहिये काहि, साध संगति बैकुंठहि आहि ॥ २४ ॥

अपनें विचारि असवारी कीजै, सहज कै पाइड़ै पाव जब दीजै ॥टेक॥
दे मुहरा लगांम पहिरांऊं, सिकली जीन गगन दौराऊं ॥
चलि बैकुंठ तोंहि लै तारौं, थकहित प्रेम ताजनैं मारूं ॥
जन कबीर ऐसा असवारा, बेद कतेब दहूँ थैं न्यारा ॥२५॥

अपनै मैं रँगि आपनपौ जानूं,
जिहि रँगि जांनि ताही कूं मांनूं ॥ टेक ॥
अभि-अंतरि मन रंग समानां, लोग कहैं कबीर बौरानां ॥
रंग न चीन्हैं मूरिख लोई, जिहि रँगि रंग रह्या सब कोई ॥
जे रंग कबहूं न आवै न जाई, कहै कबीर तिहिं रह्या समाई ॥ २६ ॥

झगरा एक नबेरौ रांम, जे तुम्ह अपनैं जन सूं कांम ॥ टेक ॥
ब्रह्मा बड़ा कि जिनि रू उपाया बेद बड़ा कि जहां थैं आया ॥
यहु मन बड़ा कि जहां मन मानैं, रांम बड़ा कि रांमहिं जानै ॥
कहै कबीर हूं खरा उदास, तीरथ बड़े कि हरि के दास ॥ २७ ॥

दास रांमहिं जानिंहै रे, और न जानैं कोइ ॥ टेक ॥
काजल देइ सबै कोई, चषि चाहन मांहि बिनांन ।
जिनि लोइनि मन मोहिया, ते लोइन परवांन ॥
बहुत भगति भौसागरा, नांनां बिधि नांनां भाव ।
जिहि हिरदै श्रीहरि भेटिया, सो भेद कहूं कहूं ठाउं ॥
दरसन संमि का कीजिये, जौ गुन नहीं होत समांन ।
सींधव नीर कबीर मिल्यौ है, फटक न मिलै पखान ॥ २८ ॥

कैसैं होइगा मिलावा हरि सनां,
रे तू बिषै बिकारन तजि मनां ॥ टेक ॥
रेतैं जोग जुगति जान्यां नहीं, तैं गुर का सबद मान्यां नहीं ॥
गंदी देही देखि न फूलिये, संसार देखि न भूलिये ॥
कहै कबीर मन बहु गुंनी, हरि भगति बिनां दुख फुन फुनीं ॥२९॥

कासूं कहिये सुनि रामां, तेरा मरम न जानैं कोइ जी ।
दास बबेकी सब भले, परि भेद न छानां होई जी ॥ टेक ॥

ए सकल ब्रह्मंड तैं पूरिया, अरू दूजा महि थांन जी।
मैं सब घट अंतरि पेषिया, जब देख्या नैंन समांन जी॥
रांम रसाइन रसिक हैं, अदभुत गति बिस्तार जी।
भ्रम निसा जो गत करै, ताहि सूझै संसार जी॥
सिव सनकादिक नारदा, ब्रह्म लिया निज वास जी।
कहै कबीर पद्म पंक्यजा, अब नेड़ा चरण निवास जी॥ ३०॥

मैं डोरै डोरै जांऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आंऊंगा॥टेक॥
सूत बहुत कछु थोरा, ताथैं लाइ लै कंथा डोरा।
कंथा डोरा लागा, तब जुरा मरण भौ भागा॥
जहां सूत कपास न पूनीं, तहां बसै इक मूनीं।
उस मूनीं सूं चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आंऊंगा॥
मेर डंड इक छाजा, तहां बसै इक राजा।
तिस राजा सूं चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आंऊंगा॥
जहां बहु हीरा घन मोती, तहां तत लाइ लै जोती।
तिस जोतिहिं जोति मिलांऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आंऊंगा॥
जहां ऊगै सूर न चंदा, तहां देष्या एक अनंदा।
उस आनंद सूं चित लांऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आंऊंगा॥
मूल बंध इक पावा, तहां सिध गणेस्वर रावा।
तिस मूलहि मूल मिलांऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आंऊंगा॥
कबीरा तालिब तोरा, तहां गोपत हरी गुर मोरा।
तहां हेत हरी चित लांऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आंऊंगा॥३१॥

संतौ धागा टूटा गगन बिनसि गया, सबद जु कहां समाई।
ए संसा मोहि निस दिन व्यापै, कोइ न कहै समझाई॥टेक॥
नहीं ब्रह्मंड प्यंड पुंनि नांहीं, पंचतत भी नांहीं।
इला प्यंगुला सुषमन नांहीं, ए गुण कहां समांहीं॥

नहीं ग्रिह द्वार कछू नहीं तहियां, रचनहार पुनि नांहीं।
जीवनहार अतीत सदा संगि, ये गुंण तहां समांहीं॥
तूटै बँधै बँधै पुंनि तूटै, जब तब होइ बिनासा।
तब को ठाकुर अब को सेवग, को काकै विसवासा॥
कहै कबीर यहु गगन न बिनसै, जौ धागा उनमांनां।
सीखें सुनें पढ़ें का होई, जौ नहीं पदहि समांनां॥३२॥

ता मन कौं खोजहु रे भाई, तन छूटे मन कहां समाई॥टेक॥
सनक सनंदन जै देवनांमां, भगति करी मन उनहुं न जानां॥
सिव बिरंचि नारद मुनि ग्यानीं, मन की गति उनहूं नहीं जानीं॥
धू प्रह्लिाद बभीषन सेषा, तन भीतरि मन उनहुं न देषा॥
ता मन का कोइ जानैं भेव, रंचक लीन भया सुषदेव॥
गोरष भरथरी गोपीचंदा, ता मन सौं मिलि करैं अनंदा॥
अकल निरंजन सकल सरीरा, ता मन सौं मिलि रह्या कबीरा॥३३॥

भाई रे बिरले दोसत कबीर के, यहु तत बार बार कासौं कहिये।
भांनण घड़ण संवारण संम्रथ, ज्यूं राषै त्यूं रहिये॥ टेक॥
आलम दुनीं सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयानां।
छह दरसन छयांनवै पाषंड, आकुल किनहूं न जानां॥
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बौरानां।
कागद लिखि लिखि जगत भुलानां, मनहीं मन न समाना॥
कहै कबीर जोगी अरू जंगम, ए सब झूठी आसा।
गुर प्रसादि रटौ चात्रिग ज्यूं, निहचै भगति निवासा॥ ३४॥

कितेक सिव संकर गए ऊठि,
रांम संमाधि अजहूं नहीं छूटि॥ टेक॥
प्रलै काल कहूं कितेक भाष, गये इंद्र से अगिणत लाष॥
ब्रह्मा खोजि पर्‌यौ गहि नाल, कहै कबीर वै रांम निराल॥३५॥

अच्यंत च्यंत ए माधौ, सो सब मांहिं समांनां ।
ताहि छाड़ि जे आंन भजत हैं, ते सब भ्रंमि भुलांनां ॥टेक॥
ईस कहै मैं ध्यांन न जांनूं, दुरलभ निज पद मोहीं ।
रंचक करुणां कारणि केसौ, नांव धरण कौं तोहीं ॥
कहौ धौं सबद कहां थैं आवै, अरू फिरि कहां समाई ।
सबद अतीत का मरम न जानैं, भ्रंमि भूली दुनियाई ॥
प्यंड मुकति कहां ले कीजै, जौ पद मुकति न होई ।
प्यंडैं मुकति कहत हैं मुनि जन, सबद अतीत था सोई ॥
प्रगट गुपत गुपत पुनि प्रगट, सो कत रहै लुकाई ।
कबीर परमांनंद मनाये, अकथ कथ्यौ नहीं जाई ॥ ३६ ॥

सो कछू बिचारहु पंडित लोई,
जाकै रूप न रेष बरण नहीं कोई ॥ टेक ॥
उपजै प्यंड प्रांन कहां थैं आवै, मूवा जीव जाइ कहां समावै ॥
इंद्री कहां करहि विश्रांमां, सो कंत गया जो कहता रांमा ॥
पंचतत तहां सबद न स्वादं, अलष निरंजन बिद्या न बादं ॥
कहै कबीर मन मनहि समानां, तब आगम निगम झूठ करि जानां ३७

जौ पैं बीज रूप भगवाना,
तौ पंडित का कथिसि गियाना ॥टेक॥
नहीं तन नहीं मन नहीं अहंकारा, नहीं सत रज तम तीनि प्रकारा ॥
विष अमृत फल फले अनेक, बेद रु बोधक हैं तरु एक ॥
कहै कबीर इहै मन माना, कहिधूं छूट कवन उरझाना ॥ ३८ ॥

पांडे कौंन कुमति तोहि लागी,
तूं रांम न जपहि अभागी ॥ टेक ॥
बेद पुरांन पढत अस पांडे, खर चंदन जैसैं भारा ।
रांम नांम तत समझत नांहीं, अंति पडै मुखि छारा ॥

बेद पढ्यां का यहु फल पांडे, सब घटि देखैं रांमां ।
जन्म मरन थैं तौ तूं छूटै, सुफल हूंहिं सब कांमां ॥
जीव बधत अरू धरम कहत हौ, अधरम कहां है भाई ।
आपन तौ मुनिजन ह्वै बैठे, का सनि कहौं कसाई ॥
नारद कहै व्यास यौं भाषै, सुखदेव पूछौ जाई ।
कहै कबीर कुमति तब छूटै, जे रहौ रांम ल्यौ लाई ॥ ३९ ॥

पंडित बाद बदंते झूठा ।
रांम कह्यां दुनियां गति पावै, षांड कह्यां मुख मीठा ॥टेक॥
पावक कह्यां पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई ।
भोजन कह्यां भूष जे भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई ॥
नर कै साथि सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै ।
जो कबहूं उड़ि जाइ जँगल मैं, बहुरि न सुरतैं आनै ॥
साची प्रीति विषै माया सूं, हरि भगतनि सूं हासी ।
कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ, बांध्यौ जमपुरि जासी ॥ ४० ॥

जौ पैं करता बरण बिचारै,
तौ जनमत तीनि डांडि किन सारै ॥ टेक ॥
उतपति ब्यंद कहां थैं आया,
जोति धरी अरू लागी माया ॥

---

(४०) इसके आगे ख० प्रति में यह पद है—
काहे कौं कीजै पांडे छोति विचारा ।
छोतिहीं तैं उपना सब संसारा ॥ टेक ॥
हंमारै कैसैं लोहू तुम्हारै कैसैं दूध ।
तुम्ह कैसैं बांम्हण पांडे हंम कैसैं सूद ॥
छोति छोति करता तुम्हहीं जाए ।
तौ ग्रभवास कहे कौं आए ॥
जनमत छोत मरत ही छोति ।
कहै कबीर हरि की निर्मल जोति ॥ ४८ ॥

नहीं को ऊंचा नहीं को नींचा,
जाका प्यंड ताही का सींचा ॥
जे तूं बांभन बभनीं जाया,
तौ आंन बाट ह्वै काहे न आया ॥
जे तूं तुरक तुरकनीं जाया,
तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया ॥
कहै कबीर मधिम नहीं कोई,
सो मधिम जा मुखि रांम न होई ॥ ४१ ॥

कथता बकता सुरता सोई, आप बिचारै सो ग्यांनी होई ॥टेक॥
जैसैं अगिन पवन का मेला, चंचल चपल बुधि का खेला ।
नव दरवाजे दसूं दुवार, बूझि रे ग्यांनी ग्यांन बिचार ॥
देही माटी बोलै पवनां, बूझि रे ग्यांनीं मूवा स कौनां ।
मुई सुरति बाद अहंकार, वह न मूवा जो बोलणहार ॥
जिस कारनि तटि तीरथि जांहीं, रतन पदारथ घट हीं मांहीं ।
पढ़ि पढ़ि पंडित बेद बषांणैं, भींतरि हूती बसत न जांणैं ॥
हूं न मूवा मेरी मुई बलाइ, सो न मुवा जो रह्या समाइ ।
कहै कबीर गुरु ब्रह्म दिखाया, मरता जाता नजरि न आया ॥४२॥

हम न मरैं मरिहै संसारा, हंम कूं मिल्या जियावनहारा ॥टेक॥
अब न मरौं मरनैं मन मांनां, तेई मूए जिनि रांम न जांनां ॥
साकत मरै संत जन जीवै, भरि भरि रांम रसांइन पीवै ॥
हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हंम काहे कूं मरिहैं ॥
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा ॥४३॥

कौंन मरै कौंन जनमै आई, सरग नरक कौंनै गति पाई ॥टेक॥
पंचतत अबिगत थैं उतपनां, एकैं किया निवासा ।
बिछुरे तत फिरि सहजि समांनां, रेख रही नहीं आसा ॥

जल मैं कुंभ कुंभ मैं जल है, बाहरि भीतरि पांनीं ।
फूटा कुंभ जल जलहि समांनां, यहु तत कथौ गियानीं ॥
आदैं गगनां अंतैं गगनां, मधे गगनां भाई ।
कहै कबीर करम किस लागै, झूठी संक उपाई ॥ ४४ ॥

कौंन मरै कहु पंडित जनां, सो समझाइ कहौ हम सनां ॥टेक॥
माटी माटी रही समाइ, पवनैं पवन लिया सँगि लाइ ॥
कहै कबीर सुंनि पंडित गुंनी, रूप मूवा सब देखै दुनीं ॥ ४५ ॥

जे को मरै मरन है मींठा,
गुर प्रसादि जिनहीं मरि दीठा ॥ टेक ॥
मूवा करता मुई ज करनीं, मुई नारि सुरति बहु धरनीं ॥
मूवा आपा मूवा मांन, परपंच लेइ मूवा अभिमांन ॥
रांम रमें रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अबिनासी हूवा ॥ ४६ ॥

जस तूं तस तोहि कोई न जांन,
लोग कहैं सब आनहिं आंन ॥ टेक ॥
चारि बेद चहुँ मत का बिचार, इहि भ्रंमि भूलि परयौ संसार ॥
सुरति सुमृति दोइ कौ बिसवास, बाझि परयौ सब आसा पास ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक सुर नर, मैं बपुरौ धूं का मैं का कर ॥
जिहि तुम्ह तारौ सोई पैं तिरई, कहै कबीर नांतर बांध्यौ मरई।४७।

लोका तुम्ह ज कहत हौ नंद कौ नंदन, नंद कहौ धूं काकौ रे ।
धरनि अकास दोऊ नहीं होते, तब यहु नंद कहां थौ रे ॥टेक॥
जांमैं मरै न संक्रुटि आवै, नांव निरंजन जाकौ रे ।
अबिनासी उपजै नहिं बिनसै, संत सुजस कहैं ताकौ रे ॥

लष चौरासी जीव जंत मैं भ्रमत भ्रमत नंद थाकौ रे ।।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो, भगति करै हरि ताकौ रे ।। ४८ ।।

निरगुण रांम निरगुंण रांम जपहु रे भाई,
अविगति की गति लखी न जाई ।। टेक ।।
चारि बेद जाकै सुमृत पुरांनां, नौ व्याकरनां मरम न जांनां ।।
सेस नाग जाकै गरड़ समांनां, चरन कवल कवला नहीं जांनां ।।
कहै कबीर जाकै भेदै नांहीं, निज जन बैठे हरि की छाँहीं ।।४९।।

मैं सबनि मैं औरनि मैं हूं सब ।
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो,
कोई कहौ कबीर कोई कहौ रांम राई हो ।। टेक ।।
नां हम बार बूढ नांहीं हम, नां हमरै चिलकाई हो ।
पठए न जांऊं अरवा नहीं आंऊं, सहजि रहुं हरिआई हो ।।
वोढन हमरै एक पछेवरा, लोक बोलैं इकताई हो ।
जुलहै तनि बुनि पांन न पावल, फारि बुनी दस ठांईं हो ।।
त्रिगुंण रहित फल रमि हम राखल, तब हमारौ नांउं रांम राई हो ।
जग मैं देखौं जग न देखै मोहि, इहि कबीर कछु पाई हो ।।५०।।

लोका जांनि न भूलौ भाई ।
खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई ।।टेक।।
अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा ।
ता नूर थैं सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा ।।
ता अला की गति नहीं जांनीं, गुरि गुड़ दीया मींठा ।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा ।। ५१ ।।

(५०) ख०—ना हम बार बूढ पुनि नांहीं ।

रांम मोहि तारि कहाँ लै जैहो।
सो बैकुंठ कहौ धूं कैसा, करि पसाव मोहि दैहो॥ टेक॥
जे मेरे जीव दोइ जांनत हौ, तौ मोहि मुकति बताग्रो।
एकमेक रमि रह्या सबनि मैं, तौ काहे भरमावौ॥
तारण तिरण जबै लग कहिये, तब लग तत न जांनां।
एक रांम देख्या सबहिन मैं, कहै कबीर मन मांनां॥ ५२॥

सोहं हंसा एक समांन, काया के गुंण आंनहिं आंन॥टेक॥
माटी एक सकल संसारा, बहु बिधि भांडे घड़ै कुंभारा॥
पंच बरन दस दुहिये गाइ, एक दूध देखौ पतियाइ॥
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभवननाथ रह्या भरपूर॥ ५३॥

प्यारे रांम मनहीं मनां।
कासूं कहूं कहन कौं नाहीं, दूसर और जनां॥ टेक॥
ज्यूं दरपन प्रतिब्यंब देखिए, आप दवासूं सोई।
संसौ मिट्यौ एक कौ एकै, महा प्रलै जब होई॥
जौ रिझऊं तौ महा कठिन है, बिन रिझयैं थैं सब खोटी।
कहै कबीर तरक दोइ साधै, ताकी मति है मोटी॥ ५४॥

हंम तौ एक एक करि जांनां।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नांहिन पहिचांनां॥ टेक॥
एकै पवन एक ही पांनीं, एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एकही सिरजनहारा॥
जैसैं बाढी काष्ट ही काटै, अगिनि न काटै कोई।
सब घटि अंतरि तूंहीं व्यापक, धरै सरूपैं सोई॥
माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे कूं गरबांनां।
निरभै भया कछू नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवांनां॥ ५५॥

अरे भाई दोइ कहां सो मोहि बतावौ,
विचिही भरम का भेद लगावौ ॥ टेक ॥

जोनि उपाइ रची द्वै धरनीं, दीन एक बीच भई करनीं ॥
रांम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई ॥
कहै कबीर चेतहु रे भौंदू, बोलनहारा तुरक न हिंदू ॥ ५६ ॥

ऐसा भेद बिगूचन भारी ॥
बेद कतेब दीन अरू दुनियां, कौंन पुरिष कौन नारी ॥ टेक॥

एक बूंद एकै मल मूतर, एक चांम एक गूदा ।
एक जोति थैं सब उतपनां, कौंन बांम्हन कौंन सूदा ॥
माटी का प्यंड सहजि उतपनां, नाद रु ब्यंद समांनां ।
बिनसि गयां थैं का नांव धरिहौ, पढ़ि गुनि ब्रंम जांनां ॥
रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई ।
कहै कबीर एक रांम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई ॥ ५७ ॥

हमारै रांम रहीम करीमा केसो, अलह रांम सति सोई ।
बिसमिल मेटि बिसंभर एकै, और न दूजा कोई ॥ टेक ॥

इनकै काजी मुलां पीर पैकंबर, रोजा पछिम निवाजा ।
इनकै पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारसि गंग दिवाजा ॥
तुरक मसीति देहु रै हिंदू, दहूंठां रांम खुदाई ।
जहाँ मसीति देहुरा नांहीं, तहां काकी ठकुराई ॥
हिंदू तुरक दोऊ रह तूटी, फूटी अरू कनराई ।
अरध उरध दसहूँ दिस जित तित, पूरि रह्या रांम राई ॥
कहै कबीरा दास फकीरा, अपनीं रहि चलि भाई ।
हिंदू तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई ॥ ५८ ॥

काजी कौन कतेब बषांनैं ।

पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जांनैं ॥ टेक ॥

सकति से नेह पकरि करि सुनति, यहु नबदूं रे भाई ।
जौर षुदाइ तुरक मोहि करता, तौ आपै कटि किन जाई ॥
हौं तौ तुरक किया करि सुनति, औरति सौं का कहिये ।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये ॥
छाड़ि कतेब रांम कहि काजी, खून करत हौ भारी ।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहे झष मारी ॥ ५९ ॥

मुलां कहां पुकारै दूरि, रांम रहीम रह्या भरपूरि ॥ टेक ॥
यहु तौ अलह गूंगा नांहीं, देखै खलक दुनीं दिल मांहीं ॥
हरि गुंन गाइ बंग मैं दीन्हां, काम क्रोध दोऊ बिसमल कीन्हां ॥
कहै कबीर यहु मुलनां झूठा, रांम रहींम सबनि मैं दीठा ॥६०॥

पढि ले काजी बंग निवाजा,

एक मसीति दसौं दरवाजा ॥ टेक ॥

मन करि मका कबिला करि देही, बोलनहार जगत गुर येही ॥
उहां न दोजग भिस्त मुकांमां, इहां हीं रांम इहां रहिमांनां ॥
बिसमल तांमस भरंम कं दूरी, पंचूं भषि ज्यूं होइ सबूरी ॥
कहै कबीर मैं भया दिवांनां, मनवां मुसि मुसि सहजि समांनां ॥६१॥

मुलां करि ल्यौ न्याव खुदाई,

इहि बिधि जीव का भरम न जाई ॥ टेक ॥

सरजी आंनैं देह बिनासै, माटी बिसमल कीता ।
जोति सरूपी हाथि न आया, कहौ हलाल क्या कीता ॥
बेद कतेब कहौ क्यूं झूठा, झूठा जो न बिचारै ।

(६१) ख०—मन करि मका कबिला करि देही ,
राजी [illegible] येही ।

सब घटि एक एक करि जांनैं, भौं दूजा करि मारै ॥
कुकड़ी मारै बकरी मारै, हक हक करि बोलै ।
सबै जीव सांईं के प्यारे, उबरहुगे किस बोलै ॥
दिल नहीं पाक पाक नहीं चीन्हां, उसदा षोज न जांनां ।
कहै कबीर भिसति छिटकाई, दोजग ही मन मांनां ॥ ६२ ॥

या करीम बलि हिकमति तेरी;
खाक एक सूरति बहु तेरी ॥ टेक ॥
अर्ध गगन मैं नीर जमाया, बहुत भांति करि नूरनि पाया ॥
अवलि आदम पीर मुलांनां, तेरी सिफति करि भये दिवांनां ॥
कहै कबीर यहु हेत विचारा, या रब या रब यार हमारा ॥६३॥

काहे री नलनीं तूं कुमिलांनीं,
तेरैं ही नालि सरोवर पांनीं ॥ टेक ॥
जल मैं उतपति जल मैं बास, जल मैं नलनीं तोर निवास ॥
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि॥
कहै कबीर जे उदिक समांन, ते नहीं मूए हंमारे जान ॥ ६४॥

इब तूं हसि प्रभू मैं कुछ नांहीं,
पंडित पढि अभिमांन नसांहीं ॥ टेक ॥
मैं मैं मैं जब लग मैं कीन्हां, तब लग मैं करता नहीं चीन्हां॥
कहै कबीर सुनहु नरनाहा, नां हम जीवत न मूंवाले माहां ॥६५॥

अब का डरौं डर डरहि समांनां,
जब थैं मोर तोर पहिचांनां ॥ टेक ॥
जब लग मोर तोर करि लीन्हां, भै भै जनमि जनमि दुख दीन्हां॥
आगम निगम एक करि जांनां, ते मनवां मन मांहिं समांनां ॥

(६२) ख—उसका खोज न जांनां ।

जब लग ऊंच नींच करि जांनां, ते पसुवा भूले भ्रंम नांनां ॥
कहि कबीर मैं मेरी खोई, तबहि रांम अवर नहीं कोई ॥ ६६ ॥

बोलनां का कहिये रे भाई, बोलत बोलत तत नसाई ॥ टेक ॥

बोलत बोलत बढै बिकारा, बिन बोल्यां क्यूं होइ विचारा ॥
संत मिलै कछु कहिये कहिये, मिलै असंत मुष्टि करि रहिये ॥
ग्यांनीं सूं बोल्यां हितकारी, मूरिख सूं बोल्यां झष मारी ॥
कहै कबीर आधा घट डोलै, भरया होइ तौ मुषां न बोलै ॥६७॥

बागड़ देस लूवन का घर है,
तहां जिनि जाइ दाझन का डर है ॥ टेक ॥

सब जग देखौं कोई न धीरा, परत धूरि सिरि कहत अबीरा ॥
न तहां सरवर न तहां पांणीं, न तहां सतगुर साधू बांणीं ॥
न तहां कोकिल न तहां सूवा, ऊंचै चढ़ि चढ़ि हंसा मूवा ॥
देस मालवा गहर गंभीर, डग डग रोटी पग पग नीर ॥
कहै कबीर घरहीं मन मांनां, गूंगे का गुड़ गूंगै जांनां ॥ ६८ ॥

अवधू जोगी जग थैं न्यारा ।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा ॥ टेक ॥

बसै गगन मैं दुनीं न देखै, चेतनि चौकी बैठा ।
चढ़ि अकास आसण नहीं छाडै, पीवै महा रस मींठा ॥
परगट कंथा मांहैं जोगी, दिल मैं दरपन जोवै ।
सहंस इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पोवै ॥
ब्रह्म अगनि मैं काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै ।
कहै कबीर सोई जोगेस्वर, सहज सुंनि ल्यौ लागै ॥ ६९ ॥

अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीवै ॥ टेक ॥
मूल बांधि सर गगन समांनां, सुषमन यों तन लागी।
कांम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहां जोगणीं जागी ॥
मनवां जाइ दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय संसा नांहीं, सबद अनाहद वागा ॥७०॥

कोई पीवै रे रस रांम नांम का, जो पीवै सो जोगी रे।
संतौ सेवा करौ रांम की, और न दूजा भोगी रे ॥ टेक ॥
यहु रस तौ सब फीका भया, ब्रह्म अगनि परजारी रे।
ईश्वर गौरी पीवन लागे, रांम तनीं मतिवारी रे ॥
चंद सूर दोइ भाठी कीन्हीं, सुषमनि चिगवा लागी रे।
अमृत कूं पी सांचा पुरया, मेरी त्रिष्णां भागी रे ॥
यहु रस पीवै गूंगा गहिला, ताकी कोई न बूझै सार रे।
कहै कबीर महा रस महँगा, कोई पीवैगा पीवणहार रे ॥ ७१ ॥

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ्या मगन रस पीवै, त्रिभवन भया उजियारा॥टेक॥
गुड़ करि ग्यांन ध्यांन कर महुवा, भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समांनीं, पीवै पीवनहारा ॥
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी।
कांम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई संसारी ॥
सुंनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहां मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै ॥

(७१) ख०—चंद सूर दोइ किया पयाना।
(७२) ख०—उनमति चढ्या महारस पीवै,
पूरा मिल्या तबै सुष उपनां।

पूरा मिल्या तबैं सुष उपज्यौ, तन की तपति बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समाना ॥ ७२ ॥

छाकि पर्‌यो आतम मतिवारा,
पीवत रांम रस करत बिचारा ॥ टेक ॥
बहुत मोलि महँगै गुड़ पावा, लै कसाब रस रांम चुवावा ॥
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा, मांगि मांगि रस पीवै बिचारा ॥
कहै कबीर फावी मतिवारी, पीवत रांम रस लगी खुमारी ॥७३॥

बोलौ भाई रांम की दुहाई।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई ॥टेक॥
इला प्यंगुला भाठी कीन्हीं, ब्रह्म अगनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ॥
मन मतिवाला पीवै रांम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अंमृत धार चुवाई ॥
पंच जने सो सँग करि लीन्हें, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ॥
सहज सुंनि मैं जिनि रस चाष्या, सतगुर थैं सुधि पाई।
दास कबीर इहि रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई ॥ ७४ ॥

रांम रस पाईया रे, ताथैं बिसरि गये रस और ॥ टेक ॥
रे मन तेरा को नहीं, खैंचि लेइ जिनि भार।
बिरषि बसेरा पंषि का, ऐसा माया जाल ॥
और मरत का रोइए, जो आया थिर न रहाइ।
जो उपज्या सो बिनसिहै; ताथैं दुख करि मरै बलाइ ॥
जहां उपज्या तहां फिरि रच्या रे, पीवत मरदन लाग।
कहै कबीर चित चेतिया, ताथैं रांम सुमरि बैराग ॥ ७५ ॥

रांम चरन मनि भाए रे ।
अस ढरि जाहु रांय के करहा, प्रेम प्रीति ल्यौ लाये रे ॥टेक॥
आंब चढ़ी अंबली रे अंबली, बबूर चढ़ी नग बेली रे ।
द्वै थर चढ़ि गयौ रांड कौ करहा, मनहु पाट की सैली रे ॥
कंकर कूई पतालि पनियां, सूनैं बूंद बिकाई रे ।
बजर परौ इहि मथुरा नगरी, कांन्ह पियासा जाई रे ॥
एक दहिड़िया दही जमायौ, दुसरी परि गई साई रे ।
न्यूंति जिमाऊं अपनौं करहा, छार मुनिस की डारी रे ॥
इहि बंनि बाजै मदन भेरि रे, उहि बंनि बाजै तूरा रे ।
इहि बंनि खेलै राही रुकमनि, उहि बंनि कान्ह अहीरा रे ॥
आसि पासि तुरसी कौ बिरवा, माहिं द्वारिका गांऊं रे ।
तहां मेरौ ठाकुर रांम राइ है, भगत कबीरा नांऊँ रे ॥ ७६ ॥

थिर न रहै चित थिर न रहै, च्यंतामणि तुम्ह कारणि हो ।
मन मैले मैं फिरि फिरि आहौं, तुम सुनहुं न दुख बिसरावन हो ॥टेक॥
प्रेम खटोलवा कसि कसि बांध्यौ, बिरह बांन तिहि लागू हो ।
तिहि चढ़ि इंदऊँ करत गवंसियां, अंतरि जमवा जागू हो ॥
महरू मछा मारि न जांनैं, गहरै पैठा धाई हो ।
दिन इक मगरमछ लै खैहै, तब को रखिहै बंधन भाई हो ॥
महरू नांम हरइये जांनैं, सबद न बूझै बौरा हो ।
चारै लाइ सकल जग खायौ, तऊ न भेटि निसहुरा हो ॥
जौ महाराज चाहौ महरईये, तौ नाथौ ए मन बौरा हो ।
तारी लाइकैं सिष्टि बिचारौ, तब गहि भेटि निसहुरा हो ॥
टिकुटी भई कांन्ह कै कारणि, भ्रंमि भ्रंमि तीरथ कीन्हां हो ।
सो पद देहु मोहि मदन मनोहर, जिहि पदि हरि मैं चीन्हां हो ॥

दास कबीर कीन्ह अस गहरा, बूझै कोई महरा हो ।
यहु संसार जात मैं देखौं, ठाढा रहौ कि निहुरा हो ॥ ७७ ॥

बीनती एक रांम सुंनि थोरी, अब न बचाइ राखि पति मोरी ॥टेक॥
जैसैं मंदला तुमहि बजावा, तैसैं नाचत मैं दुख पावा ॥
जे मसि लागी सबै छुड़ावौ, अब मोहि जिनि बहु रूपक छावौ ॥
कहै कबीर मेरी नाच उठावौ, तुम्हारे चरन कवल दिखलावौ ॥७८॥

मन थिर रहै न घर ह्वै मेरा, इन मन घर जारे बहुतेरा ॥टेक॥
घर तजि बन बाहरि कियौं बास, घर बन देखौं दोऊ निरास ॥
जहां जांऊं तहां सोग संताप, जुरा मरण कौ अधिक बियांप ॥
कहै कबीर चरन तोहि बंदा, घर मैं घर दे परमांनंदा ॥ ७९ ॥

कैसैं नगरि करौं कुटवारी, चंचल पुरिष बिचषन नारी ॥टेक॥
बैल बियाइ गाइ भई बांझ, बछरा दूहै तीन्यूं सांझ ॥
मकड़ी घरि माषी छछि हारी, मास पसारि चील्ह रखवारी ॥
मूसा खेवट नाव बिलइया, मींडक सोवै साप पहरइया ॥
नित उठि स्याल स्यंघ सूं झूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै ॥८०

भाई रे चूंन बिलूंटा खाई,
बाघनि संगि भई सबहिन कै, खसम न भेद लहाई ॥ टेक ॥
सब घर फोरि बिलूंटा खायौ, कोई न जांनैं भेव ।
खसम निपूतौ आंगणि सूतौ, रांड न देई लेव ॥
पाड़ोसनि पनि भई बिरांनीं, मांहि हुई घर घालै ।
पंच सखी मिलि मंगल गांवैं, यहु दुख याकौं सालै ॥
ह्वै ह्वै दीपक घरि घरि जोया, मंदिर सदा अँधारा ।
घर घेहर सब आप सवारथ, बाहरि किया पसारा ॥

होत उजाड़ सबै कोई जांनैं, सब काहू मनि भावै ।
कहै कबीर मिलै जे सतगुर, तौ यहु चून छुड़ावै ॥ ८१ ॥

बिषिया अजहूं सुरति सुख आसा,
हूंण न देइ हरि के चरन निवासा ॥ टेक ॥
सुख मांगैं दुख पहली आवै, ताथैं सुख मांग्या नहीं भावै ॥
जा सुख थैं सिव बिरंचि डरांनां, सो सुख हमहु साच करि जाना ॥
सुखि छाड्या तब सब दुख भागा, गुर के सबद मेरा मन लागा ॥
निस बासुरि बिपैतनां उपगार, बिषई नरकि न जातां बार ॥
कहै कबीर चंचल मति त्यागी, तब केवल रांम नांम ल्यौ लागी ॥ ८२ ॥

तुम्ह गारड़ू मैं विष का माता,
काहे न जिवावौ मेरे अंमृतदाता ॥ टेक ॥
संसार भवंगम डसिले काया,
अरु दुख दारन व्यापै तेरी माया ॥
सापनि एक पिटारै जागै,
अह निसि रोवै ताकूं फिरि फिरि लागै ॥
कहै कबीर को को नहीं राखे,
रांम रसांइन जिनि जिनि चाखे ॥ ८३ ॥

माया तजूं तजी नहीं जाइ,
फिर फिर माया मोहि लपटाइ ॥ टेक ॥
माया आदर माया मांन, माया नहीं तहां ब्रह्म गियांन ॥
माया रस माया कर जांन, माया कारनि तजै परान ॥
माया जप तप माया जोग, माया बांधे सबही लोग ॥

(८१) ख०—सखम न भेद लषाई ॥
(८२) ख०—हौन न देई हरि के चरन निवासा ।

माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहूँ पासि ॥
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता ॥
माया मारि करै व्यौहार, कहै कबीर मेरे रांम अधार ॥ ८४ ॥

ग्रिह जिनि जांनौं रूड़ौ रे।
कंचन कलस उठाइ लै मंदिर, रांम कहे बिन धूरौ रे ॥ टेक ॥
इन ग्रिह मन डहके सबहिन के, काहू कौ पर्यौ न पूरौ रे।
राजा रांणां राव छत्रपति, जरि भये भसम कौ कूरौ रे ॥
सबथैं नींकी संत मँडलिया, हरि भगतनि कौ भेरौ रे।
गोबिंद के गुन बैठे गैहैं, खैहैं टूकौ टेरौ रे ॥
ऐसैं जांनि जपौ जग-जीवन, जम सूं तिनका तोरौ रे ॥
कहै कबीर रांम भजबे कौं, एक आध कोई सूरौ रे ॥ ८५ ॥

रंजसि मींन देखि बहु पांनीं,
काल जाल की खबरि न जांनीं ॥ टेक ॥
गारै गरब्यौ औघट घाट,
सो जल छाड़ि बिकांनौं हाट ॥
बंध्यौ न जांनैं जल उदमादि,
कहै कबीर सब मोहे स्वादि ॥ ८६ ॥

काहे रे मन दह दिसि धावै,
बिषिया संगि संतोष न पावै ॥ टेक ॥
जहां जहां कलपै तहां तहां बंधनां,
रतन कौ थाल कियौ तैं रंधनां ॥
जौ पैं सुख पईयत इन मांहीं,
तौ राज छाड़ि कत बन कौं जांहीं ॥

आनंद सहत तजौ विष नारी,
अब क्या झीषै पतित भिषारी ॥
कहै कबीर यहु सुख दिन चारि,
तजि बिषिया भजि चरन मुरारि ॥ ८७ ॥

जियरा जाहिगौ मैं जांनां ।
जो देख्या सो बहुरि न पेष्या, माटी सूं लपटांनां ॥ टेक ॥
बाकुल बसतर किता पहरिबा, का तप बनखंडि बासा ।
कहा मुगधरे पांहन पूजै, काजल डारै गाता ॥
कहै कबीर सुर मुनि उपदेसा, लोका पंथि लगाई ।
सुनौं संतौ सुमिरौ भगत जन, हरि बिन जनम गवाई ॥ ८८ ॥

हरि ठग जग कौं ठगौरी लाई,
हरि कै बियोग कैसैं जीऊँ मेरी माई ॥ टेक ॥
कौंन पुरिष को काकी नारी,
अभि-अंतरि तुम्ह लेहु बिचारी ॥
कौंन पूत को काकौ बाप,
कौंन मरै कौंन करै संताप ॥
कहै कबीर ठग सौं मनमांनां,
गई ठगौरी ठग पहिचांनां ॥ ८९ ॥

साईं मेरे साजि दई एक डोली,
हस्त लोक अरु मैं तैं बोली ॥ टेक ॥
इक झंझर सम सूत खटोला,
त्रिस्नां बाव चहूँ दिसि डोला ॥
पांच कहार का मरम न जांनां,
एकैं कह्या एक नहीं मांनां ॥

भूभर घांम उहार न छावा,
नैहरि जात बहुत दुख पावा ॥
कहै कबीर वर बहु दुख सहिये,
रांम प्रीति करि संगही रहिये ॥ ९० ॥

बिनसि जाइ कागद की गुड़िया,
जब लग पवन तबै लगै उड़िया ॥ टेक ॥
गुड़िया कौ सबद अनाहद बोलै, खसम लियैं कर डोरी डोलै ॥
पवन थक्यौ गुड़िया ठहरांनीं, सीस धुनै धूनि रोवै प्रांनीं ॥
कहै कबीर भजि सारंग पानीं, नहीं तर ह्वैहै खैंचा तांनीं ॥९१॥

मन रे तन कागद का पुतला।
लागै बूंद बिनसि जाइ छिन मैं, गरब करै क्या इतना ॥टेक॥
माटी खोदहिं भींत उसारै, अंध कहै घर मेरा।
आवै तलब बांधि लै चालै, बहुरि न करिहै फेरा ॥
खोट कपट करि यहु धन जोर्यौ, लै धरती मैं गाड़्यौ।
रोक्यौ घटि सास नहीं निकसै, ठौर ठौर सब छाड़्यौ ॥
कहै कबीर नट नाटिक थाके, मदला कौंन बजावै।
गये पषनियां उझरी बाजी, को काहू कै आवै ॥ ९२ ॥

झूठे तन कौं कहा लइयें,
मरिये तौ पल भरि रहण न पइये ॥ टेक ॥
षीर षांड़ घृत प्यंड संवारा,
प्रान गयें ले बाहरि जारा ॥
चोवा चंदन चरचत अंगा,
सो तन जरै काठ के संगा ॥

(९०) ख०—कहै कबीर बहुत दुख सहिए।

दास कबीर यहु कीन्ह बिचारा,
इक दिन ह्वै है हाल हमारा ॥ ९३ ॥

देखहु यहु तन जरता है,
घड़ी पहर बिलंबौ रे भाई जरता है ॥ टेक ॥
काहे कौं एता किया पसारा,
यहु तन जरि बरि ह्वै है छारा ॥
नव तन द्वादस लागी आगी,
मुगध न चेतै नख सिख जागी ॥
कांम क्रोध घट भरे बिकारा,
आपहि आप जरै संसारा ॥
कहै कबीर हम मृतक समांनां,
रांम नांम छूटै अभिमांनां ॥ ९४ ॥

तन राखनहारा को नाहीं,
तुम्ह सोचि बिचारि देखौ मन मांहीं ॥ टेक ॥
जोर कुटंब अपनौं करि पारयौ,
मूंड ठोकि लै बाहरि जारयौ ॥
दगाबाज लूटैं अरु रोवैं,
जारि गाडि पुर षोजहिं षोवैं ॥
कहत कबीर सुनहुं रे लोई,
हरि बिन राखनहार न कोई ॥ ९५ ॥

अब क्या सोचै आइ बनीं,
सिर परि साहिब रांम धनीं ॥ टेक ॥
दिन दिन पाप बहुत मैं कीन्हां,
नहीं गोब्यंद की संक मनीं ।

लेख्यौ भोमि बहुत पछितांनौं,
लालचि लागौ करत घनीं ॥
छूटी फौज आंनि गढ घेर्यौ,
उड़ि गयौ गूड़र छाड़ि तनीं ।
पकर्यौ हंस जम ले चाल्यौ,
मंदिर रोवै नारि घनीं ॥
कहै कबीर रांम किन सुमिरत,
चीन्हत नांहिन एक चिनीं ।
जब जाइ आइ पड़ोसी घेर्यौ,
छाड़ि चल्यौ तजि पुरिष पनीं ॥ ९६ ॥

सुवटा डरपत रहु मेरे भाई, तोहि डराई देत बिलाई ॥
तीनि बार रूंधै इक दिन मैं, कबहूं क खता खवाई ॥ टेक ॥
या मंजारी मुगध न मांनैं, सब दुनियां डहकाई ।
राणां राव रंक कौं ब्यापै, करि करि प्रीति सवाई ॥
कहत कबीर सुनहु रे सुवटा, उबरै हरि सरनांई ।
लाषौं मांहिं तैं लेत अचांनक, काहू न देत दिखाई ॥ ९७ ॥

का मांगूं कुछ थिर न रहाई,
देखत नैंन चल्या जग जाई ॥ टेक ॥
इक लष पूत सवा लष नाती, ता रांवन घरि दीवा न बाती ॥
लंका सा कोट समंद सी खाई, ता रावन की खबरि न पाई ॥
आवत संग न जात संगाती, कहा भयौ दरि बांधे हाथी ॥
कहै कबीर अंत की बारी, हाथ झाड़ि जैसैं चले जुवारी ॥९८॥

रांम थोरे दिन कौं का धन करनां,
धंधा बहुत निहाइति मरनां ॥ टेक ॥
कोटी धज साह हस्ती बंध राजा, क्रिपन को धन कौनैं काजा ॥

धंन कै गरबि रांम नहीं जांनां, नागा ह्वै जंम पैं गुदरांनां ॥
कहै कबीर चेतहु रे भाई, हंस गया कछु संगि न जाई ॥९९॥

काहे कूं माया दुख करि जोरी,
हाथि चूंन गज पांच पछेवरी ॥ टेक ॥
नां को बंध न भाई साथी, बांधे रहे तुरंगम हाथी ॥
मैड़ी महल बावड़ी छाजा, छाड़ि गये सब भूपति राजा ॥
कहै कबीर रांम ल्यौ लाई, धरी रही माया काहू खाई ॥१००॥

माया का रस षांण न पावा,
तब लग जम बिलवा ह्वै धावा ॥ टेक ॥
अनेक जतन करि गाड़ि दुराई, काहू सांची काहू खाई ॥
तिल तिल करि यहु माया जोरी, चलती बेर तिणां ज्यूं तोरी ॥
कहै कबीर हूं ताका दास, माया माँहैं रहै उदास ॥ १०१ ॥

मेरी मेरी दुनियां करते, मोह मछर तन धरते ।
आगैं पीर मुकदम होते, वै भी गये यौं करते ॥ टेक ॥
किसकी ममां चचा पुंनि किसका, किसका पंगुड़ा जोई ।
यहु संसार बजार मंड्या है, जानैंगा जन कोई ॥
मैं परदेसी काहि पुकारौं, इहां नहीं को मेरा ।
यहु संसार ढूंढि सब देख्या, एक भरोसा तेरा ॥
खांहि हलाल हरांम निवारैं, भिस्त तिनहु कौं होई ।
पंच तत का मरम न जांनैं, दोजगि पड़िहै सोई ॥
कुटंब कारणि पाप कमावै, तूं जांणैं घर मेरा ।
ए सब मिले आप सवारथ, इहां नहीं को तेरा ॥

(१००) ख०—मैड़ी महल अरु सोभित छाजा।

सायर उतरौ पंथ सँवारौ, बुरा न किसी का करणां।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, ज्वाब खसम कूं भरणां॥ १०२॥

रे यामैं क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहिं कहत घर मेरा॥ टेक॥
चारि पहर निस भोरा, जैसैं तरवर पंषि बसेरा।
जैसैं बनियें हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा॥
ये ले जारे वै ले गाड़े, इनि दुखिइनि दोऊ घर छाड़े॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह बिनसि रहैगा सोई॥१०३॥

नर जांणैं अमर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया॥टेक॥
मारग छाड़ि कुमारग जोवैं, आपण मरै और कूं रोवैं॥
कछू एक किया कछू एक करणां, मुगध न चेतै निहचै मरणां॥
ज्यूँ जल बूंद तैसा संसारा, उपजत बिनसत लगै न बारा॥
पंच पंषुरिया एक सरीरा, कृष्ण कवल दल भवर कबीरा॥१०४॥

मन रे अहरषि बाद न कीजै, अपनां सुकृत भरि भरि लीजै॥टेक॥
कुँभरा एक कमाई माटी, बहु बिधि जुगति बणाई।
एकनि मैं मुकताहल मोती, एकनि ब्याधि लगाई॥
एकनि दीनां पाट पटंबर, एकनि सेज निवारा।
एकनि दीनीं गरै गूदरी, एकनि सेज पयारा॥
सांची रही सूंम की संपति, मुगध कहै यहु मेरी।
अंत काल जब आइ पहूंता, छिन मैं कीन्ह न बेरी॥
कहत कबीर सुनौं रे संतौ, मेरी मेरी सब झूठी।
चड़ा चींथड़ा चूहड़ा ले गया, तणीं तणगती टूटी॥ १०५॥

---

(१०२) ख०—मेरी मेरी सब जग करता।
(१०४) ख०—मुगध न देखै।

हड़ हड़ हड़ हड़ हसती है, दिवांनपनां क्या करती है।
आडी तिरछी फिरती है, क्या च्यौं च्यौं म्यों म्यों करती है॥टेक॥
क्या तूं रंगी क्या तूं चंगी, क्या सुख लोड़ैं कीन्हां।
मीर मुकदम सेर दिवांनीं, जंगल केर षजीनां॥
भूले भरमि कहा तुम्ह राते, क्या मदुमाते माया।
रांम रंगि सदा मतिवाले, काया होइ निकाया॥
कहत कबीर सुहाग सुंदरी, हरि भजि है निस्तारा।
सारा षलक खराब किया है, मांनस कहा बिचारा॥ १०६॥

हरि कै नांइ गहर जिनि करऊं, रांम नांम चित सुखां न धरऊं।टेक॥
जैसैं सती तजै स्यंगार, ऐसैं जीयरा करम निवार॥
राग दोष दहूँ मैं एक न भाषि, कदाचि ऊपजै तौ चिता न राषि॥
भूलै बिसरय गहर जौ होई, कहै कबीर क्या करिहै मोही॥१०७॥

मन रे कागद कीर पराया।
कहा भयौ ब्यौपार तुम्हारै, कल तर बढ़ै सवाया॥ टेक॥
बड़ैं बौहरै सांठो दीन्हौं, कल तर काढ्यौ खोटै।
चार लाष अरु असी ठीक दे, जनम लिष्यौ सब चोटै॥
अब की बेर न कागद कीरयौ, तौ धर्म राइ सूं तूटै।
पूंजी वितड़ि बंदि लै देहै, तब कहै कौंन कै छूटै॥
गुरदेव ग्यांनीं भयौ लगनियां, सुमिरन दीन्हौं हीरा।
बड़ी निसरनी नांव रांम कौ, चढ़ि गयौ कीर कबीरा॥ १०८॥

धागा ज्यूं टूटै त्यूं जोरि।
तूटै तूटनि होयगी, नां ऊँ मिलै बहोरि॥ टेक॥
उरझ्यो सूत पांन नहीं लागै, कूच फिरै सब लाई।

छिटकै पवन तार जब छूटै, तब मेरौ कहा बसाई ॥
सुरझंगी सूत गुढ़ी सब भागी, पवन राखि मन धीरा।
पंचूं भइया भये सनमुखा, तब यहु पान करीला ॥
नांन्हीं मैंदा पीसि लई है, छांणि लई द्वै बारा।
कहैं कबीर तेल जब मेल्या, बुनत न लागी बारा ॥ १०९ ॥

ऐसा औसर बहुरि न आवै; रांम मिलै पूरा जन पावै ॥ टेक ॥
जनम अनेक गया अरू आया, की बेगारि न भाड़ा पाया ॥
भेष अनेक एकधूं कैसा, नांनां रूप धरै नट जैसा ॥
दांन एक मांगौं कवलाकंत, कबीर के दुख हरन अनंत ॥ ११० ॥

हरि जननीं मैं बालिक तेरा,
काहे न औगुंण बकसहु मेरा ॥ टेक ॥
सुत अपराध करै दिन केते, जननीं कै चित रहैं न तेते ॥
कर गहि केस करै जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ॥
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी॥१११॥

गोव्यंदे तुम्ह थैं डरपौं भारी।
सरणाई आयौ क्यूं गहिये, यहु कौंन बात तुम्हारी ॥ टेक ॥
धूप दाझतैं छांह तकाई, मति तरवर सचपाऊं।
तरवर मांहैं ज्वाला निकसै, तौ क्या लेइ बुझाऊं ॥
जे बन जलै त जल कूं धावै, मति जल सीतल होई।
जलही मांहि अगनि जे निकसै, और न दूजा कोई ॥
तारण तिरण तिरण तूं तारण, और न दूजा जांनौं।
कहै कबीर सरनांई आयौं, आंन देव नहीं मांनौं ॥ ११२ ॥

मैं गुलांम मोहि बेचि गुसांईं,
तन मन धन मेरा रांमजी कै तांईं ॥ टेक ॥
आंनि कबीरा हाटि उतारा,
सोई गाहक सोई बेचनहारा ॥
बेचै रांम तौ राखै कौंन,
राखै रांम तौ बेचै कौंन ॥
कहै कबीर मैं तन मन जारया,
साहिब अपनां छिन न बिसारया ॥ ११३ ॥

अब मोहि राम भरोसा तेरा,
और कौंन का करौं निहोरा ॥ टेक ॥
जाकै रांम सरीखा साहिब भाई,
सो क्यूं अनंत पुकारन जाई ॥
जा सिरि तीनि लोक कौ भारा,
सो क्यूं न करै जन की प्रतिपारा ॥
कहै कबीर सेवौ बनवारी,
सींचौ पेड़ पीवैं सब डारी ॥ ११४ ॥

जियरा मेरा फिरै रे उदास ।
रांम बिन निकसि न जाई सास, अजहूँ कौंन आस ॥ टेक ॥
जहां जहां जांऊं रांम मिलावै न कोई,
कहौ संतौ कैसैं जीवन होई ॥
जरै सरीर यहु तन कोई न बुझावै,
अनल दहै निस नींद न आवै ॥
चंदन घसि घसि अंग लगांऊं,
रांम बिनां दारन दुख पाऊं ॥

सत संगति मति मन करि धीरा,
सहज जांनि रांमहि भजै कबीरा ॥ ११५ ॥

रांम कहौ न अंजहूँ केते दिनां,
जब ह्वै है प्रांन प्रभू तुम्ह लीनां ॥ टेक ॥
भौ भ्रमत अनेक जन्म गया, तुम्ह दरसन गोव्यंद छिन न भया॥
भ्रम्य भूलि परयौ भव सागर, कछू न बसाइ बसोधरा ॥
कहै कबीर दुखभंजनां, करौ दया दुरत निकंदनां ॥ ११६ ॥

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ॥ टेक ॥
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया,
रांम बड़े मैं छुटक लहुरिया ॥
किया स्यंगार मिलन कै तांई,
काहे न मिलौ राजा रांम गुसांई ॥
अब की बेर मिलन जो पांऊं,
कहै कबीर भौ-जलि नहीं आंऊं ॥ ११७ ॥

रांम बांन अन्ययाले तीर, जाहि लागे सो जांनैं पीर ॥टेक॥
तन मन खोजौं चोट न पांऊं, ओषद मूली कहां घसि लांऊं ॥
एकहीं रूप दीसै सब नारी, नां जानौं को पीयहि पियारी ॥
कहै कबीर जा मस्तकि भाग, नां जांनूं काहू देइ सुहाग॥११८॥

आस नहीं पूरिया रे, रांम बिन को कर्म कांटणहार ॥ टेक ॥
जद सर जल परिपूरता, चात्रिग चितह उदास ।
मेरी बिषम कर्म गति ह्वै परी, ताथैं पियास पियास ॥
सिध मिलै सुधि नां मिलै, मिलै मिलावै सोइ ।

सूर सिध जब भेटिये, तब दुख न व्यापै कोइ ॥
बोछै जलि जैसैं मछिका, उदर न भरईं नीर ।
त्यूं तुम्ह कारनि केसवा, जन ताला बेली कबीर ॥ ११९॥

रांम बिन तन की ताप न जाई,
जल मैं अगनि उठी अधिकाई ॥ टेक ॥
तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीनां,
जल मैं रहौं जलहिं बिन षींनां ॥
तुम्ह प्यंजरा मैं सुवनां तोरा,
दरसन देहु भाग बड़ मोरा ॥
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला,
कहै कबीर रांम रमूं अकेला ॥ १२० ॥

गोव्यंदा गुंण गाईये रे, ताथैं भाई पाईये परम निधांन ॥टेक
ऊंकारे जग ऊपजै, बिकारे जग जाइ ।
अनहद बेन बजाइ करि, रह्यो गगन मठ छाइ ॥
झूठै जग डहकाइया रे, क्या जीवण की आस ।
रांम रसांइण जिनि पीया, तिनिकौं बहुरि न लागी रे पियास॥
अरध षिन जीवन भला, भगवंत भगति सहेत ।
कोटि कलप जीवन ब्रिथा, नांहिन हरि सूं हेत ॥
संपति देखि न हरषिये, बिपति देषि न रोइ ।
ज्यूं संपति त्यूं बिपति है, करता करै सु होइ ॥
सरग लोक न बांछिये, डरिये न नरक निवास ।
हूंणां था सो ह्वै रह्या, मनहु न कीजै झूठी आस ॥
क्या जप क्या तप संजमां, क्या तीरथ व्रत अस्नान ।
जौ पैं जुगति न जांनियै, भाव भगति भगवान ॥

सुंनि मंडल मैं सोधि लै, परम जोति परकास ।
तहूवां रूप न रेष है, बिन फूलनि फूल्यौ रे अकास ॥
कहै कबीर हरि गुंण गाइ लै, सत संगति रिदा मंझारि ।
जो सेवग सेवा करै, ता संगि रमैं रे मुरारि ॥ १२१ ॥

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई ।
जा दिन तेरो कोई नांहीं, ता दिन रांम सहाई ॥ टेक ॥
तंत न जांनूं मंत न जांनूं, जांनूं सुंदर काया ।
मीर मलिक छत्रपति राजा, ते भी खाये माया ॥
वेद न जांनूं भेद न जांनूं, जांनूं एकहि रांमां ।
पंडित दिसि पछिवारा कींन्हां, मुख कीन्हौं जित नांमां ॥
राजा अंबरीक कै कारणि, चक्र सुदरसन जारै ।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसौ, भगत की सरन ऊबारै ॥ १२२ ॥

रांम भणि रांम भणि रांम चिंतामणि,
भाग बड़े पायौ छाड़ै जिनि ॥ टेक ॥
असंत संगति जिनि जाइ रे भुलाइ,
साध संगति मिलि हरि गुंण गाइ ॥
रिदा कवल मैं राखि लुकाइ,
प्रेम गांठि दे ज्यूं छूटि न जाइ ॥
अठ सिधि नव निधि नांव मंझारि,
कहै कबीर भजि चरन मुरारि ॥ १२३ ॥

निरमल निरमल रांम गुंण गावै, सो भगता मेरे मनि भावै ॥टेक॥
जे जन लेहिं रांम कौ नाउं, ताकी मैं बलिहारी जांउं ॥

(१२१) ख०—भगवंत भजन सहेत ।

जिहिं घटि रांम रहे भरपूरि, ताकी मैं चरनन की धूरि ॥
जाति जुलाहा मति कौ धीर,
हरषि हरषि गुंण रमैं कबीर ॥१२४॥

जा नरि रांम भगति नहीं साधी,
सो जनमत काहे न मूवौ अपराधी ॥टेक॥
गरभ मुचे मुचि भई किन बांझ,
सूकर रूप फिरै कलि मांझ ॥
जिहि कुलि पुत्र न ग्यांन विचारी,
वाकी बिधवा काहे न भई महतारी ॥
कहै कबीर नर सुंदर सरूप,
रांम भगति बिन कुचल करूप ॥१२५॥

रांम बिनां ध्रिग ध्रिग नर नारी,
कहा तैं आइ कियौ संसारी ॥ टेक ॥
रज बिनां कैसौ रजपूत,
ग्यांन बिनां फोकट अवधूत ॥
गनिका कौ पूत पिता कासौं कहै,
गुर बिन चेला ग्यांन न लहै ॥
कवारी कंन्यां करै स्यंगार,
सोभ न पावै बिन भरतार ॥
कहै कबीर हूं कहता डरूं,
सुषदेव कहै तौ मैं क्या करौं ॥१२६॥

जरि जाव ऐसा जीवनां, राजा रांम सूं प्रीति न होई ।
जन्म अमोलिक जात है, चेति न देखै कोई ॥ टेक ॥
मधुंमाषी धन संग्रहै, मधुवा मधु ले जाई रे ।
गयौ गयौ धंन मूंढ जनां, फिरि पीछैं पछिताई रे ॥

विषिया सुख कै कारनैं, जाइ गनिका सूं प्रीति लगाई।
अंधै आगि न सूझई, पढ़ि पढ़ि लोग बुझाई॥
एक जनम कै कारणैं, कत पूजौ देव सहंसौ रे।
काहे न पूजौ रांम जी, जाकौ भगत महेसौ रे॥
कहै कबीर चित चंचला, सुनहू मूंढ मति मोरी।
विषिया फिरि फिरि आवई, राजा रांम न मिलै बहोरी॥१२७॥

रांम न जपहु कहा भयौ अंधा,
रांम बिनां जंम मेलै फंधा॥ टेक॥
सुत दारा का किया पसारा, अंत की बेर भये बटपारा॥
माया ऊपरि माया मांडीं, साथ न चलै षोषरी हांडीं॥
जपौ रांम ज्यूं अंति उबारै, ठाढी बांह कबीर पुकारै॥१२८॥

डगमग छाड़ि दे मन बौरा।
अब तौ जरें बरें बनि आवै, लीन्हों हाथ सिंधौरा॥ टेक॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाड़ौ।
सूरौ कहा मरन थैं डरपै, सती न संचैं भांडौ॥
लोक बेद कुल की मरजादा, इहै गलै मैं पासी।
आधा चलि करि पीछा फिरिहै, ह्वै है जग मैं हासी॥
यहु संसार सकल है मैला, रांम कहैं ते सूचा।
कहै कबीर नाव नहीं छाड़ौं, गिरत परत चढ़ि ऊँचा॥१२९॥

---

(१२७) इसके आगे ख० प्रति में यह पद है—
राम न जपहु कवन भ्रम लागे।
मरि जाहहुगे कहा कहा करहु अभागे॥ टेक॥
रांम नांम जपहु कहा करौ वैसे, भेड कसाई के घरि जैसे॥
रांम न जपहु कहा गरबाना, जम के घर आगैं है जाना॥
रांम न जपहु कहा मुसकौ रे, जम के मुदगरि गणि गणि खहु रे॥
कहै कबीर चतुर के राइ, चतुर बिना को नरकहि जाइ॥ १२० ॥

का सिधि साधि करौं कुछ नांहीं,
राम रसांइन मेरी रसनां मांहीं ॥ टेक ॥
नहीं कुछ ग्यांन ध्यांन सिधि जोग, ताथैं उपजै नांनां रोग ॥
का बन मैं बसि भये उदास, जे मन नहीं छाड़ै आसा पास ॥
सब कृत काच हरी हित सार, कहै कबीर तजि जग ब्यौहार॥१३०॥

जौ तैं रसनां रांम न कहिबौ,
तौ उपजत बिनसत भरमत रहिबौ ॥ टेक ॥
जैसी देखि तरवर की छाया, प्रांन गयें कहु का की माया ॥
जीवत कछू न कीया प्रवांनां, मूवा मरम को काकर जांनां ॥
कंधि काल सुख कोई न सोवै, राजा रंक दोऊ मिलि रोवै ॥
हंस सरोवर कँवल सरीरा, रांम रसांइन पीवै कबीरा ॥१३१॥

का नांगें का बांधे चांम, जौ नहीं चींन्हसि आतम-रांम ॥टेक॥
नागें फिरें जोग जे होई, बन का मृग मुकति गया कोई ॥
मूंड मुंडायें जौ सिधि होई, स्वर्ग ही भेड़ न पहुंती कोई ॥
ब्यंद राखि जे खेलै है भाई, तौ खुसरै कौंण परंम गति पाई ॥
पढें गुनें उपजै अहंकारा, अधधर डूबे वार न पारा ॥
कहै कबीर सुनहु रे भाई, रांम नांम बिन किन सिधि पाई ॥१३२॥

हरि बिन भरमि विगूते गंदा ।
जापैं जांऊं आपनपौ छुडावण, ते बीधे बहु फंधा ॥ टेक॥
जोगी कहैं जोग सिधि नीकी, और न दूजी भाई ।
लुंचित मुंडित मोनि जटाधर, ऐ जु कहै सिधि पाई ॥
जहाँ का उपज्या तहाँ बिलांनां, हरि पद बिसरया जबहीं ।
पंडित गुंनीं सूर कवि दाता, ऐ जु कहैं बड़ हंमहीं ॥

वार पार की खबरि न जांनीं, फिरयौ सकल बन ऐसैं।
यहु मन बोहि थके कऊवा ज्यूं, रह्यौ ठग्यौ सौ बैसैं॥
तजि बांवैं दांहिंणैं बिकार, हरि पद दिढ करि गहिये।
कहै कबीर गूंगै गुड़ खाया, बूझै तौ कां कहिये॥ १३३॥

चलौ बिचारी रहौ सँभारी, कहता हूं ज पुकारी।
रांम नांम अंतर गति नांहीं, तौ जनम जुआ ज्यूं हारी॥टेक॥
मूंड़ मुड़ाइ फूलि का बैठे, कांननि पहरि मंजूसा।
बाहरि देह षेह लपटांनीं, भीतरि तै घर मूसा॥
गालिब नगरी गांव बसाया, हांम कांम अहंकारी।
घालि रसरिया जब जंम खैंचै, तब का पति रहै तुम्हारी॥
छांड़ि कपूर गांठि विष बांध्यौ, मूल हूआ न लाहा।
मेरे रांम की अभै पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा॥ १३४॥

कौंन बिचारि करत हौ पूजा,
आतम रांम अवर नहीं दूजा॥ टेक॥
बिन प्रतीतैं पाती तोड़ै, ग्यांन बिनां देवलि सिर फोड़ै॥
लुचरी लपसी आप संवारै, द्वारै ठाढा रांम पुकारै।
पर-आत्म जौ तत बिचारै, कहि कबीर ताकै बलिहारै॥ १३५॥

कहा भयौ तिलक गरैं जपमाला,
मरम न ज़ांनैं मिलन गोपाला॥ टेक॥
दिन प्रति पसु करै हरिहाई,
गरै काठ वाकी बांनि न जाई॥
स्वांग सेत करणीं मनि काली,
कहा भयौ गलि माला घाली॥

बिन ही प्रेम कहा भयौ रोयें,
भीतरि मैल बाहरि कहा धोये ॥
गल गल स्वाद भगति नहीं धीर,
चीकन चंदवा कहै कबीर ॥ १३६ ॥

ते हरि के आवैंहि किहिं कांमां,
जे नहीं चीन्हैं आतमरांमां ॥ टेक ॥
थोरी भगति बहुत अहंकारा,
ऐसे भगता मिलैं अपारा ॥
भाव न चीन्हैं हरि गोपाला,
जांनि क अरहट कै गलि माला ॥
कहै कबीर जिनि गया अभिमांनां,
सो भगता भगवंत समांनां ॥ १३७ ॥

कहा भयौ रचि स्वांग बनायौ,
अंतरिजांमीं निकटि न आयौ ॥ टेक ॥
विषई बिषै दिढावै गावै,
रांम नांम मनि कबहूँ न भावै ॥
पापी परलै जांहि अभागे,
अमृत छाड़ि बिषै रसि लागे ॥
कहै कबीर हरि भगति न साधी,
भग मुषि लागि मूये अपराधी ॥ १३८ ॥

जौ पैं पिय के मनि नहीं भांयें,
तौ का पारोसनि कैं हुलराये ॥ टेक ॥
का चूरा पाइल झमकांयैं,
कहा भयौ बिछुवा ठमकांयैं ॥

का काजल स्यंदूर कै दीयैं,
　　　　सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयैं ॥
अंजन मंजन करै ठगौरी,
　　　　का पचि मरै निगौड़ी बौरी ॥
जौ पैं पतिब्रता ह्वै नारी,
　　　　कैसैं हीं रहौ सो पियहि पियारी ॥
तन मन जोबन सौंपि सरीरा,
　　　　ताहि सुहागनि कहै कबीरा ॥ १३९ ॥

दूभर पनियां भरया न जाई,
　　　　अधिक त्रिषा हरि बिन न बुझाई ॥ टेक ॥
ऊपरि नीर लेज तलि हारी,
　　　　कैसैं नीर भरै पनिहारी ॥
ऊधरयौ कूप घाट भयौ भारी,
　　　　चली निरास पंच पनिहारी ॥
गुर उपदेस भरी ले नीरा,
　　　　हरषि हरषि जल पीवै कबीरा ॥ १४० ॥

कहौ भईया अंबर कासूं लागा,
　　　　कोई जांणैंगा जांननहार सभागा ॥ टेक ॥
अंबरि दीसै केता तारा, कौंन चतुर ऐसा चितरनहारा ॥
जे तुम्ह देखौ सो यहु नांहीं यहु पद अगम अगोचर मांहीं ॥
तीनि हाथ एक अरधाई, ऐसा अंबर चीन्हौं रे भाई ॥
कहै कबीर जे अंबर जांनैं, ताही सूं मेरा मन मांनैं ॥ १४१ ॥

---

(१४०) ख०—जल बिन न बुझाई ।

तन खोजौ नर नां करौ बड़ाई,
जुगति बिना भगति किनि पाई ॥ टेक ॥
एक कहावत मुलां काजी,
रांम बिनां सब फोकटबाजी ॥
नव ग्रिह बांभण भणता रासी,
तिनहूं न काटी जम की पासी ॥
कहै कबीर यहु तन काचा,
सबद निरंजन रांम नांम साचा ॥ १४२ ॥

जाइ परौ हमरौ का करिहै,
आप करै आपै दुख भरिहै ॥ टेक ॥
ऊभड़ जातां बाट बतावै, जौ न चलै तौ बहु दुख पावै ॥
अंधे कूप क दिया बताई, तरकि पड़ै पुनि हरि न पत्याई ॥
इंद्री स्वादि बिषै रसि बहिहै, नरकि पड़ै पुंनि रांम न कहिहै ॥
पंच सखी मिलि मतौ उपायौ, जंम की पासी हंस बंधायौ ॥
कहै कबीर प्रतीति न आवै, पाषंड कपट इहै जिय भावै ॥१४३॥

ऐसे लोगनि सूं का कहिये ।
जे नर भये भगति थैं न्यारे, तिनथैं सदा डराते रहिये ॥टेक॥
आपण देही चरवा पांनीं, ताहि निदैं जिनि गंगा आंनीं ॥
आपण बूडैं और कौं बोड़ैं, अगनि लगाइ मंदिर मैं सोवैं ॥
आपण अंध और कूं कांनां, तिनकौं देखि कबीर डरांनां ॥१४४॥

है हरि जन सूं जगत लरत है,
फुंनिगा कैसैं गरड़ भषत हैं ॥ टेक ॥
अचिरज एक देखहु संसारा,
सुनहां खेदै कुंजर असवारा ॥

ऐसा एक अचंभा देखा,

जंबक करै केहरि सूं लेखा ॥

कहै कबीर रांम भजि भाई,

दास अधम गति कबहूँ न जाई ॥ १४५ ॥

है हरिजन थैं चूक परी,

जे कछु आहि तुम्हारौ हरी ॥ टेक ॥

मेर तेर जब लग मैं कीन्हां,

तब लग त्रास बहुत दुख दीन्हां ॥

सिध साधिक कहैं हम सिधि पाई,

रांम नांम बिन सबै गंवाई ॥

जे बैरागी आस पियासी,

तिनकी माया कदे न नासी ॥

कहै कबीर मैं दास तुम्हारा,

माया खंडन करहु हमारा ॥ १४६ ॥

सब दुनीं संयांनीं मैं बौरा,

हंम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ॥ टेक ॥

मैं नहीं बौरा रांम कियौ बौरा,

सतगुर जारि गयौ भ्रम मोरा ॥

बिद्या न पढूं बाद नहीं जांनूं,

हरि गुंन कथत सुनत बौरांनूं ॥

कांम क्रोध दोऊ भये बिकारा,

आपहि आप जरैं संसारा ॥

मींठो कहा जाहि जो भावै,
दास कबीर रांम गुंन गावै ॥ १४७ ॥

अब मैं रांम सकल सिधि पाई,
आंन कहूँ तौ रांम दुहाई ॥ टेक ॥
इहिं चिति चाषि सबै रस दीठा,
रांम नांम सा और न मीठा ॥
औरै रसि ह्वै है कफ गाता,
हरि-रस अधिक अधिक सुखदाता ॥
दूजा बणिज नहीं कछू बाषर,
रांम नांम दोऊ तत आषर ॥
कहै कबीर जे हरि रस भोगी,
ताकूं मिल्या निरंजन जोगी ॥ १४८ ॥

रे मन जाहि जहां तोहि भावै,
अब न कोई तेरै अंकुस लावै ॥ टेक ॥
जहां जहां जाइ तहां तहां रांमां,
हरि पद चीन्हि कियौ बिश्रामा ॥
तन रंजित तब देखियत दोई,
प्रगट्यौ ग्यांन जहां तहां सोई ॥
लीन निरंतर वपु बिसराया,
कहै कबीर सुख सागर पाया ॥ १४९ ॥

बहुरि हम काहे कूं आवहिगे ।
बिछुरे पंचतत की रचनां, तब हम रांमहिं पांवहिगे ॥ टेक ॥
पृथी का गुण पांणीं सोष्या, पांनी तेज मिलांवहिगे ।

तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगांवहिगे ॥
जैसैं बहुकंचन के भूषन, ये कहि गालि तवांवहिगे ।
ऐसैं हम लोक बेद के बिछुरें, सुंनिहि मांहिं समांवहिगे ॥
जैसैं जलहि तरंग तरंगनीं, ऐसैं हम दिखलांवहिंगे ।
कहै कबीर स्वांमीं सुख सागर, हंसहि हंस मिलांवहिगे ॥१५०॥

कबीरा संत नदी गयौ बहि रे ।
ठाढ़ी माइ कराड़ै टेरै, है कोई ल्यावै गहि रे ॥ टेक ॥
बादल बांनीं रांम घन उनयां, बरिषै अंमृत धारा ।
सखी नीर गंग भरि आई, पीवै प्रांन हमारा ॥
जहां बहि लागें सनक सनंदन, रुद्र ध्यांन धरि बैठे ।
सुयं प्रकास आनंद बमेक मैं, घन कबीर ह्वै पैठे ॥१५१॥

अवधू कांमधेन गहि बांधी रे ।
भांडा भंजन करै सबहिन का, कछू न सूझै आंधी रे ॥टेक॥
जौ ब्यावै तौ दूध न देई, ग्याभण अंमृत सरवै ।
कौली घाल्यां बीडरि चालै, ज्यूं घेरौं त्यूं दरवै ॥
तिहिं धेन थैं इंछ्या पूगी, पाकड़ि खूंटै बांधी रे ।
ग्वाड़ा मांहैं आनंद उपनौं, खूंटै दोऊ बांधी रे ॥
साई माइ सास पुनि साई, साई याकी नारी ।
कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेहु बिचारी ॥ १५२ ॥

[राग रामकली]

जगत गुर अनहद कींगरी बाजै, तहां दीरघ नाद ल्यौ लागै ।टेक।
त्री अस्थांन अंतर मृगछाला, गगन मंडल सींगी बाजै ।

(१५३) ख०—साई सुत की नारी ।

तहुआं एक दुकांन रच्यो है, निराकार ब्रत साजै ॥
गगन ह्रीं भाठी सींगी करि चूंगी, कनक कलस एक पावा ।
तहुवां चवैं अंमृत रस नीझर, रस ही मैं रस चुवावा ॥
अब तौ एक अनूपम बात भई, पवन पियाला साजा ।
तीनि भवन मैं एकै जोगी, कहौ कहां बसै राजा ॥
बिनर जांनि परणऊं परसोतम, कहि कबीर रंगि राता ।
यहु दुनियां कांइ भ्रमि भुलांनीं, मैं रांम रसांइन माता ॥१५३॥

ऐसा ग्यांन बिचारि लै, लै लाइ लै ध्यांनां ।
सुंनि मंडल मैं घर किया, जैसैं रहै सिचांनां ॥ टेक ॥
उलटि पवन कहां राखिये, कोई मरम बिचारै ।
सांधै तीर पताल कूं, फिरि गगनहि मारै ॥
कंसा नाद बजाव ले, धुंनि निमसि ले कंसा ।
कंसा फूटा पंडिता, धुनि कहां निवासा ॥
प्यंड परें जीव कहां रहै, कोई मरम लखावै ।
जीवत जिस घरि जाइये, ऊंधै मुषि नहीं आवै ॥
सतगुर मिलै त पाईये, ऐसी अकथ कहांणीं ।
कहै कबीर संसा गया, मिले सारंग पांणीं ॥ १५४ ॥

है कोई संत सहज सुख उपजै, जाकौं जप तप देउ दलाली ।
एक बूंद भरि देइ रांम रस, ज्यूं भरि देइ कलाली ॥ टेक ॥
काया कलाली लांहनि करिहूं, गुरू सबद गुड़ कीन्हां ।
कांम क्रोध मोह मद मंछर, काटि काटि कस दीन्हां ॥
भवन चतुरदस भाठी पुरई, ब्रह्म अगनि परजारी ।
मूंदे मदन सहज धुनि उपजी, सुखमन पीवनहारी ॥

नीझर झरै अमीं रस निकसै, तिहि मदिरावल छाका ।
कहै कबीर यहु बास बिकट अति, ग्यांन गुरू ले बांका ॥१५५॥

अकथ कहांणीं प्रेम की, कछू कही न जाई ।
गूंगे केरी सरकरा, बैठे मुसकाई ॥ टेक ॥
भोमि बिनां अरू बीज बिन, तरवर एक भाई ।
अनंत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई ॥
मन थिर बैसि बिचारिया, रांमहि ल्यौ लाई ।
झूठी अनभै बिस्तरी, सब थोथी बाई ॥
कहै कबीर सकति कछु नांहीं, गुर भया सहाई ।
आंवण जांणी मिटि गई, मन मनहि समाई ॥ १५६ ॥

संतौ सो अनभै पद गहिये ।
कला अतीत आदि निधि निरमल,
ताकूं सदा बिचारत रहिये ॥ टेक ॥
सो काजी जाकौं काल न व्यापै, सो पंडित पद बूझै ।
सो ब्रह्मा जो ब्रह्म बिचारै, सो जोगी जग सूझै ॥
उदै न अस्त सूर नहीं ससिहर, ताकौ भाव भजन करि लीजै ।
काया थैं कछू दूरि बिचारै, तास गुरू मन धीजै ॥
जारयौ जरै न काट्यौ सूकै, उतपति प्रलै न आवै ।
निराकार अषंड मंडल मैं, पांचौं तत समावै ॥
लोचन अछित सबै अंधियारा, बिन लोचन जग सूझै ।
पड़दा खोलि मिलै हरि ताकूं, जो या अरथहिं बूझै ॥
आदि अनंत उभै पख निरमल, द्रिष्टि न देख्या जाई ।
ज्वाला उठी अकास प्रजल्यौ, सीतल अधिक समाई ॥
एकनि गंध बासनां प्याद, जग थैं रहै अकेला ।

प्रांन पुरिस काया थैं बिछुरै, राखि लेहु गुर चेला ॥
भागा भर्म भया मन असथिर, निद्रा नेह नसांनां ।
घट की जोति जगत प्रकास्या, माया सोक बुझांनां ॥
बंकनालि जे संमि करि राखै, तौ आवागमन न होई ।
कहै कबीर धुनि लहरि प्रगटी, सहजि मिलैगा सोई ॥ १५७॥

जाइ पूछौ गोबिंद पढ़िया पंडिता, तेरा कौंन गुरू कौंन चेला।
अपणें रूप कौं आपहि जांणैं, आपैं रहै अकेला ॥ टेक॥
बांझ का पूत बाप बिना जाया, बिन पांऊं तरवरि चढ़िया।
अस बिन पाषर गज बिन गुड़िया, बिन षंडै संग्रांम जुड़िया॥
बीज बिन अंकूर पेड़ बिन तरवर, बिन साषा तरवर फलिया।
रूप बिन नारी पुहप बिन परमल, बिन नींरै सरवर भरिया ॥
देव बिन देहुरा पत्र बिन पूजा, बिन पांषां भवर बिलंबिया।
सुरा होइ सु परम पद पावै, कीट पतंग होइ सब जरिया ॥
दीपक बिन जोति जोति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद बागा।
चेतनां होइ सु चेति लीज्यौ, कबीर हरि के अंगि लागा ॥ १५८॥

पंडित होइ सु पदहि बिचारै, मूरिष नांहिन बूझै ।
बिन हाथनि पांइन बिन कांननि, बिन लोचन जग सूझै ॥टेक॥
बिन मुख खाइ चरन बिन चालै, बिन जिभ्या गुण गावै ।
आछै रहै ठौर नहीं छाड़ै, दह दिसिहीं फिरि आवै ॥
बिनहीं तालां ताल बजावै, बिन मंदल पट ताला ।
बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहां निरतत है गोपाला ॥
बिनां चोलनैं बिनां कंचुकी, बिनहीं संग संग होई ।
दास कबीर औसर भल देख्या, जांनैंगा जन कोई ॥ १५९॥

है कोई जगत गुर ग्यांनीं, उलटि बेद बूझै ।
पांणीं में अगनि जरै, अंधरे कौं सूझै ॥ टेक ॥
एकनि दादुरि खाये पंच भवंगा, गाइ नाहर खायौ काटि काटि अंगा ॥
बकरी बिधार खायौ, हरनि खायौ चीता ।
कागिल गर फांदियां, बटेरै बाज जीता ॥
मूसै मँजार खायै, स्यालि खायौ स्वांनां ।
आदि कौं आदेस करत, कहै कबीर ग्यांनां ॥ १६० ॥

ऐसा अद्भुत मेरे गुरि कथ्या, मैं रह्या उभेषै ।
मूसा हसती सौं लड़ै, कोई बिरला पेषै ॥ टेक ॥
मूसा पैठा बांबि मैं, लारै सापणि धाई ।
उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाई ॥
चींटी परबत ऊषण्यां, ले राख्यौ चौड़ै ।
मुर्गा मिनकी सूं लड़ै, झल पांणीं दौड़ै ॥
सुरहीं चूंपै बछतलि, बछा दूध उतारै ।
ऐसा नवल गुंणीं भया, सारदूलहि मारै ॥
भील लुक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै ।
कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि बिचारै ॥ १६१ ॥

अवधू जागत नींद न कीजै ।
काल न खाइ कलप नहीं ब्यापै, देही जुरा न छीजै ॥ टेक ॥
उलटी गंग संमुद्रहि सोखै, ससिहर सूर गरासै ।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मैं ब्यंब प्रकासै ॥
डाल गह्यां थैं मूल न सूझै, मूल गह्यां फल पावा ।
बंबई उलटि शरप कौं लागी, धरणि महा रस खावा ॥

बैठि गुफा मैं सब जग देख्या, बाहरि कछू न सूझै।
उलटै धनकि पारधी मार्यो, यहु अचिरज कोइ बूझै॥
औंधा घड़ा न जल मैं डूबै, सूधा सूभर भरिया।
जाकौं यहु जग घिण करि चालै, ता प्रसादि निस्तरिया॥
अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जांणै सब कोई।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई॥
गांवणहारा कदे न गावै, अणबोल्या नित गावै।
नटवर पेषि पेषनां पेषै, अनहद बेन बजावै॥
कहणीं रहणीं निज तत जांणै, यहु सब अकथ कहाणीं।
धरती उलटि अकासहि ग्रासै, यहु पुरिसां की बांणीं॥
बाझ पियालै अंमृत सोख्या, नदी नीर भरि राख्या।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या॥ १६२॥

रांम गुन बेलड़ी रे, अवधू गोरषनाथि जांणीं।
नाति सरूप न छाया जाकै, बिरध करै बिन पांणीं॥ टेक॥
बेलड़िया द्वै अणीं पहूंती, गगन पहूंती सैली।
सहज बेलि जब फूलण लागी, डाली कूपल मेल्ही॥
मन कुंजर जाइ बाड़ी बिलंब्या, सतगुर बाही बेली।
पंच सखी मिलि पवन पयंप्या, बाड़ी पांणीं मेल्ही॥
काटत बेली कूपले मेल्हीं, सींचताड़ीं कुमिलांणीं।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, सहज निरंतर जाणीं॥१६३॥

रांम राइ अबिगत बिगति न जानैं,
कहि किम तोहि रूप बषानैं॥ टेक॥
प्रथमे गगन कि पुहमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन कि पांणीं।
प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौंन बिनांणीं॥

(१६३) ख०—जाति सिमूल न छाया जाकै।

प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत कि रेतं ।
प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज कि खेतं ॥
प्रथमे दिवस कि रैंणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुन्यं ।
कहै कबीर जहां बसहु निरंजन, तहां कुछ आहि कि सुन्यं ॥१६४॥

अवधू सो जोगी गुर मेरा, जो या पद का करै नबेरा ॥टेक॥
तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा, बिन फूलां फल लागा ।
साखा पत्र कछू नहीं वाकै, अष्ट गगन मुख बागा ॥
पैर बिन निरति करां बिन बाजै, जिभ्या हींणां गावै ।
गावणहारे कै रूप न रेषा, सतगुर होइ लखावै ॥
पंषी का षोज मींन का मारग, कहै कबीर बिचारी ।
अपरंपार पार परसोतम, वा मूरति की बलिहारी ॥ १६५ ॥

अब मैं जांणिबौ रे केवलं रांइ की कहांणीं ।
मंझा जोति रांम प्रकासै, गुर गमि बांणीं ॥ टेक ॥
तरवर एक अनंत मूरति, सुरता लेहु पिछांणीं ।
साखा पेड़ फूल फल नांहीं, ताकी अंमृत बांणीं ॥
पुहप बास भवरा एक राता, बारा ले उर धरिया ।
सोलह मंझैं पवन झकोरै, आकासे फल फलिया ॥
सहज समाधि बिरष यहु सींच्या, धरती जल हर सोष्या ।
कहै कबीर तास मैं चेला, जिनि यहु तरवर पेष्या ॥ १६६ ॥

राजा रांम कवन रंगैं, जैसैं परिमल पुहप संगैं ॥ टेक ॥
पंचतत ले कीन्ह बंधांन, चौरासी लष जीव समांन ॥
बेगर बेगर राखि ले भाव, तामैं कीन्ह आपकौ ठांव ॥
जैसैं पावक भंजन का बसेष, घट उनमांन कीया प्रवेस ॥

कह्या चाहूं कछू कह्या न जाइ, जल जीव ह्वै जल नहीं बिगराइ ॥
सकल आतमां बरतै जे, छल बल कौं सब चीन्हि बसे ॥
चीनियत चीनियत ता चीन्हिलै से, तिहि चीन्हिअत धूं का करवे ॥
आपा पर सब एक समांन, तब हम पाया पद निरबांण ॥
कहै कबीर मन्य भया संतोष, मिले भगवंत गया दुख दोष ॥१६७॥

अंतर गतिअनि अनि बांणीं ॥
गगन गुपत मधुकर मधु पीवत, सुगति सेस सिव जांणीं ॥टेक॥
त्रिगुण त्रिविधि तलपत तिमरातन, तंती तंत मिलांनीं ।
भागे भरम भोइन भये भारी, बिधि बिरंचि सुषि जांणीं ॥
बरन पवन अबरन बिधि पावक, अनल अमर मरै पांणीं ।
रवि ससि सुभग रहे भरि सब घटि, सबद सुंनि थिति मांहीं ॥
संकट सकति सकल सुख खोये, उदिध मथित सब हारे ।
कहै कबीर अगम पुर पटण, प्रगटि पुरातन जारे ॥१६८॥

लाधा है कछू लाधा है, ताकी पारिष को न लहै ।
अबरन एक अकल अबिनासी, घटि घटि आप रहै ॥ टेक॥
तोल न मोल माप कछु नांहीं, गिणंती ग्यांन न होई ।
नां सो भारी नां सो हलवा, ताकी पारिष लषै न कोई ॥
जामैं हम सोई हम हीं मैं, नीर मिलें जल एक हूवा ।
यौं जांणैं तौ कोई न मरिहै, बिन जांणैं थैं बहुत मूवा ॥
दास कबीर प्रेम रस पाया, पीवणहार न पाऊं ।
बिधनां बचन पिछांणत नाहीं, कहु क्या काढ़ि दिखाऊं ॥१६९॥

हरि हिरदै रे अनत कत चाहौ,
भूलै भरम दुनीं कत बाहौ ॥ टेक ॥
जग परबोधि होत नर खाली, करते उदर उपाया ।
आतम रांम न चीन्हैं संतौ, क्यूं रमि लै रांम राया ॥

लागैं प्यास नीर सो पीवै, बिन लागैं नहीं पीवै ।
खोजैं तत मिलै अविनासी, बिन खोजैं नहीं जीवै ॥
कहै कबीर कठिन यह करणीं, जैसी षंडे धारा ।
उलटीं चाल मिलै परब्रह्म कौं, सो सतगुरू हमारा ॥ १७० ॥

रे मन बैठि कितै जिनि जासी,
हिरदै सरोवर है अविनासी ॥ टेक ॥
काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी ।
काया मधे कवलापति, काया मधै बैकुंठबासी ॥
उलटि पवन षटचक्र निवासी, तीरथराज गंग तट बासी ॥
गगन मंडल रबि ससि दोइ तारा, उलटी कूंची लागि किवारा ।
कहै कबीर भई उजियारा, पंच मारि एक रह्यौ निनारा ॥१७१॥

रांम बिन जन्म मरन भयौ भारी ।
साधिक सिध सूर अरु सुरपति, भ्रमत भ्रमत गये हारी ॥टेक॥
ब्यंद भाव भ्रिग तत जंत्रक, सकल सुख सुखकारी ।
श्रवत सुनि रवि ससि सिव सिव, पलक पुरिष पल नारी ॥
अंतर गगन होत अंतर धुंनि, बिन सासनि है सोई ।
घोरत सबद समंगल सब घटि, ब्यंदत ब्यंदै कोई ॥
पांणीं पवन अवनि नभ पावक, तिहि संगि सदा बसेरा ।
कहै कबीर मन मन करि बेध्या, बहुरि न कीया फेरा ॥१७२॥

नर देही बहुरि न पाईये, ताथैं हरषि हरषि गुंण गाईये ॥टेक॥
जे मन नहीं तजै बिकारा, तौ क्यूं तिरिये भौ पारा ॥
जब मन छाड़ै कुटिलाई, तब आइ मिलै रांम राई ॥
ज्यूं जांमण त्यूं मरणां, पछितावा कछू न करणां ॥

जांणि मरै जे कोई, तौ बहुरि न मरणां होई ॥
गुर वचनां मंझि समावै, तब रांम नांम ल्यौ लावै ॥
जब रांम नांम ल्यौ लागा, तब भ्रम गया भौ भागा ॥
ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा ॥
जब अनहद बाजा बाजै, तब सांईं संगि बिराजै ॥
होह संत जनन के संगी, मन राचि रह्यौ हरि रंगी ॥
धरौ चरन कवल बिसवासा, ज्यूं होइ निरभै पद बासा ॥
यहु काचा खेल न होई, जन षरतर खेलै कोई ॥
जब षरतर खेल मचावा, तब गगन मंडल मठ छावा ॥
चित चंचल निहचल कीजै, तब रांम रसांइन पीजै ॥
जब रांम रसांइन पीया, तब काल मिट्या जन जीया ॥
यूं दास कबीरा गावै, ताथैं मन कौं मन संमझावै ॥
मन हीं मन समझाया, तब सतगुर मिलि सचुपाया ॥१७३॥

अवधू अगनि जरै कै काठ ।
पूछौं पंडित जोग संन्यासी, सतगुर चीन्हैं बाट ॥ टेक ॥
अगनि पवन मैं पवन कवन मैं, सबद गगन के पवनां ।
निराकार प्रभु आदि निरंजन, कत रवंते भवनां ॥
उतपति जोति कवन अंधियारा, घन बादल का बरिषा ।
प्रगट्यो बीज धरनि अति अधिकै, पारब्रह्म नहीं देखा ॥
मरनां मरै न मरि सकै, मरनां दूरि न नेरा ।
द्वादस द्वादस सनमुख देखैं, आपैं आप अकेला ॥
जे बांध्या ते छुछंद मुकता, बांधनहारा बांध्या ।
बांध्या मुकता मुकता बांध्या, तिहि पारब्रह्म हरि लाधा ॥
जे जाता ते कौंण पठाता, रहता ते किनि राख्या ।
अंमृत समांनां, बिष मैं जांनां, बिष मैं अमृत चाख्या ॥

कहै कबीर बिचार बिचारी, तिल मैं मेर समांनां।
अनेक जनम का गुर गुर करता, सतगुर तब भेटांनां ॥ १७४ ॥

अवधू ऐसा ग्यान बिचारं।
भेरै चढे सु अधधर डूबे, निराधार भये पारं ॥ टेक ॥
ऊघट चले सु नगरि पहूंते, बाट चले ते लूटे।
एक जेवड़ी सब लपटांनें, के बांधे के छूटे ॥
मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूका।
सरि मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूषा ॥
बिन नैंनन के सब जग देखै, लोचन अछते अंधा।
कहै कबीर कछु समझि परी है, यहु जग देख्या धंधा ॥१७५॥

जग धंधा रे जग धंधा, सब लोगन जांणैं अंधा।
लोभ मोह जेवड़ी लपटानीं, बिनही गांठि गह्यो फंधा ॥टेक॥
ऊंचै टीबै मछ बसत है, ससा बसै जल मांहीं।
परबत ऊपरि लोक डूबि मूवा, नीर मूवा धूं कांहीं ॥
जलै नीर तिण षड़ सब उबरै, बैसंदर ले सींचै।
ऊपरि मूल फूल तिन भीतरि, जिनि जान्यां तिनि नीकै ॥
कहै कबीर जांनहीं जांनैं, अन-जांनत दुख भारी।
हारी बाट बटाऊ जीत्या, जांनत की बलिहारी ॥ १७६ ॥

अवधू ब्रह्म मतैं घरि जाइ।
काल्हि जु तेरी बंसरिया छीनीं, कहा चरावै गाइ ॥ टेक ॥
तालि चुगैं बन तीतर लउवा, परबति चरै सौरा मछा।
बन की हिरनीं कूवै बियांनीं, ससा फिरै अकासा ॥
ऊंट मारि मैं चारै लावा, हस्ती तरंडबा देई।

बंबूर की डरियां बनसी लैहूँ, सीयरा भूंकि भूंकि षाई ॥
आंब कै बौरै चरहल करहल, निबिया छोलि छोलि खाई ।
मोरै आग निदाष दयी बल, कहै कबीर समझाई ॥ १७७ ॥

कहा करौं कैसैं तिरौं, भौ जल अति भारी ।
तुम्ह सरणा-गति केसवा, राखि राखि मुरारी ॥ टेक ॥
घर तजि बन खंडि जाइये, खनि खइये कंदा ।
बिषै बिकार न छूटई, ऐसा मन गंदा ॥
बिष बिषिया की बासनां, तजौं तजी नहीं जाई ।
अनेक जतंन करि सुरझिहौं, फुनि फुनि उरझाई ॥
जीव अछित जोबन गया, कछू कीया न नीका ।
यहु हीरा निरमोलिका, कौडी पर बीका ॥
कहै कबीर सुनि केसवा, तूं सकल बियापी ।
तुम्ह समांनि दाता नहीं, हंम से नहीं पापी ॥ १७८ ॥

बाबा करहु कृपा जन मारगि लावो, ज्यूं भव बंधन षूटै।
जुरा मरन दुख फेरि करंन सुख, जीव जनम थैं छूटै ॥टेक॥
सतगुर चरन लागि यौं बिनऊं, जीवनि कहां थैं पाई।
जा कारनि हम उपजैं बिनसैं, क्यूं न कहौ समझाई ॥
आसा-पास षंड नहीं पाड़ै, यौं मन सुंनि न लूटै ।
आपा पर आनंद न बूझै, बिन अनभै क्यूं छूटै ॥
कह्यां न उपजै उपज्यां नहीं जांणैं, भाव अभाव बिहूनां ।
उदै अस्त जहां मति बुधि नांहीं, सहजि रांम ल्यौ लीनां ॥
ज्यूं बिंबहि प्रतिबिंब समांनां, उदिक कुंभ बिगरांनां ।
कहै कबीर जांनि भ्रम भागा, जीवहि जीव समांनां ॥ १७९ ॥

संतौ धोखा कासूं कहिये ।
गुंण मैं निरगुंण निरगुंण मैं गुंण है,
बाट छाड़ि क्यूं बहिये ॥ टेक ॥
अजरा अमर कथै सब कोई, अलख न कथणां जाई ।
नाति सरूप बरण नहीं जाकै, घटि घटि रह्यौ समाई ॥
प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई ।
प्यंड ब्रह्मंड छाड़ि जे कथिये, कहै कबीर हरि सोई ॥ १८० ॥

पषा पषी कै पेषणैं, सब जगत भुलांनां ॥
निरपष होइ हरि भजै, सो साध सयांनां ॥ टेक ॥
ज्यूं षर सूं षर बंधिया, यूं बंधे सब लोई ।
जाकै आत्म द्रिष्टि है, साचा जन सोई ॥
एक एक जिनि जांणियां, तिनहीं सच पाया ।
प्रेम प्रीति ल्यौ लींन मन, ते बहुरि न आया ॥
पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखै ।
कहै कबीर कछू समझि न परई, या कछू बात अलेखै ॥१८१॥

अजहूं न संक्या गई तुम्हारी,
नांहि निसंक मिले बनवारी ॥ टेक ॥
बहुत गरब गरबे संन्यासी, ब्रह्मचरित छूटी नहीं पासी ॥
सुद्र मलेछ बसैं मन मांहीं, आतमरांम सु चीन्ह्यां नाहीं ॥
संक्या डांइणि बसै सरीरा, ता कारणि रांम रमै कबीरा ॥१८२॥

सब भूले हो पाषंडि रहैं,
तेरा बिरला जन कोई राम कहै ॥ टेक ॥
होइ अरोगि बूंटी घसि लावै, गुर बिन जैसैं भ्रमत फिरैं ।

है हाजिर परतीति न आवै, सो कैसैं परताप धरै ॥
ज्यूं सुख त्यूं दुख द्रिढ़ मन राखै, एकादसी इकतार करै।
द्वादसी भ्रमैं लष चौरासी, गर्भ बास आवै सदा मरै ॥
मैं तैं तजै तजै अपमारग, चारि बरन उपरांति चढै ।
ते नहीं डूबै पार तिरि लंघै, निरगुण अगुण संग करै ॥
होइ मगन रांम रँगि राचै, आवागवन मिटै धापै ।
तिनह उछाह सोक नहीं व्यापै, कहै कबीर करता आपै ॥१८३॥

तेरा जन एक आध है कोई ।
काम क्रोध अरु लोभ बिवर्जित, हरिपद चीन्हैं सोई ॥टेक॥
राजस तांमस सातिग तीन्यूं, यें सब तेरी माया ।
चौथै पद कौं जे जन चीन्हैं, तिनहि परम पद पाया ॥
असतुति निंद्या आसा छांडै, तजै मांन अभिमांनां ।
लोहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवानां ॥
च्यंतै तौ माधौ च्यंतामणि, हरिपद रमैं उदासा ।
त्रिस्नां अरु अभिमांन रहित है, कहै कबीर सो दासा ॥ १८४॥

हरि नांमैं दिन जाइ रे जाकौ,
सोई दिन लेखै लाइ रांम ताकौ ॥ टेक ॥
हरि नांम मैं जन जागै, ताकै गोब्यंद साथी आगै ॥
दीपक एक अभंगा, तामैं सुर नर पड़ैं पतंगा ॥
ऊंच नींच सम सरिया, ताथैं जन कबीर निसतरिया ॥१८५॥

जब थैं आतम-तत बिचारा ।
तब निरबैर भया सबहिन थैं, कांम क्रोध गहि डारा ॥टेक॥
ब्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी ।

(१८४) ख०—जे जन जानैं । लोहा कंचन सम करि जानैं ।

रांणां राव कवन सूं कहिये, कवन बैद को रोगी ॥
इनमैं आप आप सबहिन मैं, आप आपसूं खेलै ।
नांनां भांति घड़े सब भांडे, रूप धरे धरि मेलै ॥
सोचि विचारि सबै जग देख्या, निरगुंण कोई न बतावै ।
कहै कबीर गुंणीं अरु पंडित, मिलि लीला जस गावै ॥ १८६ ॥

तू माया रघुनाथ की, खेलण चढ़ी अहेड़ै ।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छोड्या नेड़ै ॥टेक॥
मुनियर पीर डिगंबर मारे, जतन करंता जोगी ।
जंगल महि के जंगम मारे, तूंर फिरै बलिवंती ॥
बेद पढंतां बांम्हण मारा, सेवा करतां स्वांमीं ।
अरथ करतां मिसर पछाड्या, तूंर फिरै मैं मंती ॥
साषित कै तूं हरता करता, हरि भगतन कै चेरी ।
दास कबीर रांम कै सरनैं, ज्यूं लागी त्यूं तोरी ॥ १८७ ॥

जग सूं प्रीति न कीजिये, संमझि मन मेरा ।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा ॥ टेक ॥
एक कनक अरु कांमनीं, जग मैं दोइ फंदा ।
इनपै जौ न बंधावई, ताका मैं बंदा ॥
देह धरें इन मांहि बास, कहु कैसैं छूटै ।
सीव भये ते ऊबरे, जीवत ते लूटे ॥
एक एक सूं मिलि रह्या, तिनहीं सचुपाया ।
प्रेम मगन लै लीन मन, सो बहुरि न आया ॥
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया ।
संसा ता दिन का गया, सतगुर समझाया ॥ १८८ ॥

(१८७) ख० — तू माया जगनाथ की ।

रांम मोहि सतगुर मिले अनेक कलानिधि, परम तत सुखदाई।
कांम अगनि तन जरत रही है,
हरि रसि छिरकि बुझाई ॥ टेक ॥
दरस परस तैं दुरमति नासी, दीन रटनि ल्यौ आई।
पाषंड भरंम कपाट खोलि कैं, अनभै कथा सुनाई ॥
यहु संसार गंभीर अधिक जल, को गहि लावै तीरा।
नाव जिहाज खेवइया साधू, उतरे दास कबीरा ॥ १८६ ॥

दिन दहूं चहूं कै कारणैं, जैसैं सैबल फूले।
झूठी सूं प्रीति लगाइ करि, साचे कूं भूले ॥ टेक ॥
जो रस गा सो परहरया, बिड़राता प्यारे।
आसति कहूं न देखिहूं, बिन नांव तुम्हारे ॥
सांची सगाई रांम की, सुनि आतम मेरे।
नरकि पडें नर बापुडे, गाहक जम तेरे ॥
हंस उड़या चित चालिया, सगपन कछू नांहीं।
माटी सूं माटी मेलि करि, पीछैं अनखांहीं ॥
कहै कबीर जग अंधला, कोई जन सारा।
जिनि हरि मरम न जांणिया, तिनि किया पसारा ॥ १६० ॥

माधौ मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति हेत नहीं साधो ॥टेक॥
कारनि कवन आइ जग जनम्यां, जनमि कवन संचुपाया।
भौ जल तिरण चरण च्यंतामंणि, ता चित घड़ी न लाया ॥
पर निंद्या पर धन पर दारा, पर अपवादैं सूरा।
तायैं आवागवन होइ फुनि फुनि, ता पर संग न चूरा ॥
कांम क्रोध माया मद मंछर, ए संतति हम मांहीं।
दया धरम ग्यांन गुर सेवा, ए प्रभु सुपिनैं नांहीं ॥

तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत-बछल भौ-हारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करै हमारी ॥ १६१ ॥

रांम राइ कासनि करौं पुकारा,
ऐसे तुम्ह साहिब जाननिहारा ॥ टेक ॥
इंद्री सबल निबल मैं माधौ, बहुत करैं बरियाई।
लै धरि जांहिं तहां दुख पइये, बुधि बल कछू न बसाई ॥
मैं बपरौ का अलप मूंढ मति, कहा भयौ जे लूटे।
मुनि जन सती सिध अरु साधिक, तेऊ न आयैं छूटे ॥
जोगी जती तपी संन्यासी, अह निसि खोजैं काया।
मैं मेरी करि बहुत बिगूते, बिषै बाघ जग खाया ॥
ऐकत छांडि जांहिं घर घरनीं, तिन भी बहुत उपाया।
कहै कबीर कछु समझि न परई, त्रिषम तुम्हारी माया ॥१६२॥

माधौ चले बुनांवन माहा, जग जीतें जाइ जुलाहा ॥टेक॥
नव गज दस गज गज उगनींसा, पुरिया एक तनाई।
सात सूत दे गंड बहतरि, पाट लगी अधिकाई ॥
तुलह न तोली गजह न मापी, पहजन सेर अढाई।
अढाई मैं जे पाव घटै तौ, करकस करै बजहाई ॥
दिन की बेठि खसम सूं कीजै, अरज लगीं तहां ही।
भागी पुरिया घर ही छाड़ी, चले जुलाह रिसाई ॥
छोछी नलीं कांमि नहीं आवै, लपटि रही उरझाई।
छांडि पसारा रांम कहि बौरे, कहै कबीर समझाई ॥ १६३ ॥

बाजै जंत्र बजावै गुंनीं, राम नांम बिन भूली दुनी ॥ टेक ॥
रजगुन सतगुन तमगुन तीन, पंच तत ले साज्या बींन ॥

---

(१६१) ख०—सो पति करहु हमारी।

तीनि लोक पूरा पेखनां, नाच नचावै एकै जनां ॥
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभवन नाथ रह्या भर पूरि ॥१९४॥

जंत्री जंत्र अनूपम बाजै, ताका सबद गगन मैं गाजै ॥टेक॥
सुर की नालि सुरति का तूंबा, सतगुर साज बनाया।
सुर नर गण गंध्रप ब्रह्मादिक, गुर बिन तिनहूं न पाया ॥
जिभ्या तांति नासिका करहीं, माया का मैंण लगाया।
गमां बतीस मोरणां पांचौं, नीका साज बनाया ॥
जंत्री जंत्र तजै नहीं बाजै, तब बाजै जब बावै।
कहै कबीर सोई जन साचा, जंत्री सूं प्रीति लगावै ॥ १९५ ॥

अवधू नादैं ब्यंद गगन गाजै, सबद अनाहद बोलै।
अंतरि गति नहीं देखै नेड़ा, ढूंढत बन बन डोलै ॥ टेक ॥
सालिगरांम तजौं सिव पूजौं, सिर ब्रह्मा का काटौं।
सायर फोडि नीर मुकलांऊं, कुंवा सिला दे पाटौं ॥
चंद सूर दोइ तूंबा करिहूँ, चित चेतनि की डांडी।
सुषमन तंती बाजण लागी, इहि बिधि त्रिष्णां षांडी ॥
परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।
कालहि षंडूं मीच बिहंडूं, बहुरि न करिहूँ फेरा ॥
जपौ न जाप हतौं नहीं गूगल, पुस्तक लै न पढांऊं।
कहै कबीर परंम पद पाया, नहीं आंऊं नहीं जांऊं ॥१९६॥

बाबा पेड़ छाडि सब डाली लागे, मूंढ़े जंत्र अभागे।
सोइ सोइ सब रैंणि बिहांणीं, भोर भयौ तब जागे ॥ टेक ॥
देवलि जांऊं तौ देवी देखौं, तीरथि जांऊं त पांणीं।
ओछी बुधि अगोचर बांणीं, नहीं परंम गति जांणीं ॥

साध पुकारैं समझत नांहीं, आंन जन्म के सूते।
बांधे ज्यूं अरहट की टीडरि, आवत जात बिगूते ॥
गुर बिन इहि जगि कौंन भरोसा, काकै संगि ह्वै रहिये।
गनिका कै घरि बेटा जाया, पिता नांव किस कहिये ॥
कहै कबीर यहु चित्र बिरोध्या, बूझौ अंमृत बांणी।
खोजत खोजत सतगुर पाया, रहि गई आंवण जांणीं ॥ १९७ ॥

भूली मालनी है गोव्यंद जागतौ जगदेव,
तूं करै किसकी सेव ॥ टेक ॥
भूली मालनि पाती तोड़ैं, पाती पाती जीव।
जा मूरति कौं पाती तोड़ै, सो मूरति नर जीव ॥
टांचणहारै टांचिया, दे छाती ऊपरि पाव।
जे तूं मूरति सकल है, तौ घड़णहारे कौं खाव ॥
लाडू लावण लापसी, पूजा चढ़ै अपार।
पूजि पुजारा ले गया, दे मूरति कै मुहि छार ॥
पाती ब्रह्मा पुहपे विष्णु, फूल फल महादेव।
तीनि देवौं एक मूरति, करै किसकी सेव ॥
एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाकै रांम अधारा ॥ १९८ ॥

सेइ मन समझि संमर्थ सरणांगता
जाकी आदि अंति मधि कोइ न पावै।
कोटि कारिज सरैं देह गुंण सब जरैं,
नैंक जौ नांव पतिव्रत आवै ॥ टेक ॥
आकार की ओट आकार नहीं ऊबरै,
सिव बिरंचि अरु विष्णु तांईं।

जास का सेवक तास कौं पाइहै,
इष्ट कौं छांडि आगैं न जांहीं ॥
गुंणमई मूरति सेइ सब भेष मिलि,
निरगुण निज रूप बिश्रांम नांहीं ।
अनेक जुग बंदिगी बिबिध प्रकार की,
अंति गुंण का गुंण हीं समांहीं ॥
पांच तत तीनि गुण जुगति करि सांनियां,
अष्ट बिन होत नहीं क्रंम काया ।
पाप पुन बीज अंकूर जांमैं मरै,
उपजि बिनसै जेती सर्व माया ॥
क्रितम करता कहैं, परम पद क्यूं लहैं,
भूलि भ्रम मैं पड़्या लोक सारा ।
कहै कबीर रांम रमिता भजैं,
कोई एक जन गए उतरि पारा ॥ १९९ ॥

रांम राइ तेरी गति जांणीं न जाई ।
जो जस करिहै सो तस पइहै, राजा रांम नियाई ॥ टेक ॥
जैसी कहै करै जो तैसी, तौ तिरत न लागै बारा ।
कहता कहि गया सुनता सुंणि गया, करणीं कठिन अपारा ॥
सुरही तिण चरि अंमृत सरवैं, लेर भवंगहि पाई ।
अनेक जतन करि निग्रह कीजै, बिषै बिकार न जाई ।
संत करै असंत की संगति, तासूं कहा बसाई ।
कहै कबीर ताके भ्रम छूटै, जे रहे रांम ल्यौ लाई ॥ २०० ॥

कथणीं बदणीं सब जंजाल,
भाव भगति अरु रांम निराल ॥ टेक ॥
कथै बदै सुणैं सब कोई, कथें न होई कीयें होइ ॥

कूड़ी करणी रांम न पावै, साच टिकै निज रूप दिखावै ॥
घट मैं अग्नि घर जल अवास, चेति बुझाइ कबीरादास ॥२०१॥

[राग आसावरी]

ऐसी रे अवधू की बांणीं,
ऊपरि कूवटा तलि भरि पांणीं ॥ टेक ॥
जब लग गगन जोति नहीं पलटै,
अबिनासी सूं चित नहीं चिहुटै ॥
जब लग भवर गुफा नहीं जांनैं,
तौ मेरा मन कैसैं मांनैं ।
जब लग त्रिकुटी संधि न जांनैं,
ससिहर कै घरि सूर न आनैं ॥
जब लग नाभि कवल नहीं सोधै,
तौ हीरै हीरा कैसैं बेधै ॥
सोलह कला संपूरण छाजा,
अनहद कै घरि बाजैं बाजा ॥
सुषमन कै घरि भया अनंदा,
उलटि कवल भेटे गोब्यंदा ॥
मन पवन जब परचा भया,
ज्यूं नाले रांषो रस मइया ॥
कहै कबीर घटि लेहु बिचारी,
औघट घाट सींचि ले क्यारी ॥ २०२ ॥

मन का भ्रंम मन हीं थैं भागा,
सहज रूप हरि खेलण लागा ॥ टेक ॥
मैं तैं तैं मैं ए द्वै नांहीं, आपै अकल सकल घट मांहीं ॥

जब थैं इनमन उनमन जांनां, तब रूप न रेष तहां ले बांनां ॥
तन मन मन तन एक समांनां, इन अनभै मांहैं मन मांनां ।
आतमलीन अषंडित रांमां, कहै कबीर हरि मांहि समांनां ॥२०३॥

आतमां अनंदी जोगी, पीवै महारस अंमृत भोगी ॥ टेक ॥
ब्रह्म अगनि काया परजारी, अजपा जाप उनमनीं तारी ॥
त्रिकुट कोट मैं आसण मांडै, सहज समाधि बिषै सब छांडै ॥
त्रिबेंणी बिभूति करै मन मंजन, जन कबीर प्रभू अलष निरंजन२०४

या जोगिया की जुगति जु बूझै,
रांम रमैं ताकौं त्रिभुवन सूझै ॥ टेक ॥
प्रगट कंथा गुपत अधारी, तामैं मूरति जीवनि प्यारी ॥
है प्रभू नेरै खोजैं दूरि, ग्यांन गुफा मैं सींगी पूरि ॥
अमर बेलि जो छिन छिन पीवै, कहै कबीर सो जुगि जुगि जीवै२०५

सो जोगी जाकै मन मैं मुद्रा,
राति दिवस न करई निद्रा ॥ टेक ॥
मन मैं आसण मन मैं रहणां, मन का जप तप मन सूं कहणां॥
मन मैं षपरा मन मैं सींगी, अनहद बेन बजावै रंगी ॥
पंच परजारि भसम करि भूका, कहै कबीर सो लहसै लंका २०६

बाबा जोगी एक अकेला, जाकै तीर्थ ब्रत न मेला ॥ टेक ॥
झोली पत्र बिभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै ।
मांगि न खाइ न भूखा सोवै, घर अंगनां फिरि आवै ॥
पांच जनां की जमाति चलावै, तास गुरू मैं चेला ।
कहै कबीर उनि देसि सिधाये, बहुरि न इहि जगि मेला ॥२०७॥

जोगिया तन कौ जंत्र बजाइ,

ज्यूं तेरा आवागवन मिटाइ ॥ टेक ॥

तत करि तांति धर्म करि डांडी, सत की सारि लगाइ ।

मन करि निहचल आसंण निहचल, रसनां रस उपजाइ ॥

चित करि बटवा तुचा मेषली, भसमैं भसम चढ़ाइ ।

तजि पाषंड पांच करि निग्रह, खोजि परम पद राइ ॥

हिरदै सींगी ग्यांन गुंणि बांधौ, खोजि निरंजन साचा ।

कहै कबीर निरंजन की गति, जुगति बिनां प्यंड काचा ॥२०८॥

अवधू ऐसा ज्ञांन बिचारी, ज्यूं बहुरि न ह्वै संसारी ॥टेक॥

च्यंत न सोज चित बिन चितवै, बिन मनसा मन होई ।

अजपा जपत सुंनि अभि-अंतरि, यहु तत जानैं सोई ॥

कहै कबीर स्वाद जब पाया, बंक नालि रस खाया ।

अंमृत झरै ब्रह्म परकासै, तब ही मिलै रांम राया ॥ २०९ ॥

गोब्यंदे तुम्हारै बन कंदलि, मेरो मन अहेरा खेलै ॥

बपु वाड़ी अनगु मृग, रचिहीं रचि मेलै ॥ टेक ॥

चित तरउवा पवन षेदा, सहज मूल बांधा ।

ध्यांन धनक जोग करम, ग्यांन बांन सांधा ॥

षट चक्र कंवल बेधा, जारि उजारा कीन्हां ।

कांम क्रोध लोभ मोह, हाकि स्यावज दीन्हां ॥

गगन मंडल रोकि बारा, तहां दिवस न राती ।

कहै कबीर छांडि चले, बिछुरे सब साथी ॥ २१० ॥

साधन कंचू हरि न उतारै, अनभै ह्वै तौ अर्थ बिचारै ॥टेक॥

बांणीं सुरंग सोधि करि आंणैं, आंणैं नौ रंग धागा ।

चंद सूर एकंतरि कीया, सीवत बहु दिन लागा ॥
पंच पदार्थ छोड़ि समांनां, हीरै मोती जड़िया ।
कोटि बरस लूं कंचूं सींयां, सुर नर धंधै पाड़्या ॥
निस बासुर जे सोवैं नांहीं, ता नरि काल न खाई ।
कहै कबीर गुर परसादैं, सहजैं रह्या समाई ॥ २११ ॥

जीवत जिनि मारै मूवा मति ल्यावै,
मास बिहूंणां घरि मत आवै हो कंता ॥ टेक ॥
उर बिन षुर बिन चंच बिन, बपु बिहूंनां सोई ।
सो स्यावज जिनि मारै कंता, जाकै रगत मास न होई ॥
पैली पार के पारधी, ताकी धुनहीं पिनच नहीं रे ।
ता बेली कौ ढूंक्यौ मृग लौ, ता मृग कैसी सनहीं रे ॥
मार्‍या मृग जीवता राख्या, यहु गुर ग्यांन मही रे ।
कहै कबीर स्वांमीं तुम्हारे मिलन कौं, बेली है पर पात नहीं रे॥२१२॥

धीरौ मेरे मनवां तोहिं धरि टांगौं,
तैं तौ कीयौ मेरे खसम सूं षांगौं ॥टेक॥
प्रेम की जेवरिया तेरे गलि बांधूं,
तहां लै जांउं जहां मेरौ माधौ ॥
काया नगरी पैसि किया मै बासा,
हरि रस छाड़ि बिषै रसि माता ॥
कहै कबीर तन मन का ओरा,
भाव भगति हरि सूं गठजोरा ॥२१३॥

पारब्रह्म देख्या हो तत बाड़ी फूली, फल लागा बडहूली ।
सदा सदाफल दाख बिजौरा कौतिकहारी भूली ॥टेक॥
द्वादस कूंवा एक बनमाली, उलटा नीर चलावै ।

सहजि सुषमनां कूल भरावै, दह दिसि बाड़ी पावै ॥
ल्यौकी लेज पवन का ढ़ींकू, मन मटका ज बनाया ।
सत की पाटि सुरति का चाठा, सहजि नीर मुकलाया ॥
त्रिकुटी चढ्यौ पाव ढौ ढारै, अरध उरध की क्यारी ।
चंद सूर दोऊ पांणति करिहैं, गुर मुषि बीज बिचारी ॥
भरी छाबड़ी मन बैकुंठा, सांई सूर हिया रंगा ।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, हरि हंम एकै संगा ॥ २१४ ॥

रांम नांम रंग लागौ, कुरंग न होई ।
हरि रंग सौ रंग और न कोई ॥ टेक ॥
और सबै रंग इहिं रंग थैं छूटै, हरि-रंग लागा कदे न खूटै ॥
कहै कबीर मेरे रंग रांम राई, और पतंग रंग उड़ि जाई ॥२१५॥

कबीरा प्रेम की कूल ढरै, हंमारै रांम बिनां न सरै ।
बांधि लै धोरा सींचि लै क्यारी, ज्यूं तूं पेड भरै ॥ टेक ॥
कायां बाड़ी मांहैं माली, टहल करै दिन राती ।
कबहूं न सोवै काज संवारे, पांणतिहारी माती ॥
सेझै कूवा स्वांति अति सीतल, कबहूं कुवा बनहीं रे ।
भाग हंमारे हरि रखवाले, कोई उजाड़ नहीं रे ॥
गुर बीज जमाया कि रखि न पाया, मन की आपदा खोई ।
औरै स्यावढ करै षारिसा, सिला करै सब कोई ॥
जौ घरि आया तौ सब ल्याया, सबही काज संवारया ।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, थकित भया मैं हारया ॥ २१६ ॥

राजा रांम बिनां तकती धो धो ।
रांम बिनां नर क्यूं छूटौगे,
जम करै नग धो धो धो ॥ टेक ॥

मुद्रा पहर्‌यां जोग न होई,
घूँघट काढ्यां सती न कोई ॥
माया कै सँगि हिलि मिलि आया, ।
फोकट साटै जनम गँवाया ॥
कहै कबीर जिनि हरि पद चीन्हां,
मलिन प्यंड थैं निरमल कीन्हां ॥ २१७ ॥

है कोई रांम नांम बतावै, बस्त अगोचर मोहि लखावै ॥टेक॥
रांम नांम सब कोई बखांनैं, रांम नांम का मरम न जांनैं ॥
ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावै तौ सुख पावै ।
कहै कबीर कछू कहत न आवै, परचै बिनां मरम को पावै ॥२१८॥

गोब्यंदे तूं निरंजन तूं निरंजन तूं निरंजन राया ।
तेरे रूप नांहीं रेख नांहीं मुद्रा नहीं माया ॥ टेक ॥
समद नांहीं सिषर नांहीं, धरती नहीं गगनां ।
रवि ससि दोउ एकै नांहीं, बहत नांहीं पवनां ॥
नाद नांहीं व्यंद नांहीं, काल नहीं काया ।
जब तैं जल ब्यंब न होते, तब तूंहीं रांम राया ॥
जप नांहीं तप नांहीं, जोग ध्यांन नहीं पूजा ।
सिव नांहीं सकति नांहीं, देव नहीं दूजा ॥
रुग न जुग न स्यांम अथरबन, बेद नहीं ब्याकरनां ।
तेरी गति तूंहीं जांनैं, कबीरा तो सरनां ॥ २१९ ॥

रांम कै नांइ नींसान बागा, ताका मरम न जांनैं कोई ।
भूख त्रिषा गुण वाकै नांहीं, घट घट अंतरि सोई ॥ टेक ॥
वेद बिबर्जित भेद बिबर्जित, बिबर्जित पाप रु पुंन्यं ।
ग्यांन बिबर्जित ध्यांन बिबर्जित, बिबर्जित अस्थूल सुंन्यं ॥

भेष बिबर्जित भीख बिबर्जित, बिबार्जत ड्य ंभक रूपं ।
कहै कबीर तिहूं लोक बिबर्जित, ऐसा तत अनूपं ॥ २२० ॥

रांम रांम रांम रमि रहिये, साषित सेती भूलि न कहिये।।टेक।।
का सुनहां कौं सुमृत सुनांये, का साषित पैं हरि गुन गांये ।
का कऊवा कौं कपूर खवांये, का बिसहर कौं दूध पिलांये ॥
साषित सुनहां दोऊ भाई, वो नींदै वौ भौंकत जाई ।
अंमृत ले ले नींब स्यंचाई, कहै कबीर वाकी बांनि न जाई।।२२१।।

अब न बसूं इहिं गांइ गुसांई,
तेरे नेवगी खरे सयांने हो रांम ॥ टेक ॥
नगर एक तहां जीव धरम हता, बसैं जु पंच किसानां ।
नैंनूं निकट श्रवनूं रसनूं, इंद्री कह्या न मांनैं हो रांम ॥
गांइ कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै ।
जोरि जेवरी खेति पसारै, सब मिलि मोकौं मारै हो रांम ॥
खोटौ महतौ बिकट बलाही, सिर कसदम का पारै ।
बुरो दिवांन दादि नहिं लागै, इक बांधै इक मारै हो रांम ॥
धरमराइ जब लेखा मांग्या, बाकी निकसी भारी ।
पांच किसानां भाजि गये हैं, जीव धर बांध्यौ पारी हो रांम ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, हरि भजि बांधौ भेरा ।
अब की बेर बकसि बंदे कौं, सब खत करौं नबेरा ॥ २२२ ॥

ता भै थैं मन लागौ रांम तोही,
करौ कृपा जिनि बिसरौ मोही ॥ टेक ॥
जननीं जठर सह्या दुख भारी,
सो संक्या नहीं गई हमारी ॥

दिन दिन तन छीजै जरा जनावै,
केस गहें काल बिरदंग बजावै ॥
कहै कबीर करुणांमय आगैं,
तुम्हारी क्रिया बिना यहु बिपति न भागै ॥ २२३ ॥

कब देखूं मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देहीं ॥ टेक ॥
हूँ तेरा पंथ निहारूं स्वांमीं,
कब रमि लहुगे अंतरजांमीं ॥
जैसैं जल बिन मींन तलपै,
ऐसै हरि बिन मेरा जियरा कलपै ॥
निस दिन हरि बिन नींद न आवै,
दरस पियासी रांम क्यूं सचुपावै ॥
कहै कबीर अब बिलंब न कीजै,
अपनौं जांनि मोहि दरसन दीजै ॥ २२४ ॥

सो मेरा रांम कबै घरि आवै, ता देखें मेरा जिय सुख पावै ॥टेक॥
बिरह अगिनि तन दिया जराई, बिन दरसन क्यूं होइ सराई ॥
निस बासुर मन रहै उदासा, जैसैं चातिग नीर पियासा ॥
कहै कबीर अति आतुरताई, हमकौं बेगि मिलौ रांमराई ॥२२५॥

मैं सासने पीव गौंहनि आई ।
सांइं संगि साध नहीं पूगी, गयौ जोबन सुपिनां की नांईं ॥टेक॥
पंच जना मिलि मंडप छायौ, तीनि जनां मिलि लगन लिखाई ।
सखी सहेली मंगल गांवैं, सुख दुख माथै हलद चढ़ाई ॥

नांनां रंगैं भांवरि फेरी, गांठि जोरि बाबै पति ताईं।
पूरि सुहाग भयौ बिन दूलह, चौक कै रंगि धरयौ सगौ भाई॥
अपनैं पुरिष मुख कबहूं न देख्यौ, सती होत समझी समझाई।
कहै कबीर हूं सर रचि मरि हूँ, तिरौं कंत ले तूर बजाई॥२२६॥

धीरैं धीरैं खाइबौ अनत न जाइबौ,
रांम रांम रांम रमि रहिबौ॥ टेक॥
पहली खाई आई माई, पीछैं खैहूं सगौ जवाई।
खाया देवर खाया जेठ, सब खाया सुसर का पेट॥
खाया सब पटण का लोग, कहै कबीर तब पाया जोग॥२२७॥

मन मेरौ रहटा रसनां पुरइया,
हरि कौ नांउं लै लै काति बहुरिया॥ टेक॥
चारि खूंटी दोइ चमरख लाई, सहजि रहटवा दियौ चलाई॥
सासू कहै काति बहू ऐसैं, बिन कातैं निसतरिबौ कैसैं॥
कहै कबीर सूत भल काता, रहटां नहीं परम पद दाता॥२२८॥

अब की घरी मेरो घर करसी,
साध संगति ले मोकौं तिरसी॥ टेक॥
पहली कौ घाल्यौ भरमत डोल्यौ, सच कबहूं नहीं पायौ।
अब की धरनि धरी जा दिन थैं, सगलौ भरम गमायौ॥
पहली नारि सदा कुलवंती, सासू सुसरा मांनैं।
देवर जेठ सबनि की प्यारी, पिय कौ मरम न जांनैं॥
अब की धरनि धरी जा दिन थैं, पीय सूं बांन बन्यूं रे।
कहै कबीर भाग बपुरी कौ, आइ रु रांम सुन्यूं रे॥ २२९॥
मेरी मति बौरी रांम बिसारयौ,
किहि बिधि रहनि रहूं हो दयाल।

(२२७) ख०—खाया पंच पटण का लोग।

सेजैं रहूं नैंन नहीं देखौं,
यहु दुख कासौं कहूं हो दयाल ॥ टेक ॥
सासु की दुखी सुसर की प्यारी, जेठ कै तरसि डरौं रे ।
नणद सुहेली गरब गहेली, देवर कै बिरह जरौं हो दयाल ॥
बाप सावकौ करै लराई, माया सद मतिवाली ॥
सगौ भईया लै सलि चढ़िहूँ, तब ह्वै हूं पीयहि पियारी ॥
सोचि बिचारि देखौ मन मांहीं, औसर आइ बन्यूं रे ।
कहै कबीर सुनहुं मति सुंदरि, राजा रांम रमूं रे ॥ २३० ॥

अवधू ऐसा ग्यांन बिचारी, तार्थैं भई पुरिष थैं नारी ॥टेक॥
नां हूं परनीं नां हूं कारी, पूत जन्यूं द्यौ हारी ।
काली मूंड कौ एक न छोड्यौ, अजहूं अकन कुवारी ॥
बाम्हन कै बम्हनेटी कहियौं, जोगी कै घरि चेली ।
कलमां पढि पढि भई तुरकनीं, अजहूं फिरौं अकेली ॥
पीहरि जाऊं न रहूं सासुरै, पुरषहि अंगि न लाऊं ।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, अंगहि अंग न छुवांऊं ॥ २३१ ॥

मींठी मींठी माया तजी न जाई,
अग्यांनीं पुरिष कौं भोलि भोलि खाई ॥ टेक ॥
निरगुंण सगुंण नारी, संसारि पियारी,
लषमणि त्यागी गोरषि निवारी ॥
कीड़ी कुंजर मैं रही समाई,
तीनि लोक जीत्या माया किनहूं न खाई ॥
कहै कबीर पद लेहु बिचारी,
संसारि आइ माया किनहूं एक कहीं षारी ॥२३२॥

---

(२३१) ख०—पूत जने जनि हारी ।

मन कै मैलौ बाहरि ऊजलौ किसौ रे,
खांडे की धार जन कौ धरम इसौ रे ॥ टेक ॥
हिरदा कौ बिलाव नैंन बग ध्यांनीं,
ऐसी भगति न होइ रे प्रांनीं ॥
कपट की भगति करै जिन कोई,
अंत की बेर बहुत दुख होई ॥
छांडि कपट भजौ रांम राई,
कहै कबीर तिहूं लोक बडाई ॥ २३३ ॥

चोखौ वनज व्यौपार करीजै,
आइनैं दिसावरि रे रांम जपि लाहौ लीजै ॥टेक॥
जब लग देखौं हाट पसारा,
उठि मन बणियां रे, करि ले बणज सवारा ॥
बेगे हो तुम्ह लाद लदांनां,
औघट घाटा रे चलनां दूरि पयांनां ॥
खरा न खोटा नां परखानां,
लाहे कारनि रे सब मूल हिरांनां ॥
सकल दुनीं मैं लोभ पियारा,
मूल ज राखै रे सोई बनिजारा ॥
देस भला परिलोक बिरांनां,
जन दोइ चारि नरे पूछौ साध सयांनां ॥
सायर तीर न वार न पारा,
कहि समझावै रे कबीर बणिजारा ॥ २३४ ॥

जौ मैं ग्यांन बिचार न पाया,
तौ मैं यौंहीं जन्म गंवाया ॥ टेक ॥

यहु संसार हाट करि जांनूं, सबको बणिजण आया ।
चेति सकै सो चेतौ रे भाई, मूरिख मूल गंवाया ॥
थाके नैंन बैंन भी थाके, थाकी सुंदर काया ।
जांमण मरण ए द्वै थाके, एक न थाकी माया ॥
चेति चेति मेरे मन चंचल, जब लग घट मैं सासा ।
भगति जाव परभाव न जइयौ, हरि के चरन निवासा ॥
जे जन जांनि जपैं जग जीवन, तिनका ग्यांन न नासा ।
कहै कबीर वै कबहूं न हारैं, जांनि न ढारैं पासा ॥ २३५ ॥

लावौ बाबा आगि जलावो घरा रे,
ता कारनि मन धंधै परा रे ॥ टेक ॥
इक डांइनि मेरे मन मैं बसै रे, नित उठि मेरे जीय कौं डसै रे ॥
या डांइन्य के लरिका पांच रे, निस दिन मोहि नचावैं नाच रे ॥
कहै कबीर हूँ ताकौ दास, डांइनि कै संगि रहै उदास ॥२३६॥

बंदे तोहि बंदिगी सौं कांम, हरि बिन जांनि और हरांम ।
दूरि चलणां कूंच बेगा, इहां नहीं मुकांम ॥ टेक ॥
इहां नहीं कोई यार दोस्त, गांठि गरथ न दांम ।
एक एकै संगि चलणां, बीचि नहीं बिश्रांम ॥
संसार सागर विषम तिरणां, सुमरि लै हरि नांम ।
कहै कबीर तहां जाइ रहणां, नगर बसत निधांन ॥ २३७ ॥

झूठा लोग कहैं घर मेरा ।
जा घर मांहैं बोलै डोलै, सोई नहीं तन तेरा ॥ टेक ॥
बहुत बंध्या परिवार कुटंब मैं, कोई नहीं किस केरा ।
जीवत आंषि मूंदि किन देखौ, संसार अंध अँधेरा ॥

बस्ती मैं थै मारि चलाया, जंगलि किया बसेरा।
घर कौं खरच खबरि नहीं भेजी, आप न कीया फेरा ॥
हस्ती घोड़ा बैल बांहणीं, संग्रह किया घणेरा।
भीतरि बीबी हरम महल मैं, साल मिंया का डेरा ॥
बाजी की बाजीगर जांनैं, कै बाजीगर का चेरा।
चेरा कबहूं उझकि न देखै, चेरा अधिक चितेरा ॥
नौ मन सूत उरझि नहीं सुरझै, जनमि जनमि उरझेरा।
कहै कबीर एक रांम भजहु रे, बहुरि न ह्वैगा फेरा ॥ २३८ ॥

हावड़ि धावड़ि जनम गवावै,
कबहूं न रांम चरन चित लावै ॥ टेक ॥
जहां जहां दांम तहां मन धावै, अंगुरी गिनतां रैंनि बिहावै।
तृया का बदन देखि सुख पावै, साध की संगति कबहूं न आवै ॥
सरग के पंथि जात सब लोई, सिर धरि पोट न पहुंच्या कोई ॥
कहै कबीर हरि कहा उबारै, अपणैं पाव आप जौ मारै ॥२३९॥

प्राणीं काहे कै लोभ लागि, रतन जनम खोयौ।
बहुरि हीरा हाथि न आवै, रांम बिनां रोयौ ॥ टेक ॥
जल बूंद थैं ज्यनि प्यंड बांध्या, अगिन कुंड रहाया।
दस मास माता उदरि राख्या, बहुरि लागी माया ॥
एक पल जीवन की आश नांहीं, जम निहारै सासा।
बाजीगर संसार कबीरा, जांनि ढारौ पासा ॥ २४० ॥

फिरत कत फूल्यौ फूल्यौ।
जब दस मास उरध मुखि होते, सो दिन काहे भूल्यौ ॥टेक॥
जौ जारै तौ होइ भसम तन, रहत कृम ह्वै जाई।
काचै कुंभ उधक भरि राख्यौ, तिनकी कौन बडाई ॥

ज्यूं माषी मधु संचि करि, जोरि जोरि धन कीनो।
मूयें पीछैं लेहु लेहु करि, प्रेत रहन क्यूं दीनूं॥
ज्यूं घर नारी संग देखि करि, तब लग संग सुहेलौ।
मरघट घाट खैंचि करि राखे, वह देखिहु हंस अकेलौ॥
रांम न रमहु मदन कहा भूले, परत अंधेरैं कूवा।
कहै कबीर सोई आप बंधायौ, ज्यूं नलनीं का सूवा॥ २४१॥

जाइ रे दिन हीं दिन देहा, करि लै बौरी रांम सनेहा॥टेक॥
बालापन गयौ जोबन जासी, जुरा मरण भौ संकट आसी॥
पलटे केस नैंन जल छाया, मूरिख चेति बुढ़ापा आया॥
रांम कहत लज्या क्यूं कीजै, पल पल आउ घटै तन छीजै॥
लज्या कहै हूं जम की दासी, एकैं हाथि मुदिगर दूजै हाथि पासी॥
कहै कबीर तिनहूं सब हारया, रांम नांम जिनि मनहु बिसारया॥२४२॥

मेरी मेरी करतां जनम गयौ,
जनम गयौ परि हरि न कह्यौ॥ टेक॥
बारह बरस बालापन खोयौ, बीस बरस कछू तप न कीयौ।
तीस बरस कै रांम न सुमिरयौ, फिरि पछितांनौं बिरध भयौ॥
सूकै सरवर पालि बंधावै, लुणैं खेत हठि बाड़ि करै।
आयौ चोर तुरंग मुसि ले गयौ, मोरी राखत मुगध फिरै॥
सीस चरन कर कंपन लागे, नैंन नीर अस राल बहै।
जिभ्या बचन सूध नहीं निकसै, तब सुकरित की बात कहै॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, धन संच्यो कछु संगि न गयौ।
आई तलब गोपाल राइ की, मैंड़ी मंदिर छाड़ि चल्यौ॥२४३॥

(२४३) ख०—मोरी बांधत।

जाहि जाती नांव न लीया, फिरि पछितावैगौ रे जीया ॥टेक॥
धंधा करत चरन कर घाटे, आव घटी तन खींना।
विषै बिकार बहुत रुचि मांनीं, माया मोह चित दींन्हां ॥
जागि जागि नर काहे सोवै, सोइ सोइ कब जागैगा।
जब घर भीतरि चोर पड़ैंगे, तब अंचलि किस कै लागैगा ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, करि ल्यौ जे कछु करणां।
लख चौरासी जोनि फिरौगे, बिनां रांम की सरनां ॥ २४४ ॥

माया मोहि मोहि हित कीन्हां,
ताथैं मेरौ ग्यांन ध्यांन हरि लीन्हां ॥ टेक ॥
संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समांन।
सांँच करि नरि गांठि बांध्यौ, छाडि परम निधांन ॥
नैंन नेह पतंग हुलसै, पसू न पेखै आगि।
काल पासि जु मुगध बांध्या, कलंक कांमिनीं लागि ॥
करि बिचार बिकार परहरि, तिरण तारण सोइ।
कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, दूजा नांहीं कोइ ॥ २४५ ॥

ऐसा तेरा झूठा मीठा लागा, ताथैं साचे सूं मन भागा ॥टेक॥
झूठे के घरि झूठा आया, झूठा खांन पकाया।
झूठी सहन क झूठा बाह्या, झूठै झूठा खाया ॥
झूठा ऊठण झूठा बैठण, झूठी सबै सगाई।
झूठे के घरि झूठा राता, साचे को न पत्याई ॥
कहै कबीर अलह का पंगुरा, साचे सूं मन लावौ।
झूठे केरी संगति त्यागौ, मन बंछित फल पावौ ॥ २४६ ॥

---

(२४४) ख०—धंधा करत करत कर थाके।

कौंण कौंण गया रांम कौंण कौंणन जासी,
पड़सी काया गढ़ माटी थासी ॥ टेक ॥
इंद्र सरीखे गये नर कोड़ी, पांचों पांडौं सरिषी जोड़ी ।
धू अविचल नहीं रहसी तारा, चंद सूर की आइसी वारा ॥
कहै कबीर जग देखि संसारा, पड़सी घट रहसी निरकारा॥२४७॥

ताथैं सेविये नारांइणां,
प्रभू मेरौ दीन दयाल दया करणा ॥ टेक ॥
जौ तुम्ह पंडित आगम जांणौं, विद्या व्याकरणां ।
तंत मंत सब ओषदि जांणौं, अंति तऊ मरणां ॥
राज पाट स्यंघासण आसण, बहु सुंदरि रमणां ।
चंदन चीर कपूर बिराजत, अंति तऊ मरणां ॥
जोगी जती तपी संन्यासी, बहु तीरथ भरमणां ।
लुंचित मुंडित मोनि जटाधर, अंति तऊ मरणां ॥
सोचि बिचारि सबै जग देख्या, कहूं न ऊबरणां ।
कहै कबीर सरणाई आयौ, मेटि जामन मरणां ॥ २४८ ॥

पांडे न करसि वाद बिबादं,
या देही बिन सबद न स्वादं ॥ टेक ॥
अंड ब्रह्मंड खंड भी माटी, माटी नवनिधि काया ।
माटी खोजंत सतगुर भेट्या, तिन कछू अलख लखाया ॥
जीवत माटी मूवा भी माटी, देखौ ग्यांन बिचारी ।
अंति कालि माटी मैं बासा, लेटै पांव पसारी ॥
माटी का चित्र पवन का थंभा, ब्यंद सँजोगि उपाया ।
भांनैं घड़ै संवारै सोई, यहु गोब्यंद की माया ॥
माटी का मंदिर ग्यान का दीपक, पवन बाति उजियारा ।
तिहि उजियारै सब जग सूझै, कबीर ग्यांन बिचारा ॥ २४९ ॥

मेरी जिभ्या बिस्न नैंन नारांइन, हिरदै जपौं गोविंदा।
जंम दुवार जब लेख मांग्या, तब का कहिसि मुकंदा ॥ टेक॥
तूं बांम्हण मैं कासी का जुलाहा, चीन्हिं न मोर गियाना।
तैं सब मांगे भूपति राजा, मोरे रांम धियाना॥
पूरब जनम हम बांम्हन होते, वोछै करम तप हींनां।
रांमदेव की सेवा चूका, पकरि जुलाहा कीन्हां॥
नौंमी नेम दसमीं करि संजम, एकादसी जागरणां।
द्वादसी दांन पुनि की बेलां, सर्ब पाप छयौ करणां॥
भौ बूड़त कछू उपाइ करीजै, ज्यूं तिरि लंघै तीरा।
रांम नांम लिखि भेरा बांधौ, कहै उपदेस कबीरा॥ २५०॥

कहु पांडे सुचि कवन ठांव,
जिहि घरि भोजन बैठि खाऊं॥ टेक॥
माता जूठी पिता पुनि जूठा, जूठे फल चित लागे।
जूठा आंवन जूठा जांनां, चेतहु क्यूं न अभागे॥
अंन जूठा पांनी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।
जूठी कड़छी अन परोस्या, जूठे जूठा खाया॥
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी का ढीकारा।
कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजहिं बिकारा॥२५१॥

---

(२५०) ख० प्रति में इसके आगे यह पद है—
कहु पांडे कैसी सुचि कीजै,
सुचि कीजै तौ जनम न लीजै॥ टेक॥
जा सुचि केरा करहु बिचारा, भिष्ट भए लीन्हा औतारा॥
जा कारणि तुम्ह धरती काटी, तामैं मूए जीव सै सारी॥
जा कारण तुम्ह लीन जनेऊ, थूक लगाइ कातैं सब कोऊ॥
एक खाल घृत केरी साखा, दूजी खाल मैले घृत राखा॥
सो घृत कब देवतनि चढ़ायौ, सोई घृत सब दुनियां खायौ॥
कहै कबीर सुचि देहु बताई, रांम नांम लीजौ रे भाई॥ १०॥

हरि बिन झूठे सब ब्यौहार, केते कोऊ करौ गँवार ॥टेक॥
झूठा जप तप झूठा ग्यांन, रांम रांम बिन झूठा ध्यांन ॥
विधि न खेद पूजा आचार, सब दरिया मैं वार न पार ॥
इंद्री स्वारथ मन के स्वाद, जहां साच तहां मांडै बाद ॥
दास कबीर रह्या ल्यौ लाइ, भर्म कर्म सब दिये बहाइ ॥२५२॥

चेतनि देखै रे जग धंधा ।
रांम नांम का मरम न जांनैं, माया कै रसि अंधा ॥ टेक ॥
जनमत ही रू कहा ले आयौ, मरत कहा ले जासी ।
जैसै तरवर बसत पंखेरू, दिवस चारि के बासी ॥
आपा थापि अवर कौ निंदैं, जन्मत हीं जड़ काटी ।
हरि की भगति बिनां यहु देही, धब लोटै ही फाटी ॥
कांम क्रोध मोह मद मंछर, पर-अपवाद न सुणियें ।
कहै कबीर साध की संगति, रांम नांम गुन भणिये ॥ २५३ ॥

रे जम नांहि नवै ब्यौपारी, जे भरैं जगाति तुम्हारी ॥टेक॥
वसुधा छाड़ि बनिज हम कीन्हों, लाद्यो हरि कौ नांऊं ।
रांम नांम की गूंनि भराऊं, हरि कै टांडै जांऊं ॥
जिनकै तुम्ह अगिवानीं कहियत, सो पूंजी हंम पासा ।
अवै तुम्हारौ कछु बल नांहीं, कहै कबीरा दासा ॥ २५४ ॥

मींयां तुम्ह सौं बोल्यां बणि नहीं आवै ।
हम मसकीन खुदाई बंदे, तुम्हरा जस मनि भावै ॥ टेक ॥
अलह अवलि दीन का साहिब, जोर नहीं फुरमाया ।
मुरिसद पीर तुम्हारै है को, कहौ कहां थैं आया ॥
रोजा करैं निवाज गुजारैं, कलमैं भिसत न होई ।
सतरि काबे इक दिल भींतरि, जे करि जानैं कोई ॥

खसम पिछांनि तरस करि जिय मैं, माल मनीं करि फीकी।
आपा जांनि सांईं कूं जांनैं, तब ह्वै भिस्त सरीकी ॥
माटी एक भेष धरि नांनां, सब मैं ब्रह्म समांनां।
कहै कबीर भिस्त छिटकाई, दोजग ही मन मांनां ॥ २५५ ॥

अलह ल्यौ लांयें काहे न रहिये,
अह निसि केवल रांम नांम कहिये ॥ टेक ॥
गुरमुखि कलमां ग्यांन मुखि छुरी, हुई हलाल पंचूं पुरी ॥
मन मसीति मैं किनहूं न जांनां, पंच पीर मालिम भगवांनां ॥
कहै कबीर मैं हरि गुंन गांऊं, हिंदू तुरक दोऊ समझाऊं ॥२५६॥

रे दिल खोजि दिलहर खोजि, नां परि परेसांनीं मांहिं।
महल माल अजीज औरति, कोई दस्तगीरी क्यूं नांहि ॥टेक॥
पीरां मुरीदां काजियां, मुलां अरू दरवेस।
कहां थें तुम्ह किनि कीये, अकलि है सब नेस ॥
कुरांना कतेबां अस पढि पढि, फिकरि या नहीं जाइ।
टुक दम करारी जे करै, हाजिरां सुर खुदाइ ॥
दरोगां बकि बकि हूंहिं खुसियां, बे-अकलि बकहिं पुमांहिं।
हक साच खालिक खालक म्यानैं, सो कछू सच सुरति मांहि ॥
अलह पाक तूं नापाक क्यूं, अब दूसर नांहीं कोइ।
कबीर करम करीम का, करनीं करै जांनैं सोइ ॥ २५७ ॥

खालिक हरि कहीं दर हाल।
पंजर जसि करद दुसमन, मुरद करि पैमाल ॥ टेक ॥

---

(२५७) क० प्रति में आठवीं पंक्ति का पाठ इस प्रकार है—

साचु खलक खालक, सैल सुरति मांहि ॥

भिस्त हुसकां दोजगां, दुंदर दराज दिवाल ।
पहनांम परदा ईत आतस, जहर जंगम जाल ॥
हम रफत रहबरहु समां, मैं खुर्दा सुमां बिसियार ।
हम जिमीं असमांन खालिक, गुंद मुसिकल कार ॥
असमांन म्यांनैं लहंग दरिया, तहां गुसल करदा बूद ।
करि फिकर रह सालक जसम, जहां स तहां मौजूद ॥
हंम चु बूंदनि बूंद खालिक, गरक हम तुम पेस ।
कबीर पनह खुदाइ की, रह दिगर दावानेस ॥ २५८ ॥

अलह रांम जीऊँ तेरे नांईं,
बंदे ऊपरि मिहर करौ मेरे सांईं ॥ टेक ॥
क्या ले माटी भुंइ सूं मारैं, क्या जल देह न्हवायें ।
जोर करै मसकीन सतावै, गुंन हीं रहै छिपायें ॥
क्या तु जू जप मंजन कीयें, क्या मसीति सिर नांयें ।
रोजा करैं निमाज गुजारैं, क्या हज काबै जांयें ॥
बांम्हंण ग्यारसि करै चौबीसौं, काजी महरम जांन ।
ग्यारह मास जुदे क्यूं कीये, एकहि मांहि समांन ॥
जौर खुदाइ मसीति बसत हैं, और मुलिक किस केरा ।
तीरथ मूरति रांम निवासा, दुहु मैं किनहूं न हेरा ॥
पूरिब दिसा हरी का बासा, पछिम अलह मुकांमां ।
दिल ही खोजि दिलै दिल भींतरि, इहां रांम रहिमांनां ॥
जेती औरति मरदां कहिये, सब मैं रूप तुम्हारा ।
कबीर पंगुड़ा अलह रांम का, हरि गुर पीर हमारा ॥ २५९ ॥

मैं बड़ मैं बड़ मैं बड़ मांटी,
मण दसना जट का दस गांठी ॥ टेक ॥

---

(२२९) ख०—सब मैं नूर तुम्हारा ।

मैं बाबा का जोध कहांऊं, अपणीं मारी गींद चलांऊं ॥
इनि अहंकार घणें घर घाले, नाचत कूदत जम पुरि चाले ॥
कहै कबीर करता की बाजी, एक पलक मैं राज बिराजी ॥२६०॥

काहे बीहो मेरे साथी, हूं हाथी हरि केरा।
चौरासी लख जाके मुख मैं, सो च्यंत करैगा मेरा ॥ टेक ॥
कहौ कौंन षिवै कहौ कौंन गाजै, कहां थैं पांणीं निसरै।
ऐसी कला अनंत हैं जाकै, सो हंम कौं क्यूं बिसरै ॥
जिनि ब्रह्मंड रच्यौ बहु रचना, बाव बरन ससि सूरा।
पाइक पंच पुहमि जाकै प्रगटै, सो क्यूं कहिये दूरा ॥
नैंन नासिका जिनि हरि सिरजे, दसन बसन बिधि काया।
साधू जन कौं सो क्यूं बिसरै, ऐसा है रांम राया ॥
को काहू का मरम न जांनै, मैं सरनांगति तेरी।
कहै कबीर बाप रांम राया, दुरमति राखहु मेरी ॥२६१॥

[राग सोरठि]

हरि कौ नांव न लेइ गंवारा, क्या सोचै बारंबारा ॥ टेक ॥
पंच चोर गढ मंझा, गढ लूटैं दिवस र संझा ॥
जौ गढपति मुहकम होई, तौ लूटि न सकै कोई ॥
अंधियारै दीपक चहिये, तब बस्त अगोचर लहिये ॥
जब बस्त अगोचर पाई, तब दीपक रह्या समाई ॥
जौ दरसन देख्या चहिये, तौ दरपन मंजत रहिये ॥
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई ॥
का पढ़िये का गुनियें, का बेद पुराना सुंनियें ॥
पढ़े गुनें मति होई, मैं सहजैं पाया सोई ॥
कहै कबीर मैं जांनां, मैं जांनां मन पतियानां।
पतियानां जौ न पतीजै, तौ अंधे कूं का कीजै ॥२६२॥

अंधे हरि बिन को तेरा, कवन सूं कहत मेरी मेरा ॥ टेक ॥
तजि कुलाक्रम अभिमांनां, झूठे भरमि कहा भुलांनां ॥
झूठे तन की कहा बडाई, जे निमष मांहि जरि जाई ॥
जब लग मनहि बिकारा, तब लगि नहीं छूटै संसारा ॥
जब मन निरमल करि जानां, तब निरमल मांहि समानां ॥
ब्रह्म अगनि ब्रह्म सोई, अब हरि बिन और न कोई ॥
जब पाप पुंनि भ्रंम जारी, तब भयौ प्रकास मुरारी ॥
कहै कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां तैसा ॥
भूलै भरमि परै जिनि कोई, राजा रांम करै सो होई ॥ २६३ ॥

मन रे सर्यौ न एकौ काजा,
ताथैं भज्यौ न जगपति राजा ॥ टेक ॥
बेद पुरांन सुमृत गुन पढि पढि, पढि गुनि मरम न पावा ।
संध्या गाइत्री अरु षट करमां, तिन थैं दूरि बतावा ॥
बनखंडि जाइ बहुत तप कीन्हां, कंद मूल खनि खावा ।
ब्रह्म गियांनीं अधिक धियांनीं, जंम कै पटैं लिखावा ॥
रोजा किया निमाज गुजारी, बंग दे लोग सुनावा ।
हिरदै कपट मिलै क्यूं सांई, क्या हज काबै जावा ॥
पहरयौ काल सकल जग ऊपरि, मांहि लिखे सब ग्यांनीं ।
कहै कबीर ते भये षालसै, रांम भगति जिनि जांनीं ॥ २६४ ॥

मन रे जब तैं रांम कह्यौ,
पीछै कहिबे कौं कछू न रह्यौ ॥ टेक ॥
का जोग जगि तप दांनां, जौ तैं रांम नांम नहीं जांनां ॥
कांम क्रोध दोऊ भारे, ताथैं गुरु प्रसादि सब जारे ॥
कहै कबीर भ्रम नासी, राजा रांम मिले अबिनासी ॥ २६५ ॥

रांम राइ सो गति भई हंमारी, मो पैं छूटत नहीं संसारी ॥टेक॥
ज्यूं पंखी उडि जाइ अकासां, आस रही मन मांहीं।
छूटी न आस टूट्यौ नहीं फंधा, उडिबै लागौ कांहीं ॥
जो सुख करत होत दुख तेई, कहत न कछू बनि आवै।
कुंजर ज्यूं कसतूरी का मृग, आपै आप बँधावै ॥
कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनियें देव मुरारी।
इत भैभीत डरौं जम दूतनि, आये सरनि तुम्हारी ॥ २६६ ॥

रांम राइ तूं ऐसा अनभूत अनूपम, तेरी अनभै थैं निस्तरिये।
जे तुम्ह कृपा करौ जगजीवन, तौ कतहूं भूलि न परियें ॥टेक॥
हरि पद दुरलभ अगम अगोचर, कथिया गुर गमि बिचारा।
जा कारंनि हंम ढूंढत फिरते, आथि भरयो संसारा ॥
प्रगटी जोति कपाट खोलि दिये, दगधे जंम दुख द्वारा।
प्रगटे बिस्वनाथ जगजीवन, मैं पायें करत विचारा ॥
देख्यत एक अनेक भाव है, लेखत जात अजाती।
बिह कौ देव तबि ढूंढत फिरते, मंडप पूजा पाती ॥
कहै कबीर करुणांमय किया, देरी गलियां बहु बिस्तारा।
रांम कै नांव परंम पद पाया, छूटे बिघन बिकारा ॥ २६७ ॥

रांम राइ को ऐसा बैरागी,
हरि भजि मगन रहै बिष त्यागी ॥ टेक ॥
ब्रह्मा एक जिनि सिष्टि उपाई, नांव कुलाल धराया।
बहु बिधि भांडै उनहीं घड़िया, प्रभू का अंत न पाया ॥
तरवर एक नांनां बिधि फलिया, ताकै मूल न साखा।
भौजलि भूलि रह्या रे प्रांणीं, सो फल कदे न चाखा ॥
कहै कबीर गुर बचन हेत करि, और न दुनियां आथी।
माटी का तंन मांटीं मिलिहै, सबद गुरू का साथी ॥ २६८ ॥

नैंक निहारि हो माया बीनती करै,
दीन बचन बोलै कर जोरै, फुनि फुनि पाइ परै ॥ टेक ॥
कनक लेहु जेता मनि भावै, कांमनि लेहु मन-हरनीं ।
पुत्र लेहु विद्या-अधिकारी, राज लेहु सब धरनीं ॥
अठि सिधि लेहु तुम्ह हरि के जनां, नवैं निधि है तुम्ह आगैं ।
सुर नर सकल भवन के भूपति, तेऊ लहै न मांगैं ॥
तैं पापणीं सबै संघारे, काकौ काज संवारयौ ।
जिनि जिनि संग कियौ है तेरौ, को वेसासि न मारयौ ॥
दास कबीर रांम कै सरनैं, छाडी झूठी माया ।
गुर प्रसाद साध की संगति, तहां परम पद पाया ॥ २६९ ॥

तुम्ह घरि जाहु हंमारी बहनां, विष लागैं तुम्हारे नैंनां ॥टेक॥
अंजन छाडि निरंजन राते, नां किसहीं का दैनां ।
बलि जांउ ताकी जिनि तुम्ह पठई, एक माइ एक बहनां ॥
राती खांडी देखि कबीरा, देखि हमारा सिंगारो ।
सरग लोक थैं हम चलि आई, करन कबीर भरतारौ ॥
सर्ग लोक मैं क्या दुख पड़िया, तुम्ह आईं कलि मांहीं ।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहूं पतीजौ नांहीं ॥
तहां जाहु जहां पाट पटंबर, अगर चंदन घसि लीनां ।
आइ हमारै कहा करौगी, हम तौ जाति कमींनां ॥
जिनि हंम साजे साज्य निवाजे, बांधे काचै धागै ।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, पांणीं आगि न लागै ॥
साहिब मेरा लेखा मांगै, लेखा क्यूंकरि दीजै ।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, तौ पांहण नीर न भीजै ॥
जाकी मैं मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू ।
टुक एक तुम्हारै हाथ लगाऊं, तौ राजा रांम रिसालू ॥

जाति जुलाहा नांम कबीरा, बनि बनि फिरौं उदासी ।
आसि पासि तुम्ह फिरि फिरि बैसौ, एक माउ एक मासी ।।२७०।।

ताकूं रे कहा कीजै भाई,
तजि अंमृत बिषै सूं ल्यौ लाई ।। टेक ।।
बिष संग्रह कहा सुख पाया,
रंचक सुख कौं जनम गँवाया ।।
मन बरजै चित कह्यौ न करई,
सकति सनेह दीपक मैं परई ।।
कहत कबीर मोहि भगति उमाहा,
कृत करणीं जाति भया जुलाहा ।। २७१ ।।

रे सुख इब मोहि बिष भरि लागा,
इनि सुख डहके मोटे मोटे छत्रपति राजा ।। टेक ।।
उपजै विनसै जाइ बिलाई, संपति काहू कै संगि न जाई ।।
धन जोबन गरब्यौ संसारा, यहु तन जरि बरि ह्वैहै छारा ।
चरन कवल मन राखि ले धीरा, रांम रमत सुख कहै कबीरा ।।२७२।।

इब न रहूं माटी के घर मैं, इब मैं जाइ रहूं मिलि हरि मैं ।।टेक।।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजत कंपै मेरी छाती ।।
दसवैं द्वारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी ।।
चहुँ दिसि बैठे चारि पहरिया, जागत मुसि गये मोर नगरिया ।।
कहै कबीर सुनहु रे लोई, भांनड़ घड़ण संवारण सोई ।।२७३।।

कबीरा बिगर्‌या रांम दुहाइ, तुम्ह जिनि बिगरौ मेरे भाई ।।टेक।।
चंदन कै ढिग बिरष जु भैला, बिगरि बिगरि सो चंदनं ह्वैला ।।
पारस कौं जे लोह छिवैंगा, बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला ।।

गंगा मैं जे नीर मिलैगा, बिगरि बिगरि गंगोदिक ह्वैला।
कहै कबीर जे रांम कहैला, बिगरि बिगरि सो रांमहिं ह्वैला ॥२७४॥

रांम राइ भई बिकल मति मेरी, कै यहु दुनीं दिवांनीं तेरी ॥टेक॥
जे पूजा हरि नाहीं भावै, सो पूजनहार चढ़ावै ॥
जिहि पूजा हरि भल मांनैं, सो पूजनहार न जांनैं ॥
भाव प्रेम की पूजा, ताथैं भयौ देव थैं दूजा ॥
का कीजै बहुत पसारा, पूजी जै पूजनहारा ॥
कहै कबीर मैं गावा, मैं गावा आप लखावा ॥
जो इहिं पद मांहिं समांनां, सो पूजनहार सयांनां ॥ २७५ ॥

रांम राइ भई बिगूचनि भारी,
भले इन ग्यांनियन थैं संसारी ॥ टेक ॥
इक तप तीरथ औगाहैं, इक मांनि महातम चाहैं ॥
इक मैं मेरी मैं बीझैं, इक अहंमेव मैं रीझैं ॥
इक कथि कथि भरम लगांवैं, संमिता सी बस्त न पांवैं ॥
कहै कबीर का कीजै, हरि सूझै सो अंजन दीजै ॥ २७६ ॥

काया मंजसि कौन गुनां, घट भीतरि है मलनां ॥ टेक ॥
जौ तूं हिरदै सुध मन ग्यांनीं, तौ कहा बिरोलै पांनीं ॥
तूंबी अठ सठि तीरथ न्हाई, कड़वापण तऊ न जाई ॥
कहै कबीर बिचारी, भवसागर तारि मुरारी ॥ २७७ ॥

कैसैं तूं हरि कौ दास कहायौ,
करि बहु भेषर जनम गंवायौ ॥ टेक ॥
सुध बुध होइ भज्यौ नहिं सांईं, काछ्यौ ड्यंभ उदर कै तांईं ॥
हिरदै कपट हरि सूं नहीं साचौ, कहा भयौ जे अनहद नाच्यौ॥

झूठे फोकट कलू मंझारा, रांम कहैं ते दास नियारा ॥
भगति नारदी मगन सरीरा,
इहि बिधि भव तिरि कहै कबीरा ॥ २७८ ॥

रांम राइ इहि सेवा भल मांनैं,
जै कोई रांम नांम तत जांनैं ॥ टेक ॥
रे नर कहा पषालै काया, सो तत चीन्हि जहां थैं आया ॥
कहा बिभूति जटा पट बाँधें, काजल पैसि हुतासन साधें ॥
र रांम मां दोई अखिर सारा, कहै कबीर तिहूं लोक पियारा ॥२७९॥

इहि बिधि रांम सूं ल्यौ लाइ ।
चरन पाषैं निरति करि, जिभ्या विनां गुंण गाइ ॥ टेक ॥
जहां स्वांति बूंद न सीप साइर, सहजि मोती होइ ।
उन मोतियन मैं नीर पोयौ, पवन अंबर धोइ ॥
जहाँ धरनि बरषै गगन भीजै, चंद सूरज मेल ।
दोइ मिलि तहाँ जुड़न लागे, करत हंसा केलि ॥
एक बिरष भीतरि नदी चाली, कनक कलस समाइ ।
पंच सुवटा आइ बैठे, उदै भई बनराइ ॥
जहां बिछट्यौ तहां लाग्यौ, गगन बैठौ जाइ ।
जन कबीर बटाऊवा, जिनि मारग लियौ चाइ ॥ २८० ॥

तार्थैं मोहि नाचिवौ न आवै, मेरौ मन मंदला न बजावै ॥टेक॥
ऊभर था ते सूभर भरिया, त्रिष्णां गागरि फूटी ।
हरि चिंतत मेरौ मंदला भीनौं, भरम भोयन गयौ छूटी ॥
ब्रह्म अगनि मैं जरी जु ममिता, पाषंड अरू अभिमानां ।
काम चोलनां भया पुराना, मोपैं होइ न आना ॥
जे बहु रूप किये ते कीये, अब बहु रूप न होई ।
थाकी सौंज संग के बिछुरे, रांम नांम मसि धोई ॥

जे थे सचल अचल ह्वै थाके, करते बाद बिबादं ।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, भया रांम परसादं ॥२८१॥

अब क्या कीजै ग्यांन बिचारा, निज निरखत गत ब्यौहारा ।टेक।
जाचिग दाता इक पाया, धन दिया जाइ न खाया ॥
कोई ले भरि सकै न मूका, औरनि पैं जानां चूका ॥
तिस बाझ न जीव्या जाई, वो मिलै त घालै खाई ॥
वो जीवन भला कहाई, बिन मूंवां जीवन नांहीं ॥
घसि चंदन बनखंडि बारा, बिन नैंननि रूप निहारा ॥
तिहि पूत बाप इक जाया, बिन ठाहर नगर बसाया ॥
को जीवत ही मरि जांनैं, तौ पंच सयल सुख मांनैं ।
कहै कबीर सो पाया, प्रभू भेटत आप गंवाया ॥ २८२ ॥

अब मैं पायौ राजा रांम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही ॥ टेक ॥
बेद पुरान कहत जाकी साखी,
तीरथि ब्रति न छूटै जंम की पासी ॥
जाथैं जनम लहत नर आगैं, पाप पुनि दोऊ भ्रंम लागैं ॥
कहै कबीर सोई तत जागा,
मन भया मगन प्रेम सर लागा ॥ २८३ ॥

बिरहिनी फिरै है नाथ अधीरा ।
उपजि बिनां कछू समझि न परई,
बांझ न जांनैं पीरा ॥ टेक ॥
या बड बिथा सोई भल जांनैं, रांम बिरह सर मारी ।
कैसो जांनैं जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहारी ॥
संग की बिछुरी मिलन न पावै, सोच करै अरु काहै ।
जतन करै अरु जुगति बिचारै, रटै रांम कूं चाहै ॥

दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोहि राम मिलावै ।
दास कबीर मीन ज्यूं तलपै, मिलैं भलैं सचुपावै ॥ २८४ ॥

जातनि बेद न जांनैंगा जन सोई,
सारा भरम न जांनें रांम कोई ॥ टेक ॥
चषि बिन दिवस जिसी है संझा, ब्यावन पीर न जांनैं बंझा ॥
सूझै करक न लागै कारी, बैद बिधाता करि मोहि सारी ॥
कहै कबीर यहु दुख कासनि कहिये,
अपनें तन की आप ही सहिये ॥ २८५ ॥

जन की पीर हो राजा रांम भल जांनैं,
कहूं काहि को मांनैं ॥ टेक ॥
नैन का दुख बैंन जांनैं, बैंन का दुख श्रवनां ।
प्यंड का दुख प्रांन जांनैं, प्रांन का दुख मरनां ॥
आस का दुख प्यासा जांनैं, प्यास का दुख नीर ।
भगति का दुख रांम जांनैं, कहै दास कबीर ॥ २८६ ॥

तुम्ह बिन रांम कवन सौं कहिये,
लागी चोट बहुत दुख सहिये ॥ टेक ॥
बेध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै ॥
को जांनैं मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ।
तुम्ह से बैद न हमसे रोगी, उपजी बिथा कैसैं जीवै बियोगी ॥
निस बासुरि मोहि चितवत जाई, अजहूं न आइ मिले रांम राई ॥
कहत कबीर हमकौं दुख भारी,
बिन दरसन क्यूं जीवहि मुरारी ॥ २८७ ॥

---

(२८५) ख० प्रति में अंतिम पंक्ति इस प्रकार है—
लागी चोट बहुत दुख सहिये । देखो (२८७) की टेक ।

तेरा हरि नांमैं जुलाहा, मेरै रांम रमण का लाहा ।।टेक।।
दस सै सूत्र की पुरिया पूरी, चंद सूर दोइ साखी ।
अनत नांव गिनि लई म ंजूरी, हिरदा कवल मैं राखी ।।
सुरति सुमृति दोइ खूंटी कीन्हीं, आर ंभ कीया बमेकी ।
ग्यांन तत की नली भराई, बुनित आतमां पेषो ।।
अबिनासी धंन लई म ंजूरी, पूरी थापनि पाई ।
रन बन सोधि सोधि सब आये, निकटैं दिया बताई ।।
मन सूधा कौ कूच कियौ है, ग्यांन बिथरनीं पाई ।
जीव की गांठि गुढी सब भागी, जहां की तहां ल्यौ लाई ।।
बेठि बेगारि बुराई थाकी, अनभै पद्द परकासा ।
दास कबीर बुनत सच पाया, दुख संसार सब नासा ।।२८८।।

भाई रे सकहु त तनि बुनि लेहु रे,
पीछैं रांमहिं दोस न देहु रे ।। टेक ।।
करगहि एक बिनांनी, ता भींतरि पंच परांनीं ।।
तामैं एक उदासी, तिहि तणि बुणि सबै बिनासी ।।
जे तूं चौसठि बरियां धावा, नहीं होइ पंच सूं मिलावा ।।
जे तैं पांसै छसै तांणीं, तौ तूं सुख सूं रहै परांणीं ।।
पहली तणियां ताणां, पीछैं बुणियां बांणां ।।
तणि बुणि मुरतब कीन्हां, तब रांम राइ पूरा दीन्हां ।।
राछ भरत भइ संझा, तारुणीं त्रिया मन बंधा ।।
कहै कबीर बिचारी, अब छोछी नली ह ंमारी ।। २८९ ।।

वै क्यूं कासी तजैं मुरारी, तेरी सेवा चोर भये बनवारी ।।टेक।।
जोगी जती तपी संन्यासी, मठ देवल बसि परसैं कासी ।।
तीन बार जे नित प्रति न्हांवैं, काया भींतरि खबरि न पावैं ।।

देवल देवल फेरी देहीं, नांव निरंजन कबहुँ न लेहीं ॥
चरन बिरद कासी कौं न देहूं, कहै कबीर भल नरकहि जैहूं ॥२६०॥

तब काहे भूलौ बन जारे, अब आयौ चाहै संगि हंमारे ॥टेक॥
जब हंम बनजी लौंग सुपारी, तब तुम्ह काहे बनजी खारी ॥
जब हम बनजी परमल कसतूरी, तब तुम्ह काहे बनजी कूरी ॥
अंमृत छाड़ि हलाहल खाया, लाभ लाभ करि मूल गँवाया ॥
कहै कबीर हंम बनज्या सोई, जाथैं आवागवन न होई ॥२६१॥

परम गुर देखौ रिदै बिचारी, कछू करौ सहाइ हंमारी ॥टेक॥
लवानालि तंति एक संमि करि, जंत्र एक भल साजा।
सति असति कछू नहीं जानूं, जैसैं बजावा तैसैं बाजा ॥
चोर तुम्हारा तुम्हारी आग्या, मुसियत नगर तुम्हारा।
इनके गुनह हमह का पकरौ, का अपराध हमारा ॥
सेई तुम्ह सेई हम एकै कहियत, जब आपा पर नहीं जांनां।
ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, कहै कबीर मन मांनां ॥२६२॥

मन रे आइर कहां गयौ, ताथैं मोहि बैराग भयौ ॥ टेक ॥
पंच तत ले काया कीन्हीं, तत कहा ले कीन्हां।
करमौं के बसि जीव कहत हैं, जीव करम किनि दीन्हां ॥
आकास गगन पाताल गगन, दसौं दिसा गगन रहाई ले ॥
आंनंद मूल सदा परसोतम, घट बिनसै गगन न जाई ले ॥
हरि मैं तन है तन मैं हरि है, है पुंनि नांहीं सोई।
कहै कबीर हरि नांम न छाडूं, सहजैं होइ सु होई ॥ २६३ ॥

हंमारै कौंन सहै सिरि भारा,
सिर की सोभा सिरजनहारा ॥ टेक ॥
टेढी पाग बड़ जूरा, जरि भए भसम कौ कूरा ॥

अनहद कीं गुरी बाजी, तब काल द्रिष्टि मैं भागी ।
कहै कबीर रांम राया, हरि कैं रंगैं मूंड मुडाया ॥२९४॥

कारनि कौंन संवारै देहा, यहु तन जरि बरि ह्वै है षेहा ॥टेक॥
चोवा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरत काठ कै संगा ॥
बहुत जतन करि देह मुट्याई, अगनि दहै कै जंबुक खाई ॥
जा सिरि रचि रचि बांधत पागा, ता सिरि चंच सँवारत कागा ॥
कहि कबीर तन झूठा भाई, केवल रांम रह्यौ ल्यौ लाई ॥२९५॥

धंन धंधा व्यौहार सब, माया मिथ्या बाद ।
पांणीं नीर हलूर ज्यूं, हरि नांव बिना अपवाद ॥टेक॥
इक रांम नांम निज साचा, चित चेति चतुर घट काचा ॥
इस भरमि न भूलसि भोली, बिधनां की गति है औली ॥
जीवते कूं मारन धावै, मरते कौं बेगि जिलावै ॥
जाकै हुंहि जम से बैरी, सो क्यूं सोवै नींद घनेरी ॥
जिहि जागत नींद उपावै, तिहिं सोवत क्यूं न जगावै ॥
जलजंत न देखिसि प्रांनीं, सब दीसै झूठ निदांनीं ॥
तन देवल ज्यूं धज आछै, पड़ियां पछितावै पाछै ॥
जीवत ही कछू कीजै, हरि रांम रसांइन पीजै ॥
रांम नांम निज सार है, माया लागि न खोई ।
अंति कालि सिरि पोटली, ले जात न देख्या कोई ॥
कोई ले जात न देख्या, बलि विक्रम भोज ग्रस्टा ॥
काहू कै संगि न राखी, दीसै बीसल की साखी ॥
जब हंस पवन ल्यौ खेलै, पसर्यौ हाटिक जब मेलै ॥
मानिख जनम अवतारा, नां ह्वै है बारंबारा ॥
कबहूँ ह्वै किसा बिहांनां, तर पंखी जेम उडांनां ॥
सब आप आप कूं जांई, को काहू मिलै न भाई ॥

मूरिख मनिखा जनम गंवाया, बर कौडी ज्यूं डहकाया ॥
जिहि तन धन जगत भुलाया, जग राख्यौ परहरि माया ॥
जल अंजुरी जीवन जैसा, ताका है किसा भरोसा ॥
कहै कबीर जग धंधा, काहे न चेतहु अंधा ॥ २६६ ॥

रे चित चेति च्यंति लै ताही,
जा च्यंतत आपा पर नाहीं ॥ टेक ॥
हरि हिरदै एक ग्यांन उपाया, ताथैं छूटि गई सब माया ॥
जहां नाद न व्यंद दिवस नहीं राती, नहीं नर नारि नहीं कुल जाती ॥
कहै कबीर सरब सुख दाता, अविगत अलख अभेद विधाता ॥ २६७ ॥

सरवर तटि हंसणीं तिसाई,
जुगति विनां हरि जल पिया न जाई ॥ टेक ॥
पीया चाहै तौ लै खग सारी, उडि न सकै दोऊ पर भारी ॥
कुंभ लीयैं ठाढीं पनिहारी, गुंण विन नीर भरै कैसैं नारी ॥
कहै कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज सुभाइ मिले रांम राई ॥ २६८ ॥

भरथरी भूप भया वैरागी ।
बिरह बियोगी बनि बनि ढूंढै, वाकी सुरति साहिब सैं लागी ॥ टेक ॥
हसती घोड़ा गांव गढ गूडर, कनड़ा पा इक आगी ।
जोगी हूवा जांणि जग जाता, सहर उजीणीं त्यागी ॥
छत्र सिघासण चवर ढुलंता, राग रंग बहु आगी ।
सेज रमैंणीं रंभा होती, तासौं प्रीति न लागी ॥
सूर वीर गाढा पग रोप्या, इह बिधि माया त्यागी ।
सब सुख छाडि भज्या इक साहिब, गुरु गोरख ल्यौ लागी ॥
मनसा बाचा हरि हरि भाखै, गंध्रप सुत बड भागी ।
कहै कबीर कुदर भजि करता, अमर भये अणरागी ॥ २६९ ॥

(२६९) ख० प्रति में यह पद नहीं है ।

[राग केदारौ]

सार सुख पाईये रे, रंगि रमहु आत्मांरांम ॥ टेक ॥
बनह बसे का कीजिये, जे मन नहीं तजै बिकार ।
घर बन तत समि जिनि किया, ते बिरला संसार ॥
का जटा भसम लेपन कियें, कहा गुफा मैं बास ।
मन जीत्यां जग जीतिये, जौ विषया रहै उदास ॥
सहज भाइ जे ऊपजै, ताका किसा मांन अभिमांन ।
आपा पर समि चीनियैं, तब मिलै आतमांरांम ॥
कहै कबीर कृपा भई, गुर ग्यांन कह्या समझाइ ।
हिरदै श्री हरि भेटियै, जे मन अनतै नहीं जाइ ॥ ३०० ॥

है हरि भजन कौ प्रवांन ।
नींच पांवै ऊंच पदवी, वाजते नींसान ॥ टेक ॥
भजन कौ प्रताप ऐसो, तिरे जल पाषान ।
अधम भील अजाति गनिका चढ़े जात बिवांन ॥
नव लख तारा चलै मंडल, चलै ससिहर भांन ।
दास धूकौं अटल पदवी, रांम को दीवांन ॥
निगम जाकी साखि बोलैं, कहैं संत सुजांन ।
जन कबीर तेरी सरनि आयौ, राखि लेहु भगवांन ॥ ३०१ ॥

चलौ सखी जाइये तहां, जहां गयें पाइयैं परमांनंद ॥ टेक ॥
यहु मन आमन धूमनां, मेरौ तन छीजत नित जाइ ।
च्यंतामणि चित चोरियौ, ताथैं कछू न सुहाइ ॥
सुंनि सखी सुपिनैं की गति ऐसी, हरि आये हम पास ।
सोवत ही जगाइया, जागत भये उदास ॥
चलु सखी विलम न कीजियं, जब लग सास सरीर ।
मिलि रहिये जगनाथ सूं, यूं कहै दास कबीर ॥ ३०२ ॥

मेरे तन मन लागी चोट सठौरी ॥

बिसरे ग्यांन बुधि सब नाठी, भई बिकल मति बौरी ॥ टेक ॥

देह वदेह गलित गुन तीनूं, चलत अचल भइ ठौरी ।
इत उत जित कित द्वादस चितवत, यहु भई गुपत ठगौरी ॥
सोई पै जांनैं पीर हमारी, जिहि सरीर यहु व्यौरी ।
जन कबीर ठग ठग्यौ है बापुरौ, सुंनि संमानीं त्यौरी ॥३०३॥

मेरी अंखियां जांन सुजांन भई ।

देवर भरम सुसर संग तजि करि, हरि पीव तहां गई ॥ टेक ॥

बालपनैं के करम हमारे, काटे जांनि दई ।
बांह पकरि करि कृपा कीन्हीं, आप समींप लई ॥
पानीं की बूंद थें जिनि प्यंड साज्या, ता संगि अधिक करई ।
दास कबीर पल प्रेम न घटई, दिन दिन प्रीति नई ॥३०४॥

हो बलियां कब देखौंगी तोहि ।

अह निस आतुर दरसन कारनि, ऐसी व्यापै मोहि ॥टेक॥

नैन हमारे तुम्ह कूं चाहैं, रती न मानैं हारि ।
बिरह अगिन तन अधिक जरावै, ऐसी लेहु बिचारि ॥
सुनहुं हमारी दादि गुसांई, अब जिन करहु बधीर ।
तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामीं, काचै भांडै नीर ॥
बहुत दिनन के बिछुरे माधौ, मन नहीं बांधै धीर ।
देह छतां तुम्ह मिलहु कृपा करि, आरतिवंत कबीर ॥ ३०५ ॥

वै दिन कब आवैंगे माइ ।

जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ ॥ टेक ॥

हौं जांनूं जे हिल मिलि खेलूं, तन मन प्रांन समाइ ।
या कांमनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांम राइ ॥

मांहि उदासी माधौ चाहै, चितवत रैनि बिहाइ ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाइ ॥
यहु अरदास दास की सुंनिये, तन की तपति बुझाइ ।
कहै कबीर मिलै जे सांईं, मिलि करि मंगल गाइ ॥ ३०६ ॥

बाल्हा आव हमारे ग्रेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ॥टेक॥
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अदेह रे ।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे ॥
आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे ।
ज्यूं कांमीं कौं कांम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे ॥
है कोई ऐसा पर-उपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे ॥
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखें जीव जाइ रे ॥ ३०७ ॥

माधौ कब करिहौ दया ।
कांम क्रोध अहंकार व्यापै, नां छूटे माया ॥ टेक ॥
उतपति ब्यंद भयौ जा दिन थैं कबहूँ सच नहीं पायौ ।
पंच चोर संगि लाइ दिए हैं, इन संगि जनम गंवायौ ॥
तन मन डस्यौ भुजंग भांमिनीं, लहरी वार न पारा ।
सो गारडू मिल्यौ नहीं कबहूँ, पसरयौ बिष बिकराला ॥
कहै कबीर यहु कासूं कहिये, यहु दुख कोइ न जांनैं ।
देहु दीदार बिकार दूरि करि, तब मेरा मन मांनैं ॥ ३०८ ॥

मैं जन भूला तूं समझाइ ।
चित चंचल रहै न अटक्यौ, बिषै बन कूं जाइ ॥ टेक ॥
संसार सागर मांहि भूल्यौ, थक्यौ करत उपाइ ।
मोहनीं माया बाघनीं थैं, राखि लै रांम राइ ॥

---

(३०८) ख०—लहरी अंत न पारा ।

गोपाल सुनि एक बीनती, सुमति तन ठहराइ ।
कहै कबीर यहु कांम रिप है, मारै सबकूं ढाइ ॥ ३०६ ॥

भगति बिन भौजलि डूबत है रे ।
बोहिथ छाडि बैसि करि डूंडै,
वहुतक दुख सहै रे ॥ टेक ॥
बार बार जम पैं डहकावै, हरि कौ ह्वै न रहै रे ।
चेरी के बालक की नाईं, कासूं बाप कहै रे ॥
नलिनीं के सुवटा की नांईं, जग सूं राचि रहै रे ।
बंसा अगनि बंस कुल निकसै, आपहि आप दहै रे ॥
यहु संसार धार मैं डूबै, अधफर थाकि रहै रे ।
खेवट बिनां कवन भौ तारै, कैसैं पार गहै रे ॥
दास कबीर कहै समझावै, हरि की कथा जीवै रे ।
रांम कौ नांव अधिक रस मीठौ, बारंबार पीवै रे ॥३१०॥

चलत कत टेढौ टेढौ रे ।
नऊं दुवार नरक धरि मूंदे, तू दुरगंधि कौ बेढौ रे ॥ टेक ॥
जे जारै तौ होइ भसम तन, रहित किरम जल खाई ।
सूकर स्वांन काग कौ भखिन, तामैं कहा भलाई ॥
फूटे नैंन हिरदै नहीं सूझै, मति एकै नहीं जांनीं ।
माया मोह ममिता सूँ बांध्यौ, बूडि मूवौ बिन पांनीं ॥
बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नहीं अयांनां ।
कहै कबीर एक रांम भगति बिन, बूडे बहुत सयांनां ॥ ३११ ॥

अरे परदेसी पीव पिछांनि ।
कहा भयौ तोकौं समझि न परई, लागी कैसी बांनि ॥ टेक ॥
भोमि बिडाणी मैं कहा रातौ, कहा कियो कहि मोहि ।

लाहै कारनि मूल गमावै, समझावत हूँ तोहि ॥
निस दिन तोहि क्यूं नींद परत है, चितवत नांहीं ताहि।
जंम से बैरी सिर परि ठाढे, पर हथि कहा बिकाइ ॥
झूठे परपंच मैं कहा लागौ, ऊठै नांहीं चालि ।
कहै कबीर कछू बिलम न कीजै, कौनैं देखी काल्हि ॥ ३१२॥

भयौ रे मन पांहुनड़ौ दिन चारि ।
आजिक काल्हिक मांहि चलैगौ, ले किन हाथ सँवारि ॥टेक॥
सौंज पराई जिनि अपणावै, ऐसी सुणि किन लेह ।
यहु संसार इसौ रे प्रांणी, जैसा धूंवरि मेह ॥
तन धन जोबन अंजुरी कौ पांनीं, जात न लागै वार ।
सैंवल के फूलन परि फूल्यौ, गरब्यौ कहा गँवार ॥
खोटी खाटै खरा न लीया, कछू न जांनीं साटि ।
कहै कबीर कछू बनिज न कीयौ, आयौ थौ इहि हाटि ॥३१३॥

मंन रे राम नांमहि जांनि ।
थरहरी थूंनी परयौ मंदिर, सूतौ खूंटी तांनि ॥ टेक ॥
सैंन तेरी कोई न समझै, जीभ पकरी आंनि ।
पांच गज दोवटी मांगी, चूंन लीयौ सांनि ॥
बैसंदर षोषरी हांडी, चल्यौ लादि पलांनि ।
भाई वंध बोलाइ बहु रे, काज कीनौं आंनि ॥
कहै कबीर या मैं झूठ नांहीं, छाडि जीय की बांनि ।
रांम नांम निसंक भजि रे, न करि कुल की कांनि ॥ ३१४ ॥

प्रांणीं लाल औसर चल्यौ रे बजाइ ।
मुठी एक मठिया मुठि एक कठिया, संगि काहू कै न जाइ॥टेक॥
देहली लग तेरी मिहरी सगी रे, फलम्मा लग सगी माइ ।
मड़हट लूं सब लोग कुटंबी, हंस अकेलौ जाइ ॥

कहां वै लोग कहां पुर पटण, बहुरि न मिलबै आइ।
कहै कबीर जगनाथ भजहु रे, जन्म अकारथ जाइ ॥ ३१५ ॥

रांम गति पार न पावै कोई।
च्यंतामणि प्रभु निकटि छाडि करि,
भ्रंमि भ्रंमि मति बुधि खोई॥ टेक ॥
तीरथ बरत जपै तप करि करि, बहुत भांति हरि सोधै।
सकति सुहाग कहौ क्यूं पावै, अछता कंत बिरोधै ॥
नारी पुरिष बसैं इक संगा, दिन दिन जाइ अबोलै।
तजि अभिमान मिलै नहीं पीव कूं, ढूंढत बन बन डोलै।
कहै कबीर हरि अकथ कथा है, बिरला कोई जांनैं ॥
प्रेम प्रीति बेधी अंतर गति, कहूं काहि को मांनै ॥ ३१६ ॥

रांम बिनां संसार धंध कुहेरा,
सिरि प्रगट्या जंम का पेरा ॥ टेक ॥
देव पूजि पूजि हिंदू मूयें, तुरक मूयें हज जाई।
जटा बांधि बांधि योगी मूयें, इन मैं किनहूं न पाई ॥
कवि कवीनैं कविता मूयें, कापड़ी के दारौं जाई।
केस लूंचि लुंचि मूये बरतिया, इनमैं किनहूं न पाई ॥
धंन संचते राजा मूये, अरु ले कंचन भारी।
वेद पढ़ें पढि पंडित मूये, रूप भूले मूई नारी ॥
जे नर जोग जुगति करि जांनैं, खोजैं आप सरीरा।
तिनकूं मुकति का संसा नाहीं, कहत जुलाह कबीरा ॥३१७॥

कहूं रे जे कहिबे की होइ।
नां को जांनैं नां को मांनैं, तथैं अचिरज मोहि ॥ टेक ॥
अपनें अपनें रंग के राजा, मांनत नाहीं कोइ।
अति अभिमांन लोभ के घाले, चले अपन पौ खोइ ॥

मैं मेरी करि यहु तन खोयौ, समझत नहीं गँवार।
भौजलि अधफर थाकि रहे हैं, बूड़े बहुत अपार॥
मोहि आग्या दई दयाल दया करि, काहू कूं समझाइ।
कहै कबीर मैं कहि कहि हारयौ, अब मोहि दोस न लाइ॥३१८॥

एक कोस बन मिलांन न मेला।
बहुतक भाँति करै फुरमाइस, है असवार अकेला॥ टेक॥
जोरत कटक जु घेरत सब गढ, करतब झेली झेला।
जोरि कटक गढ तोरि पातिसाह, खेलि चल्यौ एक खेला॥
कूंच मुकांम जोग के घर मैं, कछू एक दिवस खटांनां।
आसन राखि बिभूति साखि दे, फुनि ले मटी उडांनां॥
या जोगी की जुगति जु जांनैं, सो सतगुर का चेला।
कहै कबीर उन गुर की कृपा थैं, तिनि सब भरम पछेला॥३१९॥

[राग मारू]

मन रे रांम सुमिरि रांम सुमिरि, रांम सुमिरि, भाई।
रांम नांम सुमिरन बिनां, बूड़त है अधिकाई॥ टेक॥
दारा सुत ग्रेह नेह, संपति अधिकाई।
यामैं कछू नांहिं तेरौ, काल अवधि आई॥
अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हां।
तेऊ उतरि पारि गये, रांम नांम लीन्हां॥
स्वांन सूकर कांग कीन्हौं, तऊ लाज न आई।
रांम नांम अंमृत छाड़ि, काहे बिष खाई॥
तजि भरम करम बिधि नखेद, रांम नांम लेही।
जन कबीर गुर प्रसादि, रांम करि सनेही॥ ३२०॥

रांम नांम हिरदै धरि, निरमोलिक हीरा।
सोभा तिहूं लोक, तिमर जाय त्रिबिधि पीरा ॥ टेक ॥
त्रिसनां नैं लोभ लहरि, कांम क्रोध नीरा।
मद मछर कछ मछ, हरिष सोक तीरा ॥
कांमनी अरू कनक भवर, बोये बहु बीरा।
जन कबीर नवका हरि, खेवट गुर कीरा ॥ ३२१ ॥

चलि मेरी सखी हो, वो लगन रांम राया।
जब तब काल बिनासै काया ॥ टेक ॥
जब लग लोभ मोह की दासी,
तीरथ ब्रत न छूटै जंम की पासी ॥
आवैंगे जम के घालैंगे बांटी,
यहु तन जरि बरि होइगा माटी ॥
कहै कबीर जे जन हरि रंगि राता,
पायौ राजा रांम परंम पद दाता ॥ ३२२ ॥

[राग टोडी]

तूं पाक परमांनंदे।
पीर पैकंबर पनह तुम्हारी, मैं गरीब क्या गंदे ॥ टेक ॥
तुम्ह दरिया सबही दिल भींतरि, परमांनंद पियारे।
नैंक नज़रि हम ऊपरि नांहीं, क्या कमिबखत हंमारे ॥
हिकमति करैं हलाल बिचारैं, आप कहांवैं मोटे।
चाकरी चोर निवालै हाजिर, सांईं सेती खोटे ॥
दांइम दूवा करद बजावैं, मैं क्या करूं भिखारी।
कहै कबीर मैं बंदा तेरा, खालिक पनह तुम्हारी ॥३२३॥

अब हम जगत गौंहन तैं भागे,
जग की देखि जुगति रांमहि दूंरि लागे ॥ टेक ॥
अयांन पनैं थैं बहु बैरांनें, संमझि परी तब फिरि पछितांनें ॥
लोग कहौ जाकै जो मनि भावै, लहैं भुवंगम कौन डसावै ॥
कबीर विचारि इहै डर डरिये, कहै का हो इहां नै मरिये ॥३२४॥

[राग भैरूं]

ऐसा ध्यान धरौ नरहरी, सबद अनाहद च्यंतन करी ॥टेक॥
पहली खोजौ पंचे-बाइ, बाइ ब्यंद ले गगन समाइ ॥
गगन जोति तहां त्रिकुटी संधि, रवि ससि पवनां मेलौ बंधि ॥
मन थिर होइत कवल प्रकासै, कंवला मांहि निरंजन बासै ॥
सतगुर संपट खोलि दिखावै, निगुरा होइ तौ कहां बतावै ॥
सहज लछिन ले तजौ उपाधि, आसण दिढ निद्रा पुनि साधि ॥
पुहप पत्र जहां हीरा मणीं, कहै कबीर तहां त्रिभवन धणीं ॥३२५॥

इहि विधि सेवियै श्री नरहरी, मन की दुबिध्या मन परहरी॥टेक॥
जहां नहीं जहां नहीं तहां कछू जांणि, जहां नहीं तहां लेहु पछांणि॥
नांही देखि न जइये भागि, जहां नहीं तहां रहिये लागि ॥
मन मंजन करि दसवैं द्वारि, गंगा जमुनां संधि बिचारि ॥
नादहि ब्यंद कि ब्यंदहि नाद, नादहि ब्यंद मिलै गोब्यंद ॥
देवी न देवा पूजा नहीं जाप, भाइ न बंध माइ नहीं बाप ॥
गुणातीत जस निरगुण आप, भ्रम जेवड़ी जग कीयौ साप ॥
तन नांहीं कब जब मन नांहि, मन परतीति ब्रह्म मन मांहि ॥
परहरि बकुला ग्रहि गुन डार, निरखि देखि निधि वार न पार ॥
कहै कबीर गुर परम गियांन, सुंनि मंडल मैं धरौ धियांन ॥
प्यंड परें जीव जैहै जहां, जीवत ही ले राखौ तहां ॥३२६॥

अलह अलख निरंजन देव, किहिं बिधि करौं तुम्हारी सेव ॥टेक॥
बिश्न सोई जाकौ बिस्तार, सोई कृस्न जिनि कीयौ संसार ॥
गोब्यंद ते ब्रह्मंडहि गहै, सोई रांम जे जुगि जुगि रहै ॥
अलह सोई जिनि उमति उपाई, दस दर खोलै सोई खुदाई ॥
लख चौरासी रब परवरै, सोई करीम जे एती करै ॥
गोरख सोई ग्यांन गमि गहै, महादेव सोई मन की लहै ॥
सिध सोई जो साधै इती, नाथ सोई जो त्रिभुवन जती ॥
सिध साधू पैकंबर हूवा, जपै सु एक भेष है जूवा ॥
अपरंपार का नांउ अनंत, कहै कबीर सोई भगवंत ॥ ३२७ ॥

तहां जौ रांम नांम ल्यौ लागै, तौ जुरा मरण छूटै भ्रम भागै ॥टेक॥
अगम निगम गढ रचि ले अवास, तहुवां जोति करै परकास ॥
चमकै बिजुरी तार अनंत, तहां प्रभू बैठे कवलाकंत ॥
अखंड मंडिल मंडित मंड, त्रि-स्नांन करै त्रीखंड ॥
अगम अगोचर अभि-अंतरा, ताकौ पार न पावै धरणींधरा ॥
अरध उरध बिचि लाइ ले अकास, तहुवां जोति करै परकास ॥
टारयौ टरै न आवै जाइ, सहज सुंनि मैं रह्यौ समाइ ॥
अबरन बरन स्यांम नहीं पीत, हाहू जाइ न गावै गीत ॥
अनहद सबद उठै झणकार, तहां प्रभू बैठे समरथ सार ॥
कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पंकज मैं लिया निवास ॥
द्वादस दल अभि-अंतरि म्यंत, तहां प्रभू पाइसि करिलै च्यंत ॥
अमिलन मलिन घांम नहीं छांहां, दिवस न राति नहां है तहां ॥
तहां न ऊगै सूर न चंद, आदि निरंजन करै अनंद ॥
ब्रह्मंडे सो प्यंडे जांनि, मांनसरोवर करि असनांन ॥
सोहं हंसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप ॥
काया मांहैं जांनैं सोई, जो बोलै सो आपै होई ॥
जोति मांहि जे मन थिर करै, कहै कबीर सो प्रांणी तिरै ॥३२८॥

एक अचंभा ऐसा भया, करणीं थैं कारण मिटि गया ॥टेक॥
करणी किया करम का नास, पावक मांहि पुहुप प्रकास ॥
पुहुप मांहि पावक प्रजरै, पाप पुंन दोऊ भ्रम टरै ॥
प्रगटी बास बासना धोइ, कुल प्रगट्यौ कुल घाल्यौ खोइ ॥
उपजी च्यंत च्यंत मिटि गई, भौ भ्रम भागा ऐसी भई ॥
उलटी गंग मेर कूं चली, धरती उलटि अकासहि मिली ।
दास कबीरं तत ऐसा कहै, ससिहर उलटि राह कौं गहै ॥३२९॥

है हजूरि क्या दूरि बतावै, दुंदर बांधें सुंदर पावै ॥टेक॥
सो मुलनां जो मन सूं लरै, अह निसि काल चक्र सूं भिरै ॥
काल चक्र का मरदै मांन, ता मुलनां कूं सदा सलांम ॥
काजी सो जो काया बिचारै, अह नसि ब्रह्म अगनि प्रजारै ॥
सुप्पनैं बिंद न देई झरनां, ता काजी कूं जुरा न मरणां ॥
सो सुलितांन जु द्वू सुर तांनैं, बाहरि जाता भींतरि आनैं ॥
गगन मंडल मैं लसकर करै, सो सुलितांन छत्र सिरि धरै ॥
जोगी गोरख गोरख करै, हिंदू रांम नांम उच्चरै ॥
मुसलमांन कहै एक खुदाइ,
कबीरा कौ स्वांमीं घटि घटि रह्यौ समाइ ॥ ३३० ॥

आऊंगा न जांऊंगा, मरूंगा न जीऊंगा ।
गुर के सबद मैं रमि रमि रहूंगा ॥ टेक ॥
आप कटोरा आपैं थारी, आपें पुरिखा आपैं नारी ॥
आप सदाफल आपैं नींबू, आपै मुसलमांन आपैं हिंदू ॥
आपैं मछ कछ आपै जाल, आपै झींवर आपैं काल ॥
कहै कबीर हम नांही रे नांही, नां हंम जीवत न मुवले मांहीं ॥३३१॥

हंम सब मांहि सकल हम मांहीं, हम थैं और दूसरा नांहीं ॥टेक॥
तीनि लोक मैं हमारा पसारा, आवागवन सब खेल हमारा ॥

खट दरसन कहियत हम भेखा, हमहीं अतीत रूप नहीं रेखा ॥
हमहीं आप कबीर कहावा, हम हीं अपनां आप लखावा ॥३३२॥

सो धन मेरे हरि का नांउं, गांठि न बांधौं बेचि न खांउं ॥टेक॥
नांउ मेरे खेती नांउ मेरे बारी, भगति करौं मैं सरनि तुम्हारी ॥
नांउ मेरे सेवा नांउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जांनौं दूजा ॥
नांउ मेरे बंधव नांव मेरे भाई, अंत की बिरियां नांव सहाई ॥
नांउ मेरे निरधन ज्यूं निधि पाई, कहै कबीर जैसैं रंक मिठाई ॥३३३॥

अब हरि हूं अपनौं करि लीनौं,
प्रेम भगति मेरौ मन भीनौं ॥ टेक ॥
जरै सरीर अंग नहीं मोरौं, प्रान जाइ तौ नेह न तोरौं ॥
च्यंतामणि क्यूं पाइए ठोली, मन दे रांम लियौ निरमोली ॥
ब्रह्मा खोजत जनम गवायौ, सोई रांम घट भीतरि पायौ ॥
कहै कबीर छूटो सब आसा, मिल्यौ रांम उपज्यौ बिसवासा ॥३३४॥

लोग कहैं गोवरधनधारी, ताकौ मोहि अचंभौ भारी ॥ टेक ॥
अष्ट कुली परवत जाके पग की रैंनां, सातौं सायर अंजन नैंनां ॥
ऐ उपमां हरि किती एक ओपै, अनेक मेर नख ऊपरि रोपै ॥
धरनि अकास अधर जिनि राखी, ताकी मुगधा कहैं न साखी ॥
सिव बिरंचि नारद जस गावैं, कहै कबीर वाको पार न पावैं ॥३३५॥

रांम निरंजन न्यारा रे, अंजन सकल पसारा रे ॥ टेक ॥
अंजन उतपति वो ऊंकार, अंजन मांड्या सब बिस्तार ॥
अंजन ब्रह्मा संकर इंद, अंजन गोपी संगि गोब्यंद ॥
अंजन बांणीं अंजन बेद, अंजन कीया नांनां भेद ॥
अंजन बिद्या पाठ पुरांन, अंजन फोकट कथहि गियांन ॥
अंजन पाती अंजन देव, अंजन की करै अंजन सेव ॥

अंजन नाचै अंजन गावै, अंजन भेष अनंत दिखावै ॥
अंजन कहौं कहां लग केता, दांन पुंनि तप तीरथ जेता ॥
कहै कबीर कोई बिरला जागै, अंजन छाड़ि निरंजन लागै ॥३३६॥

अंजन अलप निरंजन सार, यहै चीन्हि नर करहु बिचार ॥टेक॥
अंजन उतपति बरतनि लोई, बिना निरंजन मुक्ति न होई ॥
अंजन आवै अंजन जाइ, निरंजन सब घटि रह्यौ समाइ ॥
जोग ध्यांन तप सबै बिकार, कहै कबीर मेरे रांम अधार ॥३३७॥

एक निरंजन अलह मेरा, हिंदू तुरक दहूं नहीं नेरा ॥ टेक ॥
राखूं ब्रत न महरम जांनां, तिसही सुमिरूं जो रहै निदांनां ॥
पूजा करूं न निमाज गुजारूं, एक निराकार हिरदै नमसकारूं ॥
नां हज जांऊं न तीरथ पूजा, एक पिछांण्यां तौ क्या दूजा ॥
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा ॥३३८॥

तहां मुझ गरीब की को गुदरावै,
मजलसि दूरि महल को पावै ॥ टेक ॥
सतरि सहस सलार हैं जाकै, असी लाख पैकंबर ताकै ॥
सेख जु कहिय सहस अठ्यासी, छपन कोड़ि खेलिबे खासी ॥
कोड़ि तेतीसूं अरु खिलखांनां, चौरासी लख फिरै दिवांनां ॥
बाबा आदम पैं नजरि दिलाई, नबी भिस्त घनेरी पाई ॥
तुम्ह साहिब हम कहा भिखारी, देत जबाब होत बजगारी ॥
जन कबीर तेरी पनह समांनां, भिस्त नजीक राखि रहिमांनां ॥३३९॥

जौ जाचौं तौ केवल रांम, आंन देव सूं नांहीं कांम ॥ टेक ॥
जाकै सूरिज कोटि करैं परकास, कोटि महादेव गिरि कविलास ॥
ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरैं, दुर्गा कौटि जाकै मरदन करैं ॥
कोटि चंद्रमां गहैं चिराक, सुर तेतीसूं जीमैं पाक ॥

नौग्रह कोटि ठाढे दरबार, धरमराइ पैली प्रतिहार ॥
कोटि कुबेर जाकै भरै भंडार, लछमीं कोटि करैं सिंगार ॥
कोटि पाप पुनि ब्यौहरैं, इंद्र कोटि जाकी सेवा करैं ॥
जगि कोटि जाकै दरबार, गंध्रप कोटि करैं जैकार ॥
विद्या कोटि सबै गुंण कहैं, पारब्रह्म कौ पार न लहैं ॥
बासिग कोटि सेज बिसतरैं, पवन कोटि चौबारै फिरैं ॥
कोटि समुद्र जाकै पणिहारा, रोमावली अठारह भारा ॥
असंखि कोटि जाकै जमावली, रांवण सेन्यां जाथैं चली ॥
सहसबांह के हरे परांण, जरजोधन घाल्यौ खै मांन ॥
बावन कोटि जाकै कुटवाल, नगरी नगरी खेत्रपाल ॥
लट छूटी खेलैं बिकराल, अनत कला नटवर गोपाल ॥
कंद्रप कोटि जाकै लांवन करैं, घट घट भीतरि मनसा हरैं ॥
दास कबीर भजि सारंगपान, देहु अभै पद मांगौं दांन ॥३४०॥

मन न डिगै ताथैं तन न डराई,
केवल रांम रहे ल्यौ लाई ॥ टेक ॥
अति अथाह जल गहर गंभीर, बांधि जंजीर जलि बोरे हैं कबीर ॥
जल की तरंग उठि कटिहैं जंजीर, हरि सुमिरन तट बैठे हैं कबीर ॥
कहै कबीर मेरे संग न साथ, जल थल में राखै जगनाथ ॥३४१॥

भलैं नींदौ भलैं नींदौ भलैं नींदौ लोग,
तन मन रांम पियारे जोग ॥ टेक ॥
मैं बौरी मेरे रांम भरतार, ता कारंनि रचि करौं स्यंगार ॥
जैसैं धुबिया रज मल धोवै, हर-तप-रत सब निंदक खोवै ॥
न्यंदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप ॥
न्यंदक मेरे प्रांन अधार, बिन बेगारि चलावै भार ॥
कहै कबीर न्यंदक की बलिहारी, आप रहै जन पार उतारी ॥३४२॥

जौ मैं बौरा तौ रांम तोरा, लोग मरम का जांनैं मोरा ॥टेक॥
माला तिलक पहरि मनमानां, लोगनि रांम खिलौनां जांनां ॥
थोरी भगति बहुत अहंकारा, ऐसे भगता मिलैं अपारा ॥
लोग कहैं कबीर बौराना, कबीरा कौ मरम रांम भल जांनां ॥३४३॥

हरिजन हंस दसा लीये डोलै,
निर्मल नांव चवै जस बोलै ॥ टेक ॥
मानसरोवर तट के वासी, रांम चरन चित आंन उदासी ॥
मुकताहल बिन चंच न लावैं, मौंनि गहै कै हरि गुन गांवैं ॥
कऊवा कुबधि निकटि नहीं आवै, सो हंसा निज दरसन पावै ॥
कहै कबीर सोई जन तेरा, खीर नीर का करै नबेरा ॥ ३४४ ॥

सति रांम सतगुर की सेवा, पूजहु रांम निरंजन देवा ॥टेक॥
जल कै मंजन्य जो गति होई, मींनां नित ही न्हावै ।
जैसा मींनां तैसा नरा, फिरि फिरि जोनीं आवै ॥
मन मैं मैला तीर्थ न्हांवै, तिनि बैकुंठ न जांनां ।
पाखंड करि करि जगत भुलांनां, नांहिंन रांम अयांनां ॥
हिरदै कठोर मरै बानारसि, नरक न बंच्या जाई ।
हरि कौ दास मरै जे मगहरि, सेन्यां सकल तिराई ॥
पाठ पुरांन बेद नहीं सुमृत, तहां बसै निरकारा ।
कहै कबीर एक ही ध्यावो, बावलिया संसारा ॥ ३४५ ॥

क्या है तेरे न्हांईं धोईं, आतम-रांम न चीन्हां सोई ॥टेक॥
क्या घट ऊपरि मंजन कीयैं, भीतरि मैल अपारा ।
रांम नांम बिन नरक न छूटै, जे धोवै सौ बारा ॥
का नट भेष भगवां बस्तर, भसम लगावै लोई ।
ज्यूं दादुर सुरसुरी जल भीतरि, हरि बिन मुकति न होई ॥

परहरि कांम रांम कहि बौरे, सुनि सिख बंधू मोरी।
हरि कौ नांव अभै-पद-दाता, कहै कबीरा कोरी ॥ ३४६ ॥

पांणीं थैं प्रगट भई चतुराई, गुर प्रसादि परम निधि पाई ॥टेक॥
इक पांणीं पांणीं कूं धोवै, इक पांणीं पांणीं कूं मोहै ॥
पांणी ऊंचा पांणीं नींचा, ता पांणीं का लीजै सींचा ॥
इक पांणीं थैं प्यंड उपाया, दास कबीर रांम गुण गाया ॥३४७॥

भजि गोव्यंद भूलि जिनि जाहु,
मनिसा जनम कौ एही लाहु ॥ टेक ॥
गुर सेवा करि भगति कमाई, जौ तैं मनिषा देही पाई ॥
या देही कूं लोचैं देवा, सो देही करि हरि की सेवा ॥
जब लग जुरा रोग नहीं आया, तब लग काल ग्रसै नहिं काया ॥
जब लग हींण पड़ै नहीं बांणीं, तब लग भजि मन सारंगपांणीं ॥
अब नहीं भजसि भजसि कब भाई, आवैगा अंत भज्यौ नहीं जाई ॥
जे कछू करौ सोई तत सार, फिरि पछितावोगे वार न पार ॥
सेवग सो जो लागै सेवा, तिनहीं पाया निरंजन देवा ॥
गुर मिलि जिनि के खुले कपाट, बहुरि न आवै जोनीं वाट ॥
यहु तेरा औसर यहु तेरी बार, घट ही भींतरि सोचि बिचारि ॥
कहै कबीर जीति भावै हारि, वहु बिधि कह्यौ पुकारि पुकारि ॥३४८॥

ऐसा ग्यांन बिचारि रे मनां,
हरि किन सुमिरै दुख भंजनां ॥ टेक ॥
जब लग मैं मैं मेरी करै, तब लग काज एक नहीं सरै ॥
जब यहु मैं मेरी मिटि जाइ, तब हरि काज संवारै आइ ॥
जब लग स्यंघ रहै बन मांहि, तब लग यहु बन फूलै नांहिं ॥
उलटि स्याल स्यंघ कूं खाइ, तब यहु फूलै सब बनराइ ॥

जीत्या डूबै हारया तिरै, गुर प्रसाद जीवत ही मरै ॥
दास कबीर कहै समझाइ, केवल रांम रहौ ल्यौ लाइ ॥ ३४६ ॥

जागि रे जीव जागि रे।
चोरन कौ डर बहुत कहत हैं, उठि उठि पहरै लागि रे ॥टेक॥
ररा करि टोप ममां करि बखतर, ग्यांन रतन करि षाग रे।
ऐसैं जौ अजराइल मारै, मस्तकि आवै भाग रे ॥
ऐसी जागणीं जे को जागै, ता हरि देइ सुहाग रे।
कहै कबीर जाग्या ही चहिये, क्या गृह क्या बैराग रे ॥ ३५० ॥

जागहु रे नर सोवहु कहा, जम बटपारैं रूंधै पहा ॥टेक॥
जागि चेति कछू करौ उपाइ, मोटा बैरी है जंमराइ ॥
सेत काग आये वन मांहिं, अजहूँ रे नर चेतै नांहिं ॥
कहै कबीर तबै नर जागै, जंम का डंड मूंड मैं लागै ॥३५१॥

जाग्या रे नर नींद नसाई, चित चेत्यौ च्यंतामणि पाई ॥ टेक॥
सोवत सोवत बहुत दिन बीते, जन जाग्या तसकर गये रीते ॥
जन जागे का ऐसहि नांण, बिष से लागै बेद पुरांण ॥
कहै कबीर अब सोवौं नांहि, रांम रतन पाया घट मांहि ॥३५२॥

संतनि एक अहेरा लाधा, मिगनि खेत सबनि का खाधा ॥ टेक॥
या जंगल मैं पांचौं मृगा, एई खेत सबनि का चरिगा ॥
पारधीपनौं जे साधै कोई, अध खाधा सा राखै सोई ॥
कहै कबीर जो पंचौं मारै, आप तिरै और कूं तारै ॥ ३५३ ॥

हरि कौ विलोवनौं बिलोइ मेरी माई,
ऐसैं बिलोइ जैसें तत न जाई ॥ टेक ॥
तन करि मटकी मनहि बिलोइ, ता मटकी मैं पवन समोइ ॥

इला प्यंगुला सुषमन नारी, बेगि बिलोइ ठाढो छछिहारी ॥
कहै कबीर गुजरी बौरांनीं, मटकी फूटी जोति समांनीं ॥३५४॥

आसण पवन किये दिढ रहु रे, मन का मैल छाड़ि दे बैरे ॥टेक॥
क्या सींगी मुद्रा चमकायें, क्या बिभूति सब अंगि लगाये ॥
सो हिंदू सो मुसलमांन, जिसका दुरस रहै ईमांन ॥
सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियांन, काजी सो जांनैं रहिमांन ॥
कहै कबीर कछू आंन न कीजै, रांम नांम जपि लाहा लीजै ॥३५५॥

तार्थैं कहिये लोकाचार, बेद कतेब कथैं ब्यौहार ॥ टेक ॥
जारि बारि करि आवै देहा, मूंवां पीछैं प्रीति सनेहा ॥
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूंवां पित्र ले घालैं गंगा ॥
जीवत पित्र कूं अन न ख्वांवैं, मूंवां पांछैं प्यंड भरांवैं ॥
जीवत पित्र कूं बोलैं अपराध, मूंवां पीछैं देहि सराध ॥
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाइ पित्र क्यूं पावै॥३५६॥

बाप रांम सुंनि बीनती मोरी,
तुम्ह सूं प्रगट लोगनि सूं चोरी ॥ टेक ॥
पहलैं कांम मुगध मति कीया, ता भै कंपै मेरा जीया ॥
रांम राइ मेरा कह्या सुनीजै, पहले बकसि अब लेखा लीजै ॥
कहै कबीर बाप रांम राया, अबहूं सरनि तुम्हारी आया ॥३५७॥

अजहूं बीच कैसैं दरसन तोरा,
बिन दरसन मन मांनैं क्यूं मोरा ॥ टेक ॥
हमहि कुसेवग क्या तुम्हहि अजांनां, दुह मैं दोस कहौ किन रांमां॥
तुम्ह कहियत त्रिभवन पति राजा, मन बंछित सब पुरवन काजा ॥
कहै कबीर हरि दरस दिखावौ,
हमहि बुलावौ कै तुम्ह चलि आवौ ॥ ३५८ ॥

क्यूं लीजै गढ़ बंका भाई, दोवर कोट अरु तेवड़ खाई ॥टेक॥
कांम किवाड़ दुख सुख दरवांनीं, पाप पुंनि दरवाजा।
क्रोध प्रधांन लोभ बड दूंदर, मन मैं वासी राजा ॥
स्वाद सनाह टोप ममिता का, कुबधि कमांण चढ़ाई।
त्रिसना तीर रहै तन भींतरि, सुबधि हाथि नहीं आई ॥
प्रेम पलीता सुरति नालि करि, गोला ग्यांन चलाया।
ब्रह्म अग्नि ले दिया पलीता, एकै चोट ढहाया ॥
सत संतोष ले लरनैं लागे, तोरे दस दरवाजा।
साध संगति अरु गुर की कृपा थैं, पकरयौ गढ़ कौ राजा ॥
भगवंत भीर सकति सुमिरण की, काटि काल की पासी।
दास कबीर चढ़े गढ़ ऊपरि, राज दियौ अविनासी ॥ ३५९ ॥

रैंनि गई मति दिन भी जाइ, भवर उड़े बग बैठे आइ ॥टेक॥
काचै करवै रहै न पांनीं, हंस उड्या काया कुमिलांनीं ॥
थरहर थरहर कंपै जीव, नां जांनूं का करिहै पीव ॥
कऊवा उड़ावत मेरी बहियां पिरांनीं,
कहै कबीर मेरी कथा सिरांनीं ॥ ३६० ॥

काहे कूं भीति बनांऊं टाटी, का जांनू कहां परिहै माटी। टेक॥
कांहे कूं मंदिर महल चिणांऊं, मूंवां पीछैं घड़ी एक रहण न पाऊं ॥
काहे कूं छांऊं ऊंच उंचेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा ॥
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुंइ लीजै ॥३६१॥

[राग बिलावल]

बार बार हरि का गुण गावै, गुर गमि भेद सहर का पावै ॥टेक॥
आदित करै भगति आरंभ, काया मंदिर मनसा थंभ ॥
अखंड अहनिसि सुरष्या जाइ, अनहद बेन सहज मैं पाइ ॥

सोमवार ससि अमृत झरै, चाखत बेगि तपै निसतरै।
बांणीं रोक्यां रहै दुवार, मन मतिवाला पीवनहार ।।
मंगलवार ल्यौ मांहींत, पंच लोक की छाड़ौ रीत।
घर छाड़ै जिनि बाहिर जाइ, नहीं तर खरौ रिसावै राइ ।।
बुधवार करै बुधि प्रकास, हिरदा कवल मैं हरि का बास।
गुर गमि दोऊ एक समि करै, ऊरध पंकज थैं सूधा धरै ।।
ग्रिसपति बिषिया देइ बहाइ, तीनि देव एकै संगि लाइ।
तीनि नदी तहां त्रिकुटी मांहि, कुसमल धोवै अहनिसि न्हांहि ।।
सुक्र सुधा ले इहि ब्रत चढ़ै, अह निसि आप आप सूँ लड़ै।
सुरषी पंच राखियें सबै, तौ दूजी द्रिष्टि न पैसै कबै ।।
थावर थिर करि घट मैं सोइ, जोति दीवटी मेल्है जोइ।
बाहरि भीतरि भया प्रकास, तहां भया सकल करम का नास ।।
जब लग घट मैं दूजी आंण, तब लग महलि न पावै जांण।
रसिता रांम सूं लागै रंग, कहै कबीर ते निर्मल अंग ।। ३६२ ।।

रांम भजै सो जांनियें, जाकै आतुर नांहीं।
सत संतोष लीयैं रहै, धीरज मन मांहीं ।। टेक ।।
जन कौं कांम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णां न जरावै।
प्रफुलित आनंद मैं, गोव्यंद गुंण गावै ।।
जन कौं पर निंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषै।
काल कलपनां मेटि करि, चरनूं चित राखै ।।
जन सम द्रिष्टी सीतल सदा, दुबिधा नहीं आनैं।
कहै कबीर ता दास सूं, मेरा मन मांनैं ।। ३६३ ।।

माधौ सो न मिलै जासौं मिलि रहिये,
ता कारनि बर बहु दुख सहिये ।। टेक ।।
छत्रधार देखत ढहि जाइ, अधिक गरब थैं खाक मिलाइ ।।

अगम अगोचर लखी न जाइ, जहाँ का सहज फिरि तहां समाइ ॥
कहै कबीर झूठे अभिमान, सो हम सो तुम्ह एक समान ॥३६४॥

अहो मेरे गोव्यंद तुम्हारा जोर, काजी बकिवा हस्ती तोर ॥टेक॥
बांधि भुजा भलैं करि डारयौ, हस्ती कोपि मूंड मैं मारयौ ॥
भाग्यौ हस्ती चीसां मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी ॥
महावत तोकूं मारौं साटी, इसहि मरांऊं घालौं काटी ॥
हस्ती न तोरै धरै धियांन, वाकै हिरदै बसै भगवांन ॥
कहा अपराध संत हौ कीन्हां, बांधि पोट कुंजर कूं दीन्हां ॥
कुंजर पोट बहु बंदन करै, अजहूं न सूझै काजी अंधरै ॥
तीनि बेर पतियारा लीन्हां, मन कठोर अजहूं न पतीनां ॥
कहै कबीर हमारै गोव्यंद, चौथे पद मैं जन का ज्यंद ॥३६५॥

कुसल खेम अरु सही सलांमति, ए दोइ काकौं दीन्हां रे ।
आवत जात दुहूंधां लूटे, सर्व तत हरि लीन्हां रे ॥ टेक ॥
माया मोह मद मैं पीया, मुगध कहैं यहु मेरी रे ।
दिवस चारि भलैं मन रंजै, यहु नांहीं किस केरी रे ॥
सुर नर मुनि जन पीर अवलिया, मीरां पैदा कीन्हां रे ।
कोटिक भये कहां लूं बरनूं, सबनि पयांनां दीन्हां रे ॥
धरती पवन अकास जाइगा, चंद जाइगा सूरा रे ।
हम नांहीं तुम्ह नांही रे भाई, रहे रांम भरपूरा रे ॥
कुसलहि कुसल करत जग खीनां, पड़े काल भौ पासी ।
कहै कबीर सबै जग बिनस्या, रहे रांम अबिनासी रे ॥ ३६६ ॥

मन बनजारा जागि न सोई, लाहे कारनि मूल न खोई ॥टेक॥
लाहा देखि कहा गरबांनां, गरब न कीजै मूरिख अयांनां ॥
जिनि धन संच्या सो पछितांनां, साथी चलि गये हम भी जांनां ॥
निस अंधियारी जागहु बंदे, छिटकन लागे सबही संधे ॥

किसका बंधू किसकी जोई, चल्या अकेला संगि न कोई ॥
ढरि गये मंदिर टूटे वंसा, सूके सरवर उड़ि गये हंसा ॥
पंच पदारथ भरिहै खेहा, जरि बरि जायगी कंचन देहा ॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई, रांम नांम बिन और न कोई ॥३६७॥

मन पतंग चेतै नहीं, जल अंजुरी समांन ।
बिषिया लागि बिगूचिये, दाझिये निदांन ॥ टेक ॥
काहे नैंन अनंदियै, सूझत नहीं आगि ।
जनम अमोलिक खोइयै, सांपनि संगि लागि ॥
कहै कबीर चित चंचला, गुर ग्यांन कह्यौ समझाइ ।
भगति हींन न जरई जरै, भावै तहां जाइ ॥ ३६८ ॥

स्वादि पतंग जरै जरि जाइ,
अनहद सौं मेरौ चित न रहाइ ॥ टेक ॥
माया कै मदि चेति न देख्या, दुबिध्या मांहि एक नहीं पेख्या ॥
भेष अनेक किया बहु कीन्हां, अकल पुरिस एक नहीं चीन्हां ॥
केते एक मूये मरहिगे केते, केतेक मुगध अजहू नहीं चेते ॥
तंत मंत सब ओषद माया, केवल रांम कबीर दिढाया ॥३६९॥

एक सुहागनि जगत पियारी, सकल जीव जंत की नारी ॥टेक॥
खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै ॥
रखवाले का होइ बिनास, उतहिं नरक इत भोग बिलास ॥
सुहागनि गलि सोहै हार, संतनि बिख बिलसै संसार ॥
पीछैं लागी फिरै पचिहारी, संत की ठठकी फिरै बिचारी ॥
संत भजै वा पाछी पड़ै, गुर के सबदूं मारयौ डरै ॥
साषत कै यहु प्यंड परांइनि, हंमारी द्रिष्टि परै जैसैं डांइनि ॥
अब हम इसका पाया भेद, होइ कृपाल मिले गुरदेव ॥
कहै कबीर इब बाहरि परी, संसारी कै अचलि टिरी ॥ ३७० ॥

पारोसनि मांगै कंत हमारा,
पीव क्यूं बौरी मिलहि उधारा ॥ टेक ॥
मासा मांगै रती न देऊं, घटै मेरा प्रेम तौ कासनि लेऊं ॥
राखि परोसनि लरिका मोरा, जे कछु पाऊं सु आधा तोरा ॥
बन बन ढूंढौं नैन भरि जोऊं, पीव न मिलै तौ बिलखि करि रोऊं ॥
कहै कबीर यहु सहज हमारा, बिरली सुहागनि कंत पिआरा ॥३७१॥

रांम चरन जाकै रिदै बसत है, ता जन कौ मन क्यूं डोलै ॥
मानौं अठ सिध्य नव निधि ताकै, हरषि हरषि जस बोलै ॥टेक॥
जहां जहां जाइ तहां सच पावै, माया ताहि न झोलै ।
बारंबार बरजि विषिया तैं, लै नर जौ मन तोलै ॥
ऐसी जे उपजै या जीय कै, कुटिल गांठि सब खोलै ।
कहै कबीर जब मन परचौ भयौ, रहै रांम कै बोलै ॥३७२॥

जंगल मैं का सोवनां, औघट है घाटा ॥
स्यंघ बाघ गज प्रजलै, अरु लंबी बाटा ॥ टेक ॥
निस बासुरि पेड़ा पड़ै, जमदांनीं लूटै ।
सूर धीर साचै मतै, सोई जन छूटै ॥
चालि चालि मन माहरा, पुर पटण गहियें ।
मिलिये त्रिभुवन नाथ सूं, निरभै होइ रहिये ॥
अमर नहीं संसार मैं, बिनसै नर-देही ॥
कहै कबीर वेसास सूं, भजि रांम सनेही ॥ ३७३ ॥

[राग ललित]

रांम ऐसौ ही जांनि जपौ नरहरी,
माधव मदसूदन बनवारी ॥ टेक ॥
अनदिन ग्यांन कथैं घरियार, धूंवां धौलह रहै संसार ॥
जैसैं नदी नाव करि संग, ऐसैं हीं मात पिता सुत अंग ॥

सबहि नल दुल मलफ लकीर, जल बुदबुदा ऐसो आहि सरीर ॥
जिभ्या रांम नांम अभ्यास, कहै कबीर तजि गरभ बास ॥३७४॥

रसनां रांम गुन रमि रस पीजै,
गुन अतीत निरमोलिक लीजै ॥ टेक ॥
निरगुन ब्रह्म कथौ रे भाई, जा सुमिरत सुधि बुधि मति पाई ॥
बिष तजि रांम न जपसि अभागे, का बूड़े लालच के लागे ॥
ते सब तिरे राम रस स्वादी, कहै कबीर बूड़े बकबादी ॥३७५॥

निबरक सुत ल्यौ कोरा, रांम मोहि मारि कलि बिष बोरा ॥टेक॥
उन देस जाइबो रे बाबू, देखिबो रे लोग किन किन खैबू लो ॥
उड़ि कागा रे उन देस जाइबा, जासूं मेरा मन चित लागा लो ।
हाट ढूंढ़ि ले, पटनपुर ढुंढ़ि ले, नहीं गांव कै गोरा लो ॥
जल बिन हंस निसह बिन रबू,
कबीरा कौ स्वांमीं पाइ परिकैं मनैंबू लो ॥३७६॥

[राग बसंत]

सो जोगी जाकै सहज भाइ, अकल प्रीति की भीख खाइ ॥टेक॥
सबद अनाहद सींगी नाद, काम क्रोध बिषिया न बाद ॥
मन मुद्रा जाकै गुर कौ ग्यांन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यांन ॥
मनहीं करन कौ करै सनांन, गुर कौ सबद ले ले धरै धियांन ॥
काया कासी खोंजै बास, तहां जोति सरूप भयौ परकास ॥
ग्यांन मेषली सहज भाइ, बंक नालि कौ रस खाइ ॥
जोग मूल कौ देइ बंद, कहि कबीर थिर होइ कंद ॥ ३७७ ॥

मेरौ हार हिरांनौं मैं लजाऊं, सास दुरासनि पीव डराऊँ ॥टेक॥
हार गुह्यौ मेरौ रांम ताग, बिचि बिचि मान्यक एक लाग ॥
रतन प्रवालै परम जोति, ता अंतरि अंतरि लागे मोति ॥

पंच सखी मिलिहैं सुजांन, चलहु तजई ये त्रिबेणी न्हान ॥
न्हाइ धोइ कैं तिलक दीन्ह, नां जानूं हार किनहूं लीन्ह ॥
हार हिरांनौं जन बिमल कीन्ह, मेरौ आहि परोसनि हार लीन्ह ॥
तीनि लोक की जांनैं पीर, सब देव सिरोमनि कहै कबीर ॥३७८॥

नहीं छाड़ौं बाबा रांम नांम,
मोहि और पढ़न सूं कौन कांम ॥ टेक ॥
प्रहलाद पधारे पढ़न साल, संग सखा लीयें बहुत बाल ॥
मोहि कहा पढ़ावै आल जाल, मेरी पाटी मैं लिखि दे श्रीगोपाल ॥
तब संनां मुरकां कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बंधायौ बेगि आइ ॥
तूं राम कहन की छाड़ि बांनि, बेगि छुड़ाऊं मेरौ कह्यौ मांनि ॥
मोहि कहा डरावै बार बार, जिनि जल थल गिर कौ कियौ प्रहार ॥
बांधि मारि भावै देह जारि, जे हूं रांम छाडौं तौ मेरे गुरहि गारि ॥
तब काढ़ि खड़ग कोप्यौ रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ ॥
खंभा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्यौ नख बिदारि ॥
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रगट कियौ भगति भेव ॥
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद ऊबार्यौ अनेक बार ॥३७९॥

हरि कौ नांउ तत त्रिलोक सार, लै लीन भये जे उतरे पार ॥टेक॥
इक जंगम इक जटाधार, इक अंगि बिभूति करै अपार ॥
इक मुनियर इक मनहूं लीन, ऐसैं होत होत जग जात खीन ॥
इक आराधै सकति सीव, इक पड़दा दे दे बधै जीव ॥
इक कुलदेव्यां कौ जपहि जाप, त्रिभवनपति भूले त्रिविध ताप ॥
अंनहि छाड़ि इक पीवहि दूध, हरि न मिलै बिन हिरदै सूध ॥
कहै कबीर ऐसैं विचार, राम बिना को उतरे पार ॥ ३८० ॥

हरि बोलि सूवा बार बार, तेरी ढिग मींनां कछू करि पुकार ।टेक।
अंजन मंजन तजि बिकार, सतगुरु समझायौ तत-सार ॥

साध संगति मिलि करि बसंत, भौ बंद न छूटैं जुग जुगंत ॥
कहै कबीर मन भया अनंद, अनंत कला भेटे गोब्यंद ॥ ३८१ ॥

बनमाली जांनैं वन की आदि, रांम नांम बिन जनम बादि ।टेक।
फूल जु फूले रुति बसंत, जामैं मोहि रहे सब जीव जंत ॥
फूलनि मैं जैसैं रहै तबास, यूं घटि घटि गोब्यंद है निवास ॥
कहै कबीर मनि भया अनंद, जगजीवन मिलियौ परमानंद ॥३८२॥

मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज, मूल घटै सिरि बधै ब्याज ।टेक।
नाइक एक बनिजारे पांच, बैल पचीस कौ संग साथ ॥
नव बहियां दस गौंनि आहि, कसनि बहतरि लागे ताहि ॥
सात सूत मिलि बनिज कीन्ह, कर्म पयादौ संग लीन्ह ॥
तीन जगाती करत रारि, चल्यौ है बनिज वा बनज झारि ॥
बनिज खुटानौं पूंजी टूटि, षाडू दह दिसि गयौ फूटि ॥
कहै कबीर यहु जन्म बाद, सहजि समांनूं रही लादि ॥ ३८३ ॥

माधौ दारन दुख सह्यौ न जाइ,
मेरी चपल बुधि तातैं कहा बसाइ ॥ टेक ॥
तन मन भींतरि बसै मदन चोर, जिनि ग्यांन रतन हरि लीन्ह मोर ॥
मैं अनाथ प्रभू कहूं काहि, अनेक बिगूचे मैं को आहि ॥
सनक सनंदन सिव सुकादि, आपण कवलापति भये ब्रह्मादि ॥
जोगी जंगम जती जटाधार, अपनैं औसर सब गये हैं हारि ॥
कहै कबीर रहु संग साथ, अभिअंतरि हरि सूं कहौ बात ॥
मन ग्यांन जांनि कैं करि बिचार, रांम रमत भौ तिरिबौ पार ॥३८४॥

तूं करी डर क्यूं न करै गुहारि,
तूं बिन पंचाननि श्री मुरारि ॥ टेक ॥
तन भींतरि बसै मदन चोर, तिनि सरबस लीनौं छोरि मोर ॥
मांगैं देइ न बिनै मांन, तकि मारै रिदा मैं कांम बांन ॥

मैं किहि गुहरांऊं आप लागि, तू करी डर बड़े बड़े गये हैं भागि ॥
ब्रह्मा विष्णु अरु सुर मयंक, किहि किहि नहीं लावा कलंक ॥
जप तप संजम सुचि ध्यांन, बंदि परे सब सहित ग्यांन ॥
कहि कबीर उबरे द्वै तीनि, जा परि गोबिंद कृपा कीन्ह ॥३८५॥

ऐसौ देखि चरित मन मोह्यौ मोर,
ताथैं निस बासुरि गुन रमौं तोर ॥टेक॥
इक पढ़हिं पाठ इक भ्रमैं उदास, इक नगन निरंतर रहैं निवास ॥
इक जोग जुगति तन हूंहिं खींन, ऐसैं रांम नांम संगि रहैं न लीन ॥
इक हूंहि दीन इक देहि दांन, इक करैं कलापी सुरा पांन ॥
इक तंत मंत औषध बांन, इक सकल सिध राखैं अपांन ॥
इक तीर्थ ब्रत करि काया जीति, ऐसैं रांम नाम सूं करैं न प्रीति ॥
इक धोम घोटि तन हूंहि स्यांम, यूं मुकति नहीं बिन रांम नाम ॥
सत गुर तत कह्यौ बिचार, मूल गह्यौ अनभै बिसतार ॥
जुरा मरण थैं भये धीर, रांम कृपा भई कहि कबीर ॥३८६॥

सब मदिमाते कोई न जाग,
ताथैं संग ही चोर घर मुसन लाग ॥टेक॥
पंडित माते पढ़ि पुरांन, जोगी माते धरि धियांन ॥
संन्यासी माते अहंमेव, तपा जु माते तप कै भेव ॥
जागे सुक उधव अक्रूर, हणवंत जागे लै लंगूर ॥
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नांमां जै देव ॥
ए अभिमांन सब मन के कांम, ए अभिमांन नहीं रहीं ठांम ॥
आतमां रांम कौ मन बिश्रांम, कहि कबीर भजि रांम नांम ॥३८७॥

चलि चलि रे भवरा कवल पास, भवरी बोलै अति उदास ।टेक।
तैं अनेक पुहप कौ लियौ भोग, सुख न भयौ तब बढ़यौ है रोग ॥
हौं ज कहत तोसूं बार बार, मैं सब बन सोध्यौ डार डार ॥

दिनां चारि के सुरंग फूल, तिनहि देखि कहा रह्यौ है भूल ॥
या बनास्पती मैं लागैगी आगि, तब तूं जैहै कहां भागि ॥
पहुप पुरांने भये सूक, तब भवरहि लागी अधिक भूख ॥
उड्यौ न जाइ बल गयौ है छूटि, तब भवरी रूंनी सीस कूटि ॥
दह दिसि जोवै मधुप राइ, तब भवरी ले चली सिर चढ़ाइ ॥
कहै कबीर मन कौ सुभाव, रांम भगति बिन जम कौ डाव ॥३८८॥

आवध रांम सबै करम करिहूं,
सहज समाधि न जम थैं डरिहूं ॥ टेक ॥
कुंभरा ह्वै करि बासन धरिहूं, धोबी ह्वै मल धोऊं।
चमरा ह्वै करि रंगौं अघौरी, जाति पांति कुल खोऊं ॥
तेली ह्वै तन कोल्हू करिहौं, पाप पुंनि दोऊ पीरौं।
पंच बैल जब सूध चलाऊँ, रांम जेवरिया जोरूं ॥
छत्री ह्वै करि खड़ग सँभालूं, जोग जुगति दोउ साधूं।
नऊवा ह्वै करि मन कूं मूंडूं, बाढ़ी ह्वै कर्म बाढूं ॥
अवधू ह्वै करि यहु तन धूतौं, बधिक ह्वै मन मारूं।
बनिजारा ह्वै तन कूं बनिजूं, जूवारी ह्वै जम हारूं ॥
तन करि नवका मन करि खेवट, रसनां करऊं बाडारूं ॥
कहि कबीर भौसागर तिरिहूं, आप तिरूं बप तारूं ॥ ३८९ ॥

[राग मालीगौड़ी]

पंडिता मन रंजिता, भगति हेत ल्यौ लाइ रे।
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर, और कारण जाइ रे ॥ टेक ॥
दांम छै पणि कांम नांहीं, ग्यांन छै पणि धंध रे।
श्रवण छै पणि सुरति नांहीं, नैंन छै पणि अंध रे ॥

जाकै नाभि पदम सु उदित ब्रह्मा, चरन गंग तरंग रे ।
कहै कबीर हरि भगति वांछूं, जगत गुर गोब्यंद रे ॥३९०॥

बिष्णु ध्यांन सनान करि रे, बाहरि अंग न धोइ रे ।
साच बिन सीझसि नहीं, कांई ग्यान दृष्टैं जोइ रे ॥ टेक ॥
जंजाल मांहैं जीव राखै, सुधि नहीं सरीर रे ।
अभिअंतरि भेदै नहीं, कांईं बाहरि न्हावै नीर रे ॥
निहकर्म नदी ग्यांन जल, सुंनि मंडल मांहि रे ।
औधूत जोगी आतमां, कांईं पेड़ैं संजमि न्हाहि रे ॥
इला प्यंगुला सुषमनां, पछिम गंगा बालि रे ।
कहै कबीर कुसमल झड़ैं, कांईं मांहि लौ अंग पषालि रे ॥३९१॥

भजि नारदादि सुकादि बंदित, चरन पंकज भांमिनीं ।
भजि भजिसि भूषन पिया मनोहर, देव देव सिरोवनीं ॥टेक॥
बुधि नाभि चंदन चरचिता, तन रिदा मंदिर भीतरा ।
रांम राजसि नैंन बांनीं, सुजान सुंदर सुंदरा ॥
बहु पाप परबत छेदनां, भौ ताप दुरिति निवारणां ।
कहै कबीर गोब्यंद भजि, परमांनंद बंदित कारणां ॥३९२॥

[राग कल्यांन]

ऐसैं मन लाइ लै रांम रसनां, कपट भगति कीजै कौंन गुणां ॥टेक॥
ज्यूं मृग नादैं बेध्यौ जाइ, प्यंड परै वाकौ ध्यांन न जाइ ॥
ज्यूं जल मींन हेत करि जांनि, प्रांन तजै बिसरै नहीं बांनि ॥
भ्रिंगी कीट रहै ल्यौ लाइ, ह्वै लै लीन भ्रिंग ह्वै जाइ ॥
रांम नांम निज अमृत सार, सुमरि सुमिरि जन उतरे पार ॥
कहै कबीर दासनि कौ दास,
अब नहीं छाडौं हरि के चरन निवास ॥ ३९३ ॥

[राग सारंग]

यहु ठग ठगत सकल जग डोलै,
गवन करै तब मुषह न बोलै ॥ टेक ॥
तूं मेरौ पुरिषा हौं तेरी नारी, तुम्ह चलतैं पाथर थैं भारी ॥
बालपनां के मींत हमारे, हमहि छाड़ि कत चले हो निनारे ॥
हम सूं प्रीति न करि री बौरी, तुम्हसे केते लागे ढौरी ॥
हम काहू संगि गये न आये, तुम्ह से गढ हम बहुत बसाये ॥
माटी की देही पवन सरीरा, ता ठग सूं जन डरै कबीरा ॥३९

धंनि सो घरी महूरत्य दिनां,
जब ग्रिह आये हरि के जनां ॥ टेक ॥
दरसन देखत यहु फल भया, नैंनां पटल दूरि ह्वै गया ॥
सब्द सुनत संसा सब छूटा, श्रवन कपाट बजर था तूटा ॥
परसत घाट फेरि करि घड़या, काया कर्म सकल झड़ि पड़या ॥
कहै कबीर संत भल भाया, सकल सिरोमनि घट मैं पाया ॥३९५॥

[राग मलार]

जतन बिन मृगनि खेत उजारे ।
टारे टरत नहीं निस बासुरि, बिडरत नहीं बिडारे ॥ टेक ॥
अपनें अपनें रस के लोभी, करतब न्यारे न्यारे ।
अति अभिमांन बदत नहीं काहू, बहुत लोग पचि हारे ॥
बुधि मेरी किरषी, गुरं मेरौ बिझुका, अखिर दोइ रखवारे ।
कहै कबीर अब खान न देहूं, बरियां भली संभारे ॥ ३९६ ॥

हरि गुन सुमरि रे नर प्रांणी ।
जतन करत पतन ह्वै जैहै, भावै जांणम जांणीं ॥ टेक ॥
छीलर नीर रहै धूं कैसैं, को सुपिनैं सच पावै ।

सूकित पांन परत तरवर थैं, उलटि न तरवरि आवै ॥
जल थल जीव डहके इन माया, कोई जन उवर न पावै।
रांम अधार कहत हैं जुगि जुगि, दास कबीरा गावै ॥ ३६७ ॥

[राग धनाश्री]

जपि जपि रे जीयरा गोब्यंदो, हित चित परमानंदो रे ।
बिरही जन कौ बाल हौ, सब सुख आंनंदकंदो रे ॥ टेक ॥
धन धन झीखत धन गयौ, सो धन मिल्यौ न आये रे ।
ज्यूं बन फूली मालती, जन्म अबिरथा जाये रे ॥
प्रांणीं प्रीति न कींजिये, इहि झूठै संसारो रे ।
धूंवां केरा धौलहर, जात न लागै बारो रे ॥
माटी केरा पूतला, काहे गरब कराये रे ।
दिवस चारि कौ पेखनौं, फिरि माटी मिलि जाये रे ॥
कांमीं रांम न भावई, भावै बिषै बिकारो रे ।
लोह नाव पाहन भरी, बूडत नांहीं बारो रे ॥
नां मन मूवा न मरि सक्या, नां हरि भजि उतर्‍या पारो रे ।
कबीरा कंचन गहि रह्यौ, काच गहै संसारो रे ॥ ३६८ ॥

न कछु रे न कछू रांम बिनां ।
सरीर धरे की रहै परंमगति, साध संगति रहनां ॥ टेक ॥
मंदिर रचत मास दस लागे, बिनसत एक छिनां ।
झूठे सुख कै कारनि प्रांनीं, परपंच करत घनां ॥
तात मात सुत लोग कुटंब मैं, फूल्यो फिरत मनां ।
कहै कबीर रांम भजि बौरे, छाड़ि सकल भ्रमनां ॥ ३६९ ॥

कहा नर गरबसि थोरी बात ।
मन दस नाज, टका दस गंठिया, टेढौ टेढौ जात ॥ टेक ॥
कहा लै आयौ यहु धन कोऊ, कहा कोऊ लै जात ।

दिवस चारि की है पतिसाही ज्यूं बनि हरियल पात ॥
राजा भयौ गांव सौ पाये, टका लाख दस ब्रात ।
रावन होत लंक कौ छत्रपति, पल मैं गई बिहात ॥
माता पिता लोक सुत बनिता, अंति न चले संगात ।
कहै कबीर रांम भजि बौरे, जनम अकारथ जात ॥ ४०० ॥

नर पछिताहुगे अंधा ।
चेति देखि नर जमपुरि जैहै, क्यूं बिसरौ गोब्यंदा ॥ टेक ॥
गरभ कुंडिनल जब तूं बसता, उरध ध्यांन ल्यौ लाया ।
उरध ध्यांन मृत मंडलि आया, नरहरि नांव भुलाया ॥
बाल बिनोद छहूं रस भीनां, छिन छिन मोह बियापै ।
विष अंमृत पहिचांनन लागौ, पांच भांति रस चाखै ॥
तरन तेज पर त्रिय मुख जोवै, सर अपसर नहीं जांनैं ।
अति उदमादि महामद मातौ, पाप पुंनि न पिछांनैं ॥
प्यंडर केस कुसुम भये धौला, सेत पलटि गई बांनीं ।
गया क्रोध मन भया जु पावस, कांम पियास मंदांनीं ॥
तूटी गांठि दया धरम उपज्या, काया कवल कुमिलांनां ।
मरती बेर बिसूरन लागौ, फिरि पीछैं पछितांनां ॥
कहै कबीर सुनहुं रे संतौ, धन माया कछू संगि न गया ।
आई तलब गोपाल राइ की, धरती सैंन भया ॥ ४०१ ॥

लोका मति के भोरा रे ।
जौ कासी तन तजै कबीरा, तौ रांमहि कहा निहोरा रे ॥टेक॥
तब हम वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा ।
ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, यूं ढुरि मिल्या जुलाहा ॥
रांम भगति परि जाकौ हित चित, ताकौ अचिरज काहा ।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीतें जाइ जुलाहा ॥

कहै कबीर सुनहु रे संतौ, भ्रमि परै जिनि कोई ।
जस कासी तस मगहर ऊसर, हिरदै रांम सति होई ॥ ४०२ ॥

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै,
तेज पुंज तहां प्रांन उतारै ॥ टेक ॥

पाती पंच पहुप करि पूजा,
देव निरंजन और न दूजा ॥

तनमन सीस समरपन कीन्हां,
प्रगट जोति तहां आतम लीनां ॥

दीपक ग्यांन सबद धुनि घंटा,
परंम पुरिख तहां देव अनंता ॥

परम प्रकास सकल उजियारा,
कहै कबीर मैं दास तुम्हारा ॥ ४०३ ॥

———

(३) रमैंणी

[राग सूहै]

तूं सकल गहगरा, सफ सफा दिलदार दीदार ॥
तेरी कुदरति किनहूं न जांनीं, पीर मुरीद काजी मुसलमांनों ॥
देवी देव सुर नर गण गंध्रप, ब्रह्मा देव महेसुर ॥
तेरी कुदरति तिनहूँ न जांनीं ॥ टेक ॥

काजी सो जो काया बिचारै, तेल दीप मैं बाती जारै ॥
तेल दीप मैं बाती रहै, जोति चीन्हि जे काजी कहै ॥
मुलनां बंग देइ सुर जांनां, आप मुसला बैठा तांनीं ॥
आपुन मैं जे करै निवाजा, सो मुलनां सरबत्तरि गाजा ॥
सेष सहज मैं महल उठावा, चंद सूर विचि तारी लावा ॥
अर्ध उर्ध विचि आंनि उतारा, सोई सेष तिहूं लोक पियारा ॥
जंगम जोग बिचारै जहूंवां, जीव सीव करि एकै ठऊवां ॥
चित चेतनि करि पूजा लावा, तेतौ जंगम नांउं कहावा ॥
जोगी भसम करै भौ मारी, सहज गहै विचार बिचारी ॥
अनभै घट परचा सूं बोलै, सो जोगी निहचल कदे न डोलै ॥
जैंन जीव का करहु उबारा, कौंण जीव का करहु उधारा ॥
कहां बसै चौरासी का देव, लहौ मुकति जे जांनौं भेव ॥
भगता तिरण मतै संसारी, तिरण तत ते लेहु बिचारी ॥
प्रीति जांनि रांम जे कहै, दास नांउ सो भगता लहै ॥
पंडित चारि बेद गुंण गावा, आदि अंति करि पूत कहावा ॥
उतपति परलै कहौ विचारी, संसा घालौ सबै निवारी ॥

अरधक उरध क ये संन्यासी, ते सब लागि रहैं अविनासी ॥
अजरावर कौं डिढ करि गहै, सो संन्यासी उन्मन रहै ॥
जिहि घर चाल रची ब्रह्मंडा, पृथमीं मारि करी नव खंडा ॥
अबिगत पुरिस की गति लखी न जाइ, दास कबीर अगह रहे ल्यो लाई॥१॥

---

(१) ख० प्रति में इसके आगे यह रमैंणी है—

[ग्रंथ बावनी]

बावन आखिर लोकत्री सब कुछि इनहीं मांहि ॥
ये सब पिरि पिरि जाहिगे, सो आखिर इनमैं नांहि ॥
तुरक मुरी कत जानिये, हिंदू बेद पुरान ॥
मन समझन के कारनै, कछू एक पढ़िये ज्ञान ॥
जहां बोल तहां आखिर आवा, जहां अबोल तहीं मन न लगावा
बोल अबोल मंझि है सोई, जे कुछि है ताहि लखै न कोई ॥
ओ अंकार आदि मैं जाना, लिखि करि मेटै ताहि न माना ॥
ओ ऊंकार करै जस कोई, तस लिखि मरेणां न होई ॥
कका कवल किरणि मैं पावा, अरि ससि बिगास सेपट नहीं आवा ॥
अस जे जहां कुसम-रस पावा, तौ अकह कहा कहि का समझावा ॥
खखा इहै खोरि मनि आवा, खोरहिं छाड़ि चहूं दिस धावा ॥
ख समहि जानि पिमां करि रहै, तौ हो दून पेव अखै पद लहै ॥
गगा गुर के वचन पिछाना, दूसर बात न धरिबे काना ॥
सोई बिंहगम कवहूं न जाई, अगम गहै नहि गगन रहाई ॥
घघा घटि घटि निमसै सोई, घट फाटा घट कवहूं न होई ॥
ता घट मांहि घाट जो पावा, सुघटि छाड़ि औघट कत आवा ॥
नाना निरखि सनेह करि, निरवाले संदेह,
नाहीं देखि न भाजिये, प्रेम सयानप येह ॥
चचा चरित चित्र है भारी, तजि बिचित्र चेतहु चितकारी ॥
चित्र बिचित्र रहै औडेरा, तजि बिचित्र चित राखि चितेरा ॥
छछा इहै छत्रपति पासा, तिहिं छाक न रहै छाड़ि करि आसा ॥
रे मन तूं छिन छिन समझाया, तहां छाड़ि कत आप बधाया ॥
जजा जे जानै तौ दुरमति हारी, करि बासि काया गांव ।
रिण रोक्या भाजै नहीं, तौ सूरा थारौ नाव ॥

[सतपदी रमैंणी]

कहन सुनन कौं जिहि जग कीन्हा, जग भुलांन सो किनहूं न चीन्हां।
सत रज तम थैं कीन्हीं माया, आंपण मांझै आप छिपाया ॥
ते तौ आहि अनंद सरूपा, गुन पल्लव बिस्तार अनूपा ।।
साखा तत थैं कुसम गियांनां. फल सो आछा रांम का नांमां ॥

झझा उरझि सुरझि नहीं जाना, रहि मुखि झझखि झझखि परवाना ॥
कत झखि झखि औरनि समझावा झगरौ कीये झगरियौ पावा ॥
नना निकटि जु घटि रहै, दूरि कहां तजि जाइ ॥
जा कारणि जग ढूँढियो, नेड़ै पायौ ताहि ॥
टटा विकट घाट है माहीं, खोलि कपाट महील जब जाहीं ।।
रहै लपटि जहि घटि परयौ आई, देखि अटल टलि कतहूं न जाई ।।
ठठा ठौर दूरि ठग नीरा, नीठि नीठि मन कीया धीरा ॥
जिहि ठगि ठगि सकल जग खावा, सो ठग ठग्यौ ठौर मन आवा ॥
डडा डर उपजै डर जाई, डरही मैं डर रह्यौ समाई ॥
जो डर डरै तौ फिरि डर लागै, निडर होइ तौ डरि डर भागै ॥
ढढा ढिग कत ढूंढै आना, ढूंढत ढूंढत गये पराना ॥
चढि सुमेर ढूंढि जग आवा, जिहि गढ गढ्या सुगढ मैं पावा ॥
णणारि णरूं तौ नर नाहीं करै, ना फुनि नवै न संचरै ॥
धनि जनम ताहीं कौ गिणां, मेरे एक तजि जाहि घणां ॥
तता अतिर तिरयौ नहीं गाई, तन त्रिभुवन मैं रह्यौ समाई ॥
जे त्रिभुवन तन मांहि समावै, तौ ततैं तन मिल्या सचुपावै ॥
थथा अथाह थाह नहीं आवा, वो अथाह यहु थिरि न रहावा ।।
थोरै थलि थानै आरंभै, तौ बिनहीं थंभै मंदिर थंभै ॥
ददा देखि जुरे बिनसन हार, जस न देखि तस राखि विचार ।।
दसवै द्वारि जब कुंची दीजै, तब दयाल को दरसन कीजै ॥
धधा अरधैं उरध न वेरा, अरधैं उरधैं मंझि बसेरा ॥
अरधैं त्यागि उरध जब आवा, तब उरधैं छांड़ि अरध कत धावा ॥
नना निस दिन निरखत जाई, निरखत नैन रहे रतवाई ॥
निरखत निरखत जब जाइ पावा, तब ले निरखै निरख मिलावा ॥

सदा अचेत चेत जीव पंखी, हरि तरवर करि वास ।
झूठै जगि जिनि भूलसि जियरे, कहन सुनन की आस ॥

सूक बिरख यहु जगत उपाया, समझि न परै बिखम तेरी माया ॥
साखा तीनि पत्र जुग चारी, फल दोइ पाप पुंनि अधिकारी ॥
स्वाद अनेक कथ्या नहीं जांहीं, किया चरित सो इन मैं नांहीं ॥

पपा अपार पार नहीं पावा, परम जोति सैं परचो आवा ॥
पांचौं इंद्री निग्रह करै, तब पाप पुंनि दोऊ न संचरै ॥
फफा बिन फूलां फल होई, ता फल फंक लहै जो कोई ॥
दूंणी न पड़ै फूंक विचारै, ताकी फूंक सबै तन फारै ॥
बबा बंदहि बंद मिलावा, बंदहि बिंद न बिछुरन पावा ॥
जे बंदा बंदि गहि रहै, तौ बंदिग होइ सबै बंद लहै ॥
भभा भेदै भेद नहीं पावा, अरभै भांनि ऐसो आवा ॥
जो बाहिरि सो भीतरि जाना, भयौ भेद भूपति पहिचाना ॥
ममां मन सौं काज है, मनमान्यां सिधि होइ ॥
मनहीं मन सौं कहै कबीर, मन सौं मिल्या न कोइ ॥
ममां मूल गह्यां मन माना, मरमी होइ सु मरमही जाना ॥
मति कोई मन सौं मिलता बिलमावै, मगन भया तैं सोगति पावै ॥
जजा सुतन जीवतहीं जरावै, जोबन जारि जुगति सो पावै ॥
अं संजरि बुजरि जरि बरिहै, तब जाइ जोति उजारा लहै ॥
ररा सरस निरस करि जानैं, निरस होइ सुरस करि मानैं ॥
यहु रस बिसरै सो रस होई, सो रस रसिक लहै जे कोई ॥
लला लहीं तौ भेद है, कहूँ तौ कौ उपगार ॥
बटक बीज मैं रमि रह्या, ताका तीन लोक बिस्तार ॥
ववा वोइहि जाणिये, इहि जाण्यां वो होइ ॥
वोह अरु यहु जबहीं मिल्या, तब मिलत न जाणै कोइ ॥
ससा सो नीका करि सोधै, घट परचा की बात निरोधै ॥
घट परचौ जे उपजै भाव, मिलै ताहि त्रिभुवनपति राव ॥
षषा खोजि परे जे कोई, जे खोजै सो बहुरे न होई ॥
खोजि बूझि जे करै बिचारा, तौ भौजल तिरत न लागै बारा ॥

तेतौ आहि निनार निरंजनां, आदि अनादि न आंन ।
कहन सुनन कौं कीन्ह जग, आपै आप भुलांन ॥
जिनि नटवै नटसारी साजी, जो खेलै सो दीसै बाजी ॥
सो अपरा थैं जोगति ढीठी, सिव बिरंचि नारद नहीं दीठी ॥
आदि अंति जो लीन भये हैं, सहजैं जांनि संतोखि रहे हैं ॥
सहजैं रांम नांम ल्यौ लाई, रांम नांम कहि भगति दिढाई ॥
रांम नांम जाका मन मांनां, तिनि तौ निज सरूप पहिचांनां ॥
निज सरूप निरंजनां, निराकार अपरंपार अपार ।
रांम नांम ल्यौ लाइस जियरे, जिनि भूलै बिस्तार ॥
करि बिसतार जग धंधै लाया, अंध काया थैं पुरिष उपाया ॥
जिहि जैसी मनसा तिहि तैसा भावा, ताकूं तैसा कीन्ह उपावा ॥
तेतौ माया मोह भुलांनां, खसम रांम सो किनहूं न जांनां ॥
जिनि जांन्यां ते निरमल अंगा; नहीं जांन्यां ते भये भुजंगा ॥
ता मुखि बिष आवै बिष जाई, ते बिष ही बिष मैं रहै समाई ॥
माता जगत भूत सुधि नांहीं, भ्रंमि भूले नर आवैं जांहीं ॥
जांनि बूझि चेतै नहीं अंधा, करम जठर करम के फंधा ॥

ससा शोई शेज नू वारै, शोई शाव शदेह निवारै ॥
अति सुख बिशरै परम शुख पावै, शो अस्त्री सो कंत कहावै ॥
हहा होइ होत नहीं जानै, जब होइ तबै मन मानै ॥
है तो सही लहै जे कोई, जब वो होइ तब यहु न होई ॥
ससा उन मन से मन लावै, अनत न जाइ परसं सुख पावै ॥
अरु जे तहां प्रेम ल्यौ लावै, तो डालह लहै लैहि चरन समावै ॥
पषा खिरत षपत नहीं चेते, षपत षपत गये जुग कैसे ॥
अब जुग जानि जोरि मन रहै, तौ जहां थै बिछुरयौ सो थिर लहै ॥
बावन अषिर जोरे आंनि, एको अषिर सक्या न जांनि ॥
सति का शब्द कबीरा कहै, पूछौ जाई कहां मन रहै ॥
पंडित लोगनि कौ बौहार, ग्यानवंत कौं तन बिचारि ॥
जाकै हिरदै जैसी होई, कहै कबीर लहैगा सोई ॥ २ ॥

करम का बांध्या जीयरा, अह निसि आवै जाइ ।
मनसा देही पाइ करि, हरि बिसरै तौ फिर पीछैं पछिताइ ॥
तौ करि त्राहि चेति जा चंधा, तजि परकीरति भजि चरन गोब्यंदा ॥
उदर कूप तजौ ग्रभ वासा, रे जीव रांम नांम अभ्यासा ॥
जगि जीवन जैसैं लहरि तरंगा, खिन सुख कूं भूलसि बहु संगा ॥
भगति कौ हींन जीवन कछू नांहीं, उतपति परलै वहुरि समांहीं॥
भगति हीन अस जीवनां, जन्म मरन बहु काल ।
आश्रम अनेक करसि रे जियरा, रांम बिनां कोइ न करै प्रतिपाल॥
सोई उपाव करि यहु दुख जाई, ए सब परहरि बिसै सगाई ॥
माया मोह जरै जग आगी, ता संगि जरसि कवन रस लागी ॥
त्राहि त्राहि करि हरी पुकारा, साध संगति मिलि करहु विचारा॥
रे रे जीवन नहीं विश्रांमां, सब दुख खंडन रांम कौ नांमां ॥
रांम नांम संसार मैं सारा, रांम नांम भौ तारनहारा ॥
सुम्रित वेद सबै सुनें, नहीं आवै कृत काज ।
नहीं जैसैं कुंडिल वनित मुख, मुख सोभित बिन राज ॥
अब गहि रांम नांम अबिनासी, हरि तजि जिनि कतहूं कै जासी॥
जहां जाइ तहां तहां पतंगा, अब जिनि जरसि समझि बिष संगा ॥
चोखा रांम नांम मनि लीन्हां, भ्रिंगी कीट भ्यंन नहीं कीन्हां ॥
भौसागर अति वार न पारा, ता तिरबे का करहु बिचारा ॥
मनि भावै अति लहरि बिकारा, नहीं गमि सूझै वार न पारा ॥
भौसागर अथाह जल, तामैं बोहिथ रांम अधार ।
कहै कबीर हम हरि सरन, तब गोपद खुर बिस्तार ॥ २ ॥

[बड़ी अष्टपदी रमैंणी]

एक बिनांनीं रच्या बिनांन, सब अयांन जो आपै जांन ॥
सत रज तम थैं कीन्हीं माया, चारि खांनि बिस्तार उपाया ॥

पंच तत्त ले कीन्ह बंधानं, पाप पुंनि मांन अभिमानं ॥
अहंकार कीन्हें माया मोहू, संपति बिपति दीन्हीं सब काहू ॥
भले रे पोच अकुल कुलवंतां, गुंणी निरगुणीं धंन नीधनवंतां ॥
भूख पियास अनहित हित कीन्हां, हेत मोर तोर करि लीन्हां ॥
पंच स्वाद ले कीन्हां बंधू, बंधे करम औ आहि अबंधू॥
अवर जीव जंत जे आहीं, संकुट सोच बियापै ताहीं ॥
निंद्या अस्तुति मांन अभिमांना, इनि झूठै जीव हत्या गियांनां ॥
बहु बिधि करि संसार भुलावा, झूठै दोजगि साच लुकावा ॥
माया मोह धन जोबनां, इनि बंधे सब लोइ ।
झूठै झूठ बियापिया कबीर, अलख न लखई कोइ ॥
झूठनि झूठ साच करि जांनां, झूठनि मैं सब साच लुकांनां ॥
धंध बंध कीन्ह बहुतेरा, क्रम बिबर्जित रहै न नेरा ।
षट दरसंन आश्रम षट कीन्हां, षट रस खाटि कांम रस लीन्हां॥
चारि बेद छह सास्त्र बखानैं, बिद्या अनंत कथैं को जांनैं ॥
तप तीरथ कीन्हें ब्रत पूजा, धरम नेम दांन पुंन्य दूजा ॥
और अगम कीन्हैं ब्यौहारा, नहीं गमि सूझै वार न पारा ॥
लीला करि करि भेख फिरावा, ओट बहुत कछू कहत न आवा ॥
गहन ब्यंद कछू नहीं सूझै, आपन गोप भयौ आगम बूझै ॥
भूलि परयौ जीव अधिक डराई, रजनीं अंधकूप ह्वै आई ॥
माया मोह उनवैं भरपूरी, दादुर दांमिनि पवनां पूरी ॥
तरिपै बरिषै अखंड धारा, रैंनि भांमनीं भया अँधियारा ॥
तिहि बिवोग तजि भये अनाथा, परे निकुंज न पावैं पंथा ॥
बेद न आहि कहूं को मानैं, जानि बूझि मैं भया अयानैं ॥
नट बहु रूप खेलै सब जांनैं, कला केर गुन ठाकुर मांनैं ॥
औ खेलै सब ही घट मांहीं, दूसर कै लेखै कछु नाहीं ॥
जाके गुन सोई पै जांनैं, और को जांनैं पार अयानैं ॥

भले रे पोच औसर जब आवा, करि सनमांन पूरि जम पावा ॥
दांन पुंन्य हम दिहूं निरासा, कब लग रहूँ नटारंभ काछा ॥
फिरत फिरत सब चरन तुरांनैं, हरि चरित अगम कथै को जांनैं ॥
गण गंध्रप मुनि अंत न पावा, रह्यौ अलख जग धंधै लावा ॥
इहि बाजी सिव बिरंचि भुलांनां, और बपुरा को क्यंचित जांनां ॥
त्राहि त्राहि हम कीन्ह पुकारा, राखि राखि साईं इहि बारा ॥
कोटि ब्रह्मंड गहि दीन्ह फिराई, फल कर कीट जनम बहुताई ॥
ईस्वर जोग खरा जब लीन्हां, टर्‌यौ ध्यांन तप खंड न कीन्हां ॥
सिध साधिक उनथैं कहु कोई, मन चित अस्थिर कहु कैसैं होई ॥
लीला अगम कथै को पारा, बसहु समींप कि रहौ निनारा ॥

खग खोज पीछैं नहीं, तूं तत अपरंपार ।
बिन परचै का जांनियैं, सब झूठे अहंकार ॥

अलख निरंजन लखै न कोई, निरभै निराकार है सोई ॥
सुंनि असथूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौ नहीं पेखा ॥
बरन अबरन कथ्यौ नहीं जाई, सकल अतीत घट रह्यौ समाई ॥
आदि अंति ताहि नहीं मधे, कथ्यौ न जाई आहि अकथे ॥
अपरंपार उपजै नहीं बिनसै, जुगति न जांनियैं कथिये कैसैं ॥

जस कथिये तस होत नहीं, जस है तैसा सोइ ।
कहत सुनत सुख उपजै, अरु परमारथ होइ ॥

जांनसि नहीं कस कथसि अयांनां, हम निरगुन तुम्ह सरगुन जांनां ॥
मति करि हींन कवन गुन आंहीं, लालचि लागि आसिरै रहाई ॥
गुंन अरु ग्यांन दोऊ हम हींनां, जैसी कुछ बुधि बिचार तस कीन्हां ॥
हम मसकीन कछू जुगति न आवै, जे तुम्ह दरवौ तौ पूरि जन पावै ॥
तुम्हारे चरन कवल मन राता, गुन निरगुन के तुम्ह निज दाता ॥
जहुवां प्रगटि बजावहु जैसा, जस अनभै कथिया तिनि तैसा ॥
बाजै जंत्र नाद धुनि होई, जे बजावै सो औरै कोई ॥

बाजी नाचै कौतिग देखा, जो नचावै सो किनहूं न पेखा ॥

आप आप थैं जांनियैं, है पर नाहीं सोइ ।
कबीर सुपिनैं केर धंन ज्यूं, जागत हाथि न होइ ॥

जिनि यहु सुपिनां फुर करि जांनां, और सबै दुखयादि न आंनां ॥
ग्यांन हीन चेतै नहीं सूता, मैं जाग्या बिष हर भै भूता ॥
पारधी बांन रहै सर सांधें, बिषम बांन मारै बिष बांधें ॥
काल अहेड़ी संझ सकारा, सावज ससा सकल संसारा ॥
दावानल अति जरै बिकारा, माया मोह रोकि ले जारा ॥
पवन सहाइ लोभ अति भइया, जम चरचा चहुं दिसि फिरि गइया ॥
जम के चर चहुं दिसि फिरि लागे, हंस पंखेरुवा अब कहां जाइबे ॥
केस गहैं कर निस दिन रहई, जब धरि ऐंचै तब धरि चहई ॥
कठिन पासि कछू चलै न उपाई, जंम दुवारि सीझे सब जाई ॥
सोई त्रास सुनि रांम न गावै, मृगत्रिष्णां झूठी दिन धावै ॥
मृत काल किनहूं नहीं देखा, दुख कौं सुख करि सबही लेखा ॥
सुख करि मूल न चीन्हसि अभागी, चीन्हैं बिनां रहै दुख लागी ॥
नींब काट रस नींब पियारा, यूं बिष कूं अंमृत कहै संसारा ॥
बिष अंमृत एकै करि सांनां, जिनि चीन्हयां तिनहीं सुख मांनां ॥
अछित राज दिन दिनहि सिराई, अंमृत परहरि करि बिष खाई ॥
जांनि अजांनि जिन्है बिष खावा, परे लहरि पुकारैं धावा ॥
बिष के खांयें का गुंन होई, जा बेद न जांनैं परि सोई ॥
मुरछि मुरछि जीव जरिहै आसा, कांजी अलप बहु खीर बिनासा ॥
तिल सुख कारनि दुख अस मेरू, चौरासी लख लीया फेरू ॥
अलप सुख दुख आहि अनंता, मन मैंगल भूल्यौ मैमंता ॥
दीपक जोति रहै इक संगा, नैंन नेह मांनूं परै पतंगा ॥
सुख बिश्रांम किनहूं नहीं पावा, परहरि साच झूठ दिन धावा ॥
लालच लागे जनम सिरावा, अंति काल दिन आइ तुरावा ॥

जब लग है यहु निज तन सोई, तब लग चेति न देखै कोई ॥
जब निज चलि करि किया पयांनां, भयौ अकाज तब फिरि पछितांनां॥
मृगत्रिष्णां दिन दिन ऐसी, अब मोहि कछू न सुहाइ ।
अनेक जतन करि टारियें, करम पासि नहीं जाइ ॥
रे रे मन बुधिवंत भंडारा, आप आप ही करहु विचारा॥
कवन सयांन कौंन बौराई, किहि दुख पइये किहि दुख जाई ॥
कवन हरिख कौ विष मैं जांनां, को अनहित को हित करि मांनां॥
कवन सार को आहि असारा, को अनहित को आहि पियारा ॥
कवन साच कवन है झूठा, कवन करू को लागै मीठा ॥
किहि जरियै किहि करियें अनंदा, कवन मुकति को गल के फंदा ॥
रे रे मन मोहि व्यौरि कहि, हौं तत पूछौं तोहि ।
संसै सूल सबै भई, समझाई कहि मोहि ॥
सुंनि हंसा मैं कहूं बिचारी, त्रिजुग जोनि सबै अंधियारी ॥
मनिषा जन्म उत्तिम जौ पावा, जांनूं रांम तौ सयांन कहावा ॥
नहीं चेतै तौ जनम गंमावा, परयौं बिहांन तब फिरि पछतावा ॥
सुख करि मूल भगति जौ जांनैं, और सबै दुख या दिन आंनैं॥
अंमृत केवल रांम पियारा, और सबै बिष कं भंडारा ॥
हरिख आहि जौ रमियैं रांमां, और सबै बिसमां के कांमां ॥
सार आहि संगति निरवानां, और सबै असार करि जांनां ॥
अनहित आहि सकल संसारा, हित करि जांनियैं रांम पियारा ॥
साच सोई जे थिरह रहाई, उपजै बिनसै झूठ ह्वै जाई ॥
मींठा सो जो सहजैं पावा, अति कलेस थैं करू कहावा ॥
नां जरियै नां कीजै मैं मेरा, तहां अनंद जहां राम निहोरा ॥
मुकति सोज आपा पर जांनैं, सो पद कहा जु भरमि भुलांनैं ॥
प्रांननाथ जग जीवनां, दुरलभ रांम पियार ।
सुत सरीर धन प्रग्रह कबीर, जीये रे तरवर पंख बसियार ॥

रे रे जीय अपनां दुख न संभारा, जिहिं दुख व्याप्या सब संसारा ॥
माया मोह भूले सब लोई, क्यंचित लाभ मांनिक दोयौ खोई ॥
मैं मेरी करि बहुत बिगूता, जननीं उदर जन्म का सूता ॥
बहुतैं रूप भेष बहु कीन्हां, जुरा मरन क्रोध तन खीनां ॥
उपजै बिनसै जोनि फिराई, सुख कर मूल न पावै चाही ॥
दुख संताप कलेस बहु पावै, सो न मिलै जे जरत बुझावै ॥
जिहि हित जीव राखिहै भाई, सो अनहित ह्वै जाइ बिलाई ॥
मोर तोर करि जरे अपारा, मृग त्रिष्णां झूठी संसारा ॥
माया मोह झूठ रह्यौ लागी, का भयौ इहां का ह्वैहै आगी ॥
कछु कछु चेति देखि जीव अबही, मनिषा जनम न पावै कबही ॥
सार आहि जे संग पियारा, जब चेतै तब ही उजियारा ॥
त्रिजुग जोनि जे आहि अचेता, मनिषा जनम भयौ चित चेता ॥
आतमां मुरछि मुरछि जरि जाई, पिछले दुख कहतां न सिराई ॥
सोई त्रास जे जांनैं हंसा, तौ अजहूं न जीव करै संतोसा ॥
भौसार अति वार न पारा, ता तिरबे का करहु बिचारा ॥
जा जल की आदि अंति नहीं जांनियैं, ताकौ डर काहे न मानियैं ॥
को बोहिथ को खेवट आही, जिहिं तिरिये सो लीजै चाही ॥
समझि विचारि जीव जब देखा, यहु संसार सुपन करि लेखा ॥
भई बुधि कछू ग्यांन निहारा, आप आप ही किया बिचारा ॥
आपण मैं जे रह्यौ समाई, नेडैं दूरि कह्यौ नहीं जाई ॥
ताके चीन्हैं परचै पावा, भई समझि तासूं मन लावा ॥

भाव भगति हित बोहिथा, सतगुर खेवनहार ।
अलप उदिक तब जांणियं, जब गोपदखुर बिस्तार ॥ ३ ॥

[दुपदी रमैंणी]

भया दयाल बिषहर जरि जागा, गहगहान प्रेम बहु लागा ॥
भया अनंद जीव भये उल्हासा, मिले रांम मनि पूगी आसा ॥

मास असाढ़ रवि धरनि जरावै, जरत जरत जल आइ बुझावै ॥
रुति सुभाइ जिमीं सब जागी, अंमृत धार होइ झर लागी ॥
जिमीं मांहिं उठी हरियाई, बिरहनि पीव मिले जन जाई ॥
मनिकां मनि कै भये उछाहा, कारनि कौंन बिसारी नाहा ॥
खेल तुम्हारा मरन भया मोरा, चौरासी लख कीन्हां फेरा ॥
सेवग सुत जे होइ अनिआई, गुन औगुन सब तुम्हि समाई ॥
अपने औगुन कहूं न पारा, इहै अभाग जे तुम्ह न संभारा ॥
दरबो नहीं कांइ तुम्ह नाहा, तुम्ह बिछुरै मैं बहु दुख चाहा ॥
मेघ न वरिखै जांहिं उदासा, तऊ न सारंग सागर आसा ॥
जलहर भर्यौ ताहि नहीं भावै, कै मरि जाइ कै उहै पियावै ॥
मिलहु रांम मनि पुरवहु आसा, तुम्ह बिछुर्यां मैं सकल निरासा ॥
मैं रनिरासी जब निध्य पाई, रांम नांम जीव जाग्या जाई ॥
नलनीं कै ज्यूं नीर अधारा, खिन बिछुर्यां थैं रवि प्रजारा ॥
रांम विनां जीव बहुत दुख पावै, मन पतंग जगि अधिक जरावै ॥
माघ मास रुति कवलि तुसारा, भयौ बसंत तब बाग संभारा ॥
अपनैं रंगि सब कोइ राता, मधुकर बास लेहि मैमंता ॥
बन कोकिला नाद गहगहांनां, रुति वसंत सब कै मनि मांनां ॥
बिरहन्य रजनीं जुग प्रति भइया, बिन पीव मिलें कलप टलि गइया ॥
आतमां चेति समझि जीव जाई, बाजी झूठ रांम निधि पाई ॥
भया दयाल निति बाजहिं बाजा, सहजैं रांम नांम मन राजा ॥

जरत जरत जल पाइया, सुख सागर कर मूल ।
गुर प्रसादि कबीर कहि, भागी संसै सूल ॥

रांम नांम निज पाया सारा, अबिरथा झूठ सकल संसारा ॥
हरि उतंग मैं जाति पतंगा, जंबकु केहरि कै ज्यूं संगा ॥
क्यंचिति है सुपिनैं निधि पाई, नहीं सोभा कौं धरौं लुकाई ॥
हिरदै न समाइ जांनियै नहीं पारा, लागै लोभ न और हकारा ॥

सुमिरत हूँ अपनैं उनमानां, क्यंचित जोग रांम मैं जांनां ॥
मुखां साध का जांनियैं असाधा, क्यंचित जोग रांम मैं लाधा॥
कुबिज होइ अंमृत फल बंछया, पहुँचा तब मनि पूगी इंछया ।
नियर थैं दूरि दूरि थैं नियरा, रांम चरित न जांनियैं जियरा ॥
सीत थैं अगिन फुनि होई, रबि थैं ससि ससि थैं रबि सोई ॥
सीत थैं अगनि परजरई, थल थैं निधि निधि थैं थल करई ॥
बज्र थैं तिण खिण भीतरि होई, तिण थैं कुलिस करै फुनि सोई॥
गिरवर छार छार गिरि होई, अबिगति गति जांनैं नहीं कोई ॥
जिहि दुरमति डौल्यौ संसारा, परे असूझि वार नहीं पारा ॥
बिख अमृत एकै करि लीन्हां, जिनि चीन्हां सुख तिहकूं हरि दीन्हां।
सुख दुख जिनि चीन्हां नहीं जांनां, ग्रासे काल सोग रुति मांनां॥
होइ पतंग दीपक मैं परई, झूठै स्वादि लागि जीवं जरई ॥
कर गहि दीपक परहि जु कूपा, यहु अचिरज हम देखि अनूपा ॥
ग्यांनहीन ओछी मति बाधा, मुखां साध करतूति असाधा ॥
दरसन समि कछू साध न होई, गुर समांन पूजिये सिध सोई ॥
भेष कहा जे बुधि बिसूधा, बिन परचै जग बूड़नि बूड़ा ॥
जदपि रबि कहिये सुर आही, झूठै रबि लीन्हां सुर चाही ॥
कबहूँ हुतासन होइ जरावै, कबहूँ अखंड धार बरिषावै ॥
कबहूं सीत काल करि राखा, तिहूं प्रकार बहुत दुख देखा ।
ताकूं सेवि मूढ़ सुख पावै, दौरै लाभ कूं मूल गवावै ॥
अछित राज दिने दिन होई, दिवस सिराइ जनम गये खोई ॥
मृत काल किनहूं नहीं देखा, माया मोह धन अगम अलेखा ॥
झूठै झूठ रह्यौ उरझाई, सांचा अलख जग लख्या न जाई ॥
साचै नियरै झूठै दूरी, विष कूं कहै सजीवनि मूरी ॥
कह्यौ न जाइ नियरै अरु दूरी, सकल अतीत रह्या घट पूरी ॥
जहां देखैं तहां रांम समांनां, तुम्ह बिन ठौर और नहीं आंनां ॥

जदपि रह्या सकल घट पूरी, भाव बिनां अभि-अंतरि दूरी ।
लोभ पाप दोऊ जरैं निरासा, झूठै झूठि लागि रही आसा ॥
जहुवां ह्वै निज प्रगट बजावा, सुख संतोष तहां हम पावा ॥
नित उठि जस कीन्ह परकासा, पावक रहै जैसैं काष्ट निवासा ॥
बिनां जुगति कैसैं मथिया जाई, काष्टैं पावक रह्या समाइ ॥
कष्टैं कष्ट अग्नि पर जरई, जारै दार अग्नि समि करई ॥
ज्यूं रांम कहै ते रांमैं होई, दुख कलेस घालै सब खोई ॥
जन्म के कलि त्रिष जांहिं बिलाईं, भरम करम का कछु न बसाई ॥
भरम करम दोऊ बरतैं लोई, इनका चरित न जांनैं कोई ॥
इन दोऊ संसार भुलावा, इनके लागें ग्यांन गंवावा ॥
इनकौ मरम पै सोई बिचारी, सदा अनंद लै लीन मुरारी ॥
ग्यांन द्रिष्टि निज पेखै जोई, इनका चरित जांनैं पै सोई ॥
ज्यूं रजनीं रज देखत अंधियारी, डसे भुवंगम बिन उजियारी ॥
तारे अगिनत गुनहिं अपारा, तऊ कछू नहीं होत अधारा ॥
झूठ देखि जीव अधिक डराई, बिनां भवंगम डसी दुनियांईं ।
झूठै झूठ लागि रही आसा, जेठ मास जैसैं कुरंग पियासा ॥
इक त्रिषावंत दह दिसि फिर आवै, झूठै लागा नीर न पावै ॥
इक त्रिषावंत अरु जाइ जराई, झूठी आस लागि मरि जाई ॥
नीझर नीर जांनि परहरिया, करम के बांधे लालच करिया ॥
कहै मोर कछू आहि न वाही, भरम करम दोऊ मति गवाई ॥
भरम करम दोऊ मति परहरिया, झूठै नांऊ साच ले धरिया ॥
रजनीं गत भई रवि परकासा, भरम करम धूं केर बिनासा ।
रवि प्रकास तारे गुन खींनां, आचार ब्यौहार सब भये मलीनां ॥
त्रिष के दाधें बिष नहीं भावै, जरत जरत सुखसागर पावै ॥
अनिल झूठ दिन धावै आसा, अंध दुरगंध सहै दुख त्रासा ॥
इक त्रिषावंत दुसरैं रवि तपई, दह दिसि ज्वाला चहुं दिसि जराई ॥

करि सनमुखि जब ग्यांन विचारी, सनमुखि परिया अगनि मंझारी।
गछत गछत जब आगैं आवा, बित उनमांन ढिवुवा इक पावा ।।
सीतल सरीर तन रह्या समाई, तहां छाड़ि कत दाझै जाई ।।
यूं मन बारूनि भया हंमारा, दाधा दुख कलेस संसारा ।।
जरत फिरे चौरासी लेखा, सुख कर मूल किनहूँ नहीं देखा ।।
जाकें छाड़ें भये अनाथा, भूलि परै नहीं पावैं पंथा ।।
अछै असि-अंतरि नियरै दूरी, विन चीन्हयां क्यूं पाइये मूरी ।।
जा विन हंस बहुत दुख पावा, जरत जरत गुरि रांम मिलावा ।।
मिल्या रांम रह्या सहजि समाई, खिन बिछुरयां जीव उरझै जाई ।।
जा मिलियां तैं कीजै बधाई, परमांनंद रैंनि दिन गाई ।।
सखी सहेली लीन्ह बुलाई, रुति परमांनंद भेटियै जाई ।।
सखी सहेली करहि अनंदू, हित करि भेटे परमानंदू ।।
चली सखी जहुंवां निज रांमां, भये उछाह छाड़े सब कांमां ।।
जांनूं कि मोरै सरस बसंता, मैं बलि जांऊ तोरि भगवंता ।।
भगति हेत गावै लैलींनां, ज्यूं बन नाद कोकिला कीन्हां ।।
बाजैं संख सबद धुनि बेनां, तन मन चित हरि गोब्यंद लींनां ।।
चल अचल पांइन पंगुरनी, मधुकरि ज्यूं लेहि अघरनीं ।।
सावज सीह रहे सब मांची, चंद अरु सूर रहे रथ खांची ।।
गण गंध्रप मुनि जोवैं देवा, आरति करि करि बिनवैं सेवा ।।
बासि गयंद्र ब्रह्मा करैं आसा, हंम क्यूं चित दुलंभ रांम दासा ।।
भगति हेत रांम गुन गांवैं, सुर नर मुनि दुरलभ पद पांवैं ।।
पुनिम विमल ससि मास बसंता, दरसन जोति मिले भगवंता ।।
चंदन बिलनी बिरहनि धारा, यूं पूजिये प्रांनपति रांम पियारा ।।
भाव भगति पूजा अरु पाती, आतमरांम मिले बहु भांती ।।
रांम रांम रांम रुचि मांनैं, सदा अनंद रांम ल्यौ जांनैं ।।
पाया सुख सागर कर मूला, सो सुख नहीं कहूं सम तूला ।।

सुख समाधि सुख भया हमारा, मिल्या न बेगर होइ ।
जिंहि लाधा सो जांनि है, रांम कबीर और न जांनैं कोइ ॥४॥

[अष्टपदी रमैंणी]

केऊ केऊ तीरथ व्रत लपटांनां, केऊ केऊ केवल रांम निज जांनां ॥
अजरा अमर एक अस्थांनां, ताका मरम काहू बिरलै जांनां ॥
अबरन जोति सकल उजियारा, द्रिष्टि समांन दास निस्तारा ॥
जे नहीं उपज्या धरनि सरीरा, ताकै पथिन सींच्या नीरा ॥
जा नहीं लागे सूरजि के बांनां, सो मोहि आंनि देहु को दांनां ॥
जब नहीं होते पवन नहीं पानीं, जब नहीं होती सिष्टि उपांनीं ॥
जब नहीं होते प्यंड न बासा, तब नहीं होते धरनि अकासा ॥
जब नहीं होते गरभ न मूला, तब नहीं होते कली न फूला ॥
जब नहीं होते सबद न स्वादं, तब नहीं होते बिद्या न बादं ॥
जब नहीं होते गुरू न चेला, गम अगमैं पंथ अकेला ॥
अब गति की गति क्या कहूं, जस कर गांव न नांव ।
गुन बिहूंन का पेखिये, काकर धरियें नांव ॥
आदम आदि सुधि नहीं पाई, मां मां हवा कहां थैं आई ॥
जब नहीं होते रांम खुदाई, साखा मूल आदि नहीं भाई ॥
जब नहीं होते तुरक न हिंदू, माका उदर पिता का ब्यंदू ॥
जब नहीं होते गाइ कसाई, तब बिसमला किनि फुरमाई ॥
भूले फिरैं दीन ह्वै धांवैं, ता साहिब का पंथ न पांवैं ॥
संजोगैं करि गुंण धरया, बिजोगैं गुण जाइ ।
जिभ्या स्वारथि आपणैं, कीजै बहुत उपाइ ॥
जिनि कलमां कलि मांहि पठावा, कुदरति खोजि तिन्हूं नहीं पावा ॥
कर्म करींम भये कर्तूता, वेद कुरान भये दोऊ रीता ॥
कृतम सो जु गरभ अवतरिया, कृतम सो जु नाव जस धरिया ।

कृतम सुनित्य और जनेऊ, हिंदू तुरक न जांनैं भेऊ ।।
मन मुसले की जुगति न जांनैं, मति भूलै द्वै दीन बखांनैं ।।
पांणीं पवन संजोग करि, कीया है उतपाति ।।
सुंनि मैं सबद समाइगा, तब कासनि कहिये जाति ।।
तुरकी धरम बहुत हम खोजा, बहु बजगार करैं ए बोधा ।।
गाफिल गरब करैं अधिकाई, स्वारथ अरथि वधैं ए गाई ।।
जाकौ दूध धाइ करि पीजै, ता माता कौं बध क्यूं कीजै ।।
लहुरैं थकैं दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भखै सरीरो ।।
बेअकली अकलि न जांनहीं, भूले फिरैं ए लोइ ।
दिल दरिया दीदार बिन, भिस्त कहां थैं होइ ।।
पंडित भूले पढ़ि गुन्य बेदा, आप न पावैं नांनां भेदा ।।
संभ्या तरपन अरु षट करमां, लागि रहे इनकै आशरमां ।।
गायत्री जुग चारि पढ़ाई, पूछौ जाइ मुकति किनि पाई ।।
सब मैं रांम रहै ल्यौ सींचा, इन थैं और कहौ को नींचा ।।
अति गुन गरब करैं अधिकाई, अधिकै गरवि न होइ भलाई ।।
जाकौ ठाकुर गरब प्रहारी, सो क्यूं सकई गरब सहारी ।।
कुल अभिमांन विचार तजि, खोजौ पद निरवांन ।।
अंकुर बीज नसाइगा, तब मिलै विदेही थांन ।।
खत्री करै खत्रिया धरमो, तिनकूं होय सवाया करमो ।।
जीवहि मारि जीव प्रतिपारैं, देखत जनम आपनौं हारैं ।।
पंच सुभाव जु मेटैं काया, सब तजि करम भजैं रांम राया ।।
खत्री सो जु कुटंब सूं सूझै, पंचूं मेटि एक कूं बूझै ।।
जो आवध गुर ग्यांन लखावा, गहि कर वाल धूप धरि धावा ।।
हेला करै निसांनैं घाऊ, झूझ परै तहां मनमथ राऊ ।।
मनमथ मरै न जीवई, जीवण मरण न होइ ।
सुनि सनेही रांम बिन, गये अपनपौ खोइ ।।

अरु भूले षट दरसन भाई, पाखंड भेष रहे लपटाई ॥
जैंन बोध अरु साकत सैंनां, चार बाक चतुरंग बिहूँनां ॥
जैंन जीव की सुधि न जांनैं, पाती तोरि देहुरै आंनैं ॥
दोनां मवरा चंपक फूला, तामैं जीव बसैं कर तूला ॥
अरु प्रिथमीं का रोम उपारैं, देखत जीव कोटि संघारैं ॥
मनमथ करम करैं अस राला, कलपत बिंद धसैं तिहि द्वारा ॥
ताकी हत्या होइ अदभूता, षट दरसन मैं जैंन बिगूता ॥
ग्यान अमर पद बाहिरा, नेड़ा ही तैं दूरि ।
जिनि जान्यां तिनि निकटि है, रांम रह्या सकल भरपूरि ॥
आपन करता भये कुलाला, बहु बिधि सिष्टि रची दर हाला ॥
बिधनां कुंभ कीये द्वै थांनां, प्रतिबिंबता मांहि समांनां ॥
बहुत जतन करि बांनक बांनां, सौंज मिलाय जीव तहां ठांनां ॥
जठर अगनि दी कीं परजाली, ता मैं आप करैं प्रतिपाली ॥
भींतर थैं जब बाहरि आवा, सिव सकती द्वै नांव धरावा ॥
भूलै भरमि परै जिनि कोई, हिंदू तुरक झूठ कुल दोई ॥
घर का सुत जे होइ अयांनां, ताकै संगि क्यूं जाइ सयांनां ॥
साची बात कहै जे वासौं, सो फिरि कहै दिवांनां तासूं ॥
गोप भिन है एकै दूधा, कासूं कहिये बांम्हन सूदा ॥
जिनि यहु चित्र बनाइया, सो साचा सुतधार ।
कहै कबीर ते जन भले, जे चित्रवत लेहि बिचार ॥ ५ ॥

[बारहपदी रमैंणीं]

पहली मन मैं सुमिरौं सोई, ता सम तुलि अवर नहीं कोई ॥
कोई न पूजै वासूं प्रांनां, आदि अंति वो किनहूं न जांनां ॥
रूप सरूप न आवै बोला, हरू गरू कछू जाइ न तोला ॥
भूख न त्रिषा धूप नहीं छांहीं, सुख दुख रहित रहै सब मांहीं ॥

अबिगत अपरंपार ब्रह्म, ग्यांन रूप सब ठांम ।
बहु बिचार करि देखिया, कोई न सारिख रांम ॥
जो त्रिभवन पति ओहै ऐसा, ताका रूप कहौ धौं कैसा ॥
सेवग जन सेवा कै तांईं, बहुत भांति करि सेवि गुसांई ॥
तैसी सेवा चाहौ लाई, जा सेवा बिन रह्या न जाई ॥
सेव करंतां जो दुख भाई, सो दुख सुख बरि गिनहु सवाई ॥
सेव करंतां सो सुख पावा, तिन्य सुख दुख दोऊ बिसरावा ॥
सेवग सेव भुलांनियां, पंथ कुपंथ न जांन ।
सेवग सो सेवा करै, जिहि सेवा भल मांन ॥
जिहि जग की तस की तस के ही, आपै आप आथिहै एही ॥
कोई न लखई वाका भेऊ, भेऊ होइ तौ पावै भेऊ ॥
बावैं न दांहिनैं आगैं न पीछू, अरध न उरध रूप नहीं कीछू ॥
माय न बाप आव नहीं जावा, नां बहु जण्यां न को वहि जावा ॥
वो है तैसा वोही जांनैं, ओही आहि आहि नहीं आंनैं ॥
नैंनां बैंन अगोचरी, श्रवनां करनीं सार ।
बोलन कै सुख कारनैं, कहिये सिरजनहार ॥
सिरजनहार नांउ धूं तेरा, भौसागर तिरिबे कूं भेरा ॥
जे यहु भेरा रांम न करता, तौ आपैं आप आवटि जग मरता ॥
रांम गुसांईं मिहर जु कीन्हां, भेरा साजि संत कौं दीन्हां ॥
दुख खंडण मही मंडणां, भगति मुकति बिश्रांम ।
बिधि करि भेरा साजिया, धरया रांम का नांम ॥
जिनि यहु भेरा दिढ़ करि गहिया, गये पार तिन्हौं सुख लहिया ॥
दुमनां ह्वै जिनि चित्त डुलावा, कर छिटके थैं थाह न पावा ॥
इक डूबे अरु रहे उरवारा, ते जगि जरे न राखणहारा ॥
राखन की कछु जुगति न कीन्हीं, राखणहार न पाया चीन्हीं ॥
जिनि चीन्ह्यां ते निरमल अंगा, जे अचीन्ह ते भये पतंगा ॥

राम नाम ल्यौ लाइ करि, चित चेतनि ह्वै जागि ।
कहै कबीर ते ऊबरे, जे रहे रांम ल्यौ लागि ॥
अरचित अविगत है निरधारा, जांण्यां जाइ न वार न पारा ॥
लोक बेद थैं अछै नियारा, छाड़ि रह्यौ सबही संसारा ॥
जसकर गांउ न ठांउ न खेरा, कैसें गुन बरनूं मैं तेरा ॥
नहीं तहां रूप रेख गुन बांनां, ऐसा साहिब है अकुलांनां ॥
नहीं सो ज्वांन न बिरध नहीं बारा, आपैं आप आपनपौ तारा ॥
कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को लावै भंग ।
सेवौ तन मन लाइ करि, रांम रह्या सरबंग ॥
नहीं सो दूरि नहीं सो नियरा, नहीं सो तात नहीं सो सियरा ॥
पुरिष न नारि करै नहीं क्रीरा, घांम न घांम न ब्यापै पीरा ॥
नदी न नाव धरनि नहीं धीरा, नहीं सो काच नहीं सो हीरा ॥
कहै कबीर बिचारि करि, तासूं लावो हेत ।
बरन बिबरजत ह्वै रह्या, नां सो स्यांम न सेत ॥
नां वो बारा ब्याह बराता, पीत पितंबर स्यांम न राता ॥
तीरथ ब्रत न आवै जाता, मन नहीं मोनि बचन नहीं बाता ॥
नाद न ब्रिंद गरथ नहीं गाथा, पवन न पांणीं संग न साथा ॥
कहै कबीर बिचारि करि, ताकै हाथि न नाहि ।
सो साहिब किनि सेविये, जाकै धूप न छांह ॥
ता साहिब कै लागौ साथा, दुख सुख मेटि रह्यौ अनाथा ॥
नां जसरथ घरि औतरि आवा, नां लंका का राव संतावा ॥
देवै कूख न औतरि आवा, नां जसवै ले गोद खिलावा ॥
ना वो ग्वालन कै संग फिरिया, गोबरधन ले न कर धरिया ॥
वांवन होय नहीं बलि छलिया, धरनीं बेद लेन उधरिया ॥
गंडक सालिग रांम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला ॥
बद्री बैस्य ध्यांन नहीं लावा, परसरांम ह्वै खत्री न संतावा ॥

द्वारामती सरीर न छाड़ा, जगननाथ ले प्यंड न गाड़ा ॥

कहै कबीर बिचारि करि, ये ऊले व्योहार ।
याही थैं जे अगम है, सो बरति रह्या संसारि ॥

नां तिस सबद न स्वाद न सोहा, नां तिहि मात पिता नहीं मोहा ॥
नां तिहि सास ससुर नहीं सारा, नां तिहि रोज न रोवनहारा ॥
नां तिहि सूतिग पातिग जातिग, नां तिहि माइ न देव कथा पिक ॥
नां तिहि ब्रिध बधावा बाजैं, नां तिहि गीत नाद नहीं साजैं ॥
नां तिहि जाति पांत्य कुल लीका, नां तिहि छोति पवित्र नहीं सींचा ॥

कहै कबीर बिचारि करि, वो है पद निरबांन ।
सति ले मन मैं राखिये, जहां न दूजी आंन ॥

नां सो आवै नां सो जाई, ताकै बंध पिता नहीं माई ॥
चार बिचार कछू नहीं वाकै, उनमनि लागि रहौ जे ताकै ॥
को है आदि कवन का कहिये, कवन रहनि वाका ह्वै रहिये ॥

कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को खोजै दूरि ।
ध्यांन धरौ मन सुध करि, रांम रह्या भरपूरि ॥

नाद बिंद रंक इक खेला, आपैं गुरू आप ही चेला ॥
आपैं मंत्र आपैं मंत्रेला, आपैं पूजै आप पूजेला ॥
आपैं गावै आप बजावै, अपनां कीया आप ही पावै ॥
आपैं धूप दीप आरती, अपनीं आप लगावैं जाती ॥

कहै कबीर बिचारि करि, झूठा लोही चांम ।
जो या देही रहित है, सो है रमिता रांम ॥

[चौपदी रमैंणीं]

ऊंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला ॥
हम तुम्ह मांहैं एकै लोहू, एकै प्रांन जीवन है मोहू ॥
एकही बास रहै दस मासा, सूतग पातग एकै आसा ॥
एकहि जननीं जन्यां संसारा, कौन ग्यांन थैं भये निनारा ॥

ग्यांन न पायौ बावरे, धरी अविद्या मैंड ।
सतगुर मिल्या न मुक्ति फल, ताथैं खाई बैंड ॥
बालक ह्वै भग द्वारे आवा, भग भुगतन कूं पुरिष कहावा ॥
ग्यांन न सुमिरयौ निरगुण सारा, बिष थैं बिरचि न कियां बिचारा॥
भाव भगति सूं हरि न अराधा, जनम मरन की मिटी न साधा॥
साध न मिटी जनम की, मरन तुरांनां आइ ।
मन क्रम बचन न हरि भज्या, अंकुर बीज नसाइ ॥
तिण चरि सुरही उदिक जु पीया, द्वारै दूध बछ कूं दाया ॥
बछा चूंखत उपजी न दया, बछा बांधि बिछोही मया ॥
ताका दूध आप दुहि पीया, ग्यांन बिचार कछू नहीं कीया ॥
जे कुछ लोगनि सोई कीया, माला मंत्र बादि ही लीया ॥
पीया दूध रुध ह्वै आया, मुई गाइ तब दोष लगाया ॥
बाकस ले चमरां कूं दीन्हीं, तुचा रंगाइ करौती कीन्हीं ॥
ले रुकरौती बैठे संगा, ये देखौ पांडे के रंगा ॥
तिहि रुकरौती पांणीं पीया, यहु कुछ पांडे अचिरज कीया ॥
अचिरज कीया लोक मैं, पीया सुहागल नीर ।
इंद्री स्वारथि सब कीया, बंध्यां भरम सरीर ॥
एकै पवन एकही पांणीं, करी रसोई न्यारी जांनीं ॥
माटी सूं माटी ले पोती, लागी कहौ कहां थूं छोती ॥
धरती लीपि पवित्र कीन्हीं, छोति उपाय लीक बिचि दीन्हीं ॥
याका हम सूं कहौ बिचारा, क्यूं भव तिरिहौ इहि आचारा ॥
ए पांखंड जीव के भरमां, मांनि अमांनि जीव के करमां ॥
करि आचार जु ब्रह्म संतावा, नांव बिनां संतोष न पावा ॥
सालिग रांम सिला करि पूजा, तुलसी तोड़ि भया नर दूजा ॥
ठाकुर ले पाटै पौढावा, भोग लगाइ अरु आपै खावा ॥
साच सील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै ॥

भाव भगति की सेवा मांनैं, सतगुर प्रगट कहै नहीं आंनैं ॥
अनभै उपजि न मन ठहराई, परकीरति मिलि मन न समाई ॥
जब लग भाव भगति नहीं करिहौ, तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौ ॥
भाव भगति बिसवास बिन, कटै न संसै सूल ।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मूकति नहीं रे मूल ॥

परिशिष्ट

अर्थात्

श्रीग्रंथसाहब में दिए हुए पदों में से कबीरदास के
उन पदों का संग्रह जो इस ग्रंथावली
में नहीं आए हैं।

परिशिष्ट

(१) साखी

आठ जाम चौसठि घरी तुम्र निरखत रहै जीउ।
नीचे लोइन क्यों करौ सब घट देखै पीउ ॥ १ ॥
ऊँच भवन कनक कामिनी सिखरि धजा फहराइ।
ताते भली मधुकरी संत संग गुन गाइ ॥ २ ॥
अंबर घन हरु छाइया बरषि भरे सर ताल।
चातक ज्यों तरसत रहै तिनको कौन हवाल ॥ ३ ॥
अल्लह की कर बंदगी जिह सिमरत दुख जाइ।
दिल महि साँई परगटै बुझै बलंती नाइ ॥ ४ ॥
अवरह कौ उपदेसते मुख मैं परिहै रेतु।
रासि बिरानी राखते खाया घर का खेतु ॥ ५ ॥
कबीर आई मुझहि पहि अनिक करे करि भेसु।
हम राखे गुरु आपने उन कीनो आदेसु ॥ ६ ॥
आखीं केरे माटुके पल पल गई बिहाइ।
मनु जंजाल न छोड़ई जम दिया दमामा आइ ॥ ७ ॥
आसा करियै राम की अवरै आस निरास।
नरक परहि ते मानई जो हरि नाम उदास ॥ ८ ॥
कबीर इहु तनु जाइगा सकहु त लेहु बहोरि।
नागे पाँवहु ते गये जिनके लाख करोरि ॥ ९ ॥
कबीर इहु तनु जाइगा कवनै मारग लाइ।
कै संगति करि साध की कै हरि के गुन गाइ ॥ १० ॥

एक घड़ी आधी घड़ी आधी हूं ते आध ।
भगतन सेटी गोसटे जो कीने सो लाभ ॥ ११ ॥
एक मरंते दुइ मुये दोइ मरंतेहि चारि ।
चारि मरंतहि छहि मुये चारि पुरुष दुइ नारि ॥ १२ ॥
ऐसा एकु आधु जो जीवत मृतक होइ ।
निरभै होइ कै गुन रवै जत पैखौ तत सोइ ॥ १३ ॥
कबीर ऐसा को नहीं इह तन देवै फूकि ।
अंधा लोगुन जानई रह्यो कबीरा कूकि ॥ १४ ॥
ऐसा जंतु इक देखिया जैसी देखी लाख ।
दीसै चंचलु बहु गुना मति-हीना नापाक ॥ १५ ॥
कबीर ऐसा बीजु बोइ बारह मास फलंत ।
सीतल छाया गहिर फल पंखी केल करंत ॥ १६ ॥
ऐसा सत गुरु जे मिलै तुट्ठा करे पसाउ ।
मुकति दुआरा मोकला सहजे आवौ जाउ ॥ १७ ॥
कबीर ऐसी होइ परी मन को भावतु कीन ।
मरने ते क्या डरपना जब हाथ सिंधौरा लीन ॥ १८ ॥
कंचन के कुंडल बने ऊपर लाल जड़ाउ ।
दीसहि दाधे कान ज्यों जिन मन नाहीं नाउ ॥ १९ ॥
कबीर कसौटी राम की झूठा टिका न कोइ ।
राम कसौटी सो सहै जो मरि जीवा होइ ॥ २० ॥
कबीर कस्तूरी भया भवर भये सब दास ।
ज्यों ज्यों भगति कबीर की त्यों त्यों राम निवास ॥ २१ ॥
कागद केरी ओबरी मसु के कर्म कपाट ।
पाहन बोरी पिरथमी पंडित पाड़ी बाट ॥ २२ ॥
काम परे हरि सिमिरियै ऐसा सिमरौ नित्त ।
अमरापुर बासा करहु हरि गया बहोरै वित्त ॥ २३ ॥

काया कजली बन भया मन कुंजर मयमंतु।
अंक सुज्ञान रतन्न है खेवट बिरला संतु ॥ २४ ॥
काया काची कारवी काची केवल धातु।
साबतु रख हित राम तनु नाहि त बिनठी बात ॥ २५ ॥
कारन बपुरा क्या करै जौ राम न करै सहाइ।
जिह जिह डाली पग धरौं सोई मुरि मुरि जाइ ॥ २६ ॥
कबीर कारन सो भयो जो कीनो करतार।
तिसु बिनु दूसर को नहीं एकै सिरजनुहार ॥ २७ ॥
कालि करंता अबहि करु अब करता सुइ ताल।
पाछै कछू न होइगा जौ सिर पर आवै काल ॥ २८ ॥
कीचड़ आटा गिरि परया किछू न आयो हाथ।
पीसत पीसत चाबिया सोई निबह्या साथ ॥ २९ ॥
कबीर कूकरु भौकता कुरंग पिछै उठि धाइ।
कर्मी सति गुरु पाइया जिन हौ लिया छड़ाइ ॥ ३० ॥
कबीर कोठी काठ की दह दिसि लागी आगि।
पंडित पंडित जल मुये मूरख उबरे भागि ॥ ३१ ॥
कोठे मंडप हेतु करि काहे मरहु सवारि।
कारज साढ़े तीन हथ घनी त पौने चारि ॥ ३२ ॥
कौड़ी कौड़ी जोरि कै जोरे लाख करोरि।
चलती बार न कछु मिल्यो लई लँगोटी तोरि ॥ ३३ ॥
खिंथा जलि कोइला भई खापर फूटम फूट।
जोगी बपुड़ा खेलियो आसनि रही बिभूति ॥ ३४ ॥
खूब खाना खीचरी जामै अमृत लोन।
हेरा रोटी कारने गला कटावै कौन ॥ ३५ ॥
गंगा तीर जु घर करहि पीवहि निर्मल नीर।
बिनु हरि भगत न मुकति होइ यों कहि रमे कबीर ॥ ३६ ॥

कबीर राति होवहि कारिया कारे ऊभे जंतु ।
लै फाहे उठि धावते सिजानि मारे भगवंतु ।। ३७ ।।
कबीर गरबु न कीजियै चाम लपेटे हाड़ ।
हैवर ऊपर छत्र तर ते फुन धरनी गाड़ ।। ३८ ।।
कबीर गरबु न कीजियै ऊँचा देखि अवासु ।
आजु कालि भुइ लेटना ऊपरि जामै घासु ।। ३९ ।।
कबीर गरबु न कीजियै रंकु न हसियै कोइ ।
अजहु सुनाउ समुद्र महि क्या जानै क्या होइ ।। ४० ।।
कबीर गरबु न कीजियै देही देखि सुरंग ।
आजु कालि तजि जाहुगे ज्यों काँचुरी भुअंग ।। ४१ ।।
गहगच पर्‍यो कुटंब कै कंठै रहि गयो राम ।
आइ परे धर्म राइ के बीचहि धूमा धाम ।। ४२ ।।
कबीर गागर जल भरी आजु कालि जैहै फूटि ।
गुरु जु न चेतहि आपुनो अधमाझ लो जाहिगे लूटि ।। ४३ ।।
गुरु लागा तब जानियै मिटै मोह तन ताप ।
हरष सोग दाझै नहीं तब हरि आपहि आप ।। ४४ ।।
कबीर घाणी पीड़ते सति गुरु लिये छुड़ाइ ।
परा पूरबली भावनी परगत होई आइ ।। ४५ ।।
चकई जौ निसि बीछुरै आइ मिले परभाति ।
जो नर बिछुरै राम स्यों ना दिन मिले न राति ।। ४६ ।।
चतुराई नहिं अति घनी हरि जपि हिरदै माहि ।
सूरी ऊपरि खेलना गिरै त ठाहरि नाहि ।। ४७ ।।
चरन कमल की मौज को कहि कैसे उनमान ।
कहिबे कौ सोभा नहीं देखा ही परवान ।। ४८ ।।
कबीर चावल कारने तुखकौ मुहली लाइ ।
संग कुसंगी बैसते तब पूछै धर्मराइ ।। ४९ ।।

चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगि चितारै।
जैसे बच रहि कुंज मन माया ममता रे ॥ ५०॥
चोट सहेली सेल की लागत लेइ उसास।
चोट सहारै सबद की तासु गुरू मैं दास ॥ ५१ ॥
जग काजल की कोठरी अंध परे तिस मांहि।
हौं बलिहारी तिन्न की पैसि जु नीकसि जाहि ॥ ५२ ॥
जग बांध्यो जिह जेवरी तिह मत बँधहु कबीर।
जैहहि आटा लोन ज्यों सोन समान शरीर ॥ ५३ ॥
जग मैं चेत्यो जानि कै जग मैं रह्यो समाइ।
जिन हरि नाम न चेतियो बादहिं जनमे आहि ॥ ५४ ॥
कबीर जहं जहं हौं फिरयो कौतक ठाओ ठांइ।
इक राम सनेही बाहरा ऊजरु मेरे भांइ ॥ ५५ ॥
कबीर जाको खोजते पायो सोई ठौर।
सोई फिरि कै तूं भया जाकौ कहता और ॥ ५६ ॥
जाति जुलहा क्या करै हिरदै बसे गुपाल।
कबीर रमइया कंठ मिलु चूकहि सब जंजाल ॥ ५७ ॥
कबीर जा दिन हौं मुआ पाछै भया अनंदु।
मोहि मिल्यो प्रभु आपना संगी भजहि गोबिंदु ॥ ५८ ॥
जिह दर आवत जातहु हटकै नाही कोइ।
सो दरु कैसे छोड़ियै जौ दरु ऐसा होइ ॥ ५९ ॥
जीय जो मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु।
दफतर दई जब काढ़िहै होइगा कौन हवालु ॥ ६० ॥
कबीर जेते पाप किये राखे तलै दुराइ।
परगट भये निदान सब जब पूछै धर्मराइ ॥ ६१ ॥
जैसी उपजी पेड़ ते जौ तैसी निबहै ओड़ि।
हीरा किसका बापुरा पुजहि न रतन करोड़ि ॥ ६२ ॥

जौ मैं चितवौ ना करै क्या मेरे चितवे होइ ।
अपना चितव्या हरि करै जो मेरे चित्ति न होइ ।। ६३ ।।
जोर किया सो जुलम है लेइ जवाब खुदाइ ।
दफतर लेखा नीकसै मार मुहै मुह खाइ ।। ६४ ।।
जो हम जंत्र बजावते टूटि गई सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करै चले बजावनहार ।। ६५ ।।
जौ गृह कर हित धर्म करु नाहिं त करु बैरागु ।
बैरागी बंधन करै ताको बड़ो अभागु ।। ६६ ।।
जौ तुहि साध पिरम्म की सीस काटि करि गोइ ।
खेलत खेलत हाल करि जो किछु होइ त होइ ।। ६७ ।।
जौ तुहि साध पिरम्म की पाके सेती खेलु ।
काची सरसो पेलि कै ना खलि भई न तेलु ।। ६८ ।।
कबीर झंखु न झंखियै तुम्हरो कह्यो न होइ ।
कर्म करीम जु करि रहे मेटि न साकै कोइ ।। ६९ ।।
टालै टोलै दिन गया ब्याजु बढ़ंतौ जाइ ।
ना हरि भज्यो ना खत फट्यो काल पहूंचो आइ ।। ७० ।।
ठाकुर पूजहि मोल ले मन हठ तीरथ जाहि ।
देखा देखी स्वाँग धरि भूले भटका खाहि ।। ७१ ।।
कबीर डगमग क्या करहि कहा डुलावहि जीउ ।
सर्व सूख की नाइ को राम नाम रस पीउ ।। ७२ ।।
डूबहिगो रे बापुरे बहु लोगन की कानि ।
पारोसी के जो हुआ तू अपने भी जानि ।। ७३ ।।
डूबा था पै उब्बरयो गुन की लहरि झबक्कि ।
जब देख्यो बेड़ा जरजरात तब उतरि परयो हौं फरक्कि ।। ७४ ।।
तरवर रूपी रामु है फल रूपी बैरागु ।
छाया रूपी साधु है जिन तजिया बादु बिबादु ।। ७५ ।।

कबीर तासों प्रीति करि जाको ठाकुर राम ।
पंडित राजे भूपती आवहि कौने काम ॥ ७६ ॥
तूंतूं करता तूं हुआ मुझ में रही न हूं ।
जब आपा पर का मिटि गया जित देखौं तित तूं ॥ ७७ ॥
थूनी पाई थिति भई सति गुरु बंधी धीर ।
कबीर हीरा बनजिया मानसरोवर तीर ॥ ७८ ॥
कबीर थोड़े जल माछुली झीवर मेल्यो जाल ।
इहटौ घनै न छूटिसहि फिरि करि समुद सम्हालि ॥ ७९ ॥
कबीर देखि कै किह कहौ कहे न को पतिआइ ।
हरि जैसा तैसा उही रहौ हरखि गुन गाइ ॥ ८० ॥
देखि देखि जग ढूंढिया कहूं न पाया ठौर ।
जिन हरि का नाम न चेतियो कहा भुलाने और ॥ ८१ ॥
कबीर धरती साध की तसकर बैसहि गाहि ।
धरती भार न ब्यापई उनकौ लाहू लाहि ॥ ८२ ॥
कबीर नयनी काठ की क्या दिखलावहि लोइ ।
हिरदै राम न चेतही इह नयनी क्या होइ ॥ ८३ ॥
जा घर साध न सेवियहि हरि की सेवा नाहि ।
ते घर मरहट सारखे भूत बसहि तिन माहि ॥ ८४ ॥
ना मोहि छानि न छापरी ना मोहि घर नहीं गाउ ।
मति हरि पूछै कौन है मेरे जाति न नाउ ॥ ८५ ॥
निर्मल बूँद अकास की लीनी भूमि मिलाइ ।
अनिक सियाने पच गये ना निरवारी जाइ ॥ ८६ ॥
नृप-नारी क्यों निंदियै क्यों हेरि चेरी कौ मान ।
ओह माँगु सवारै विषै कौ ओहु सिमरै हरिनाम ॥ ८७ ॥
नैन निहारौ तुझकौ स्रवन सुनहु तुव नाउ ।
बैन उचारहु तुव नाम जी चरन कमल रिद ठाउ ॥ ८८ ॥

परदेसी कै घाघरै चहु दिसि लागी आगि ।
खिंथा जल कुइला भई तागे आँच न लागि ॥ ८९ ॥
परभाते तारे खिसहि त्यों इहु खिसै सरीरु ।
पै दुइ अक्खर ना खिसहि सो गहि रह्यो कबीरु ॥ ९० ॥
पाटन ते ऊजरु भला राम भगत जिह ठाइ ।
राम सनेही बाहरा जमपुर मेरें भाइ ॥ ९१ ॥
पापी भगति न पावई हरि पूजा न सुहाइ ।
माखी चंदन परहरै जह बिगंध तह जाइ ॥ ९२ ॥
कबीर पारस चंदनै तिन है एक सुगंध ।
तिहि मिलि तेउ ऊतम भए लोह काठ निरगंध ॥९३॥
पालि समुद सरवर भरा पी न सकै कोइ नीरु ।
भाग बड़े ते पाइयो तू भरि भरि पीउ कबीरु ॥९४॥
कबीर प्रीति इकस्यो किए आनँद बद्धा जाइ ।
भावै लाँबे केस कर भावै घररि मुडाइ ॥९५॥
कबीर फल लागे फलनि पाकन लागे आंब ।
जाइ पहूँचै खसम कौ जौ बीचि न खाई कांव ॥९६॥
बाम्हन गुरु है जगत का भगतन का गुरु नाहि ।
अरझि उरझि कै पच मुआ चारहु बेदहु माहि ॥९७॥
कबीर बेड़ा जरजरा फूटे छेक हजार ।
हरुये हरुये तिरि गये डूबे जिन सिर भार ॥९८॥
भली भई जौ भौ परआ दिसा गई सब भूलि ।
ओरा गरि पानी भया जाइ मिल्यो ढलि कूलि ॥९९॥
कबीर भली मधूकरी नाना बिधि को नाजु ।
दावा काहू को नहीं बड़ो देश बड़ राजु ॥१००॥
भाँग माछुली सुरापान जो जो प्रानी खांहि ।
तीरथ बरत नेम किये ते सबै रसातल जांहि ॥१०१॥

भार पराई सिर चरै चलियो चाहै बाट ।
अपने भारहि ना डरै आगै औघट घाट ॥१०२॥
कबीर मन निर्मल भया जैसा गंगा नीर ।
पाछै लागो हरि फिरहि कहत कबीर कबीर ॥१०३॥
कबीर मन पंखी भयो उड़ि उड़ि दह दिसि जाइ ।
जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फल खाइ ॥१०४॥
कबीर मन मूड्या नही केस मुड़ाये काइ ।
जो किछु किया सो मन किया मुंडामुंड अजाइ ॥१०५॥
मया तजी तौ क्या भया जौ मानु तज्या नहि जाइ ।
मान मुनी मुनिबर गले मानु सबै कौ खाइ ॥१०६॥
कबीर महदी करि घालिया आपु पिसाइ पिसाइ ।
तैसेइ बात न पूछियै कबहु न लाई पाइ ॥१०७॥
माई मूढ़हु तिह गुरु जाते भरमु न जाइ ।
आप डुबे चहु बेद महि चेले दिये बहाइ ॥१०८॥
माटी के हम पूतरे मानस राख्यो नाउ ।
चारि दिवस के पाहुने बड़ बड़ रूधहि ठाउ ॥१०९॥
मानस जनम दुर्लभ है होइ न बारै बारि ।
जौ बन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागै डारि ॥११०॥
कबीर माया डोलनी पवन झकोलनहारु ।
संतहु माखन खाइया छाछि पियै संसारु ॥१११॥
कबीर माया डोलनी पवन बहै हिवधार ।
जिन बिलोया तिन पाइया अवन बिलोवनहार ॥११२॥
कबीर माया चोरटी मुसि मुसि लावै हाटि ।
एकु कबीरा नाम सै जिन कीनी बारह बाटि ॥११३॥
मारी मरौ कुसंग की केले निकटि जु बेरि ।
उह झूलै उह चीरियै साकत संगु न हेरि ॥११४॥

मारे बहुत पुकारिया पीर पुकारै और ।
लागी चोट मरम्म की रह्यो कबीरा ठौर ॥११५॥

मुकति दुआरा संकुरा राई दसए भाइ ।
मन तौ मैगल होइ रह्यो निकस्यो क्यों कै जाइ ॥११६॥

मुल्ला मुनारे क्या चढ़हि सांई न बहरा होइ ।
जां कारन तू बाँग देहि दिल ही भीतरि जोइ ॥११७॥

मुहि मरने का चाउ है मरौं तौ हरि कै द्वार ।
मत हरि पूछै कौ है परा हमारै बार ॥११८॥

कबीर मेरी जाति कौ सब कोइ हँसनेहारु ।
बलिहारी इसु जाति कौ जिह जपियो सिरजनहारु ॥११९॥

कबीर मेरी बुद्धि कौ जमु न करै तिसकार ।
जिन यह जमुआ सिरजिया सु जपिया परविदगार ॥१२०॥

कबीर मेरी सिमरनी रसना ऊपरि रामु ।
आदि जगादि सगल भगत ताको सुख विस्रामु ॥१२१॥

यम का ठेंगा बुरा है ओह नहिं सहिया जाइ ।
एक जु साधु मोहि मिल्यो तिन लीया अंचल लाइ ॥१२२॥

कबीर यह चेतानी मत सह सारहि जाइ ।
पाछै भोग जु भोगवै तिनको गुड़ लै खाइ ॥ १२३ ॥

रस को गाढ़ो चूसियै गुन को मरियै रोइ ।
अवगुन धारे मानसै भलो न कहियै कोइ ॥१२४॥

कबीर राम न चेतियो जरा पहुंच्यो आइ ।
लागी मंदर द्वारि ते अब क्या काढ्या जाइ ॥१२५॥

कबीर राम न चेतियो फिरिया लालच माहि ।
पाप करंता मरि गया औध पुजी खिन माहि ॥१२६॥

कबीर राम न छोड़ियै तन धन जाइ त जाउ ।
चरन कमल चित बेधिया रामहि नामि समाउ ॥१२७॥

कबीर राम न ध्याइयो मोटी लागी खोरि ।
काया हाड़ो काठ की ना ओह चढै बहोरि ॥१२८॥
राम कहन महि भेदु है तामहि एकु बिचारु ।
सोई राम सबै कहहिं सोई कौतकहारु ॥१२६॥
कबीर राम मै राम कहु कहिबे माहि बिबेक ।
एक अनेकै मिलि गया एक समाना एक ॥१३०॥
रामरतन मुख कोथरी पारख आगै खोलि ।
कोइ आइ मिलैगो गाहकी लेगो महँगे मोलि ॥ १३१ ॥
लागी प्रीति सुजान स्यो बरजै लोगु अजानु ।
तास्यो टूटी क्यों बनै जाके जीय परानु ॥१३२॥
बांसु बढ़ाई बूड़िया यों मत डूबहु कोइ ।
चंदन कै निकटे बसे बासु सुगंध न होइ ॥१३३॥
कबीर बिकारह चितवते झूठे करते आस ।
मनोरथ कोइ न पूरियो चाले ऊठि निरास ॥१३४॥
बिरहु भुअंगमु मन बसै मन्तु न मानै कोइ ।
राम बियोगी ना जियै जियै त बौरा होइ ॥१३५॥
बैदु कहै हौं ही भला दारू मेरै बस्सि ।
इह तौ वस्तु गोपाल की जब भावै ले खस्सि ॥१३६॥
वैष्णव की कूकरि भली साकत की बुरी माइ ।
ओह सुनहि हर नाम जस उह पाप बिसाहन जाइ ॥१३७॥
वैष्णव हुआ त क्या भया माला मेली चारि ।
बाहर कंचनवा रहा भीतरि भरी भँगारि ॥१३८॥
कबीर संसा दूरि करु कागह हेरु बिहाउ ।
बावन अक्खर सोधि कै हरि चरनों चितु लाउ ॥१३६॥
संगति करियै साध की अंति करै निर्बाहु ।
साकत संगु न कीजियै जाते होइ बिनाहु ॥१४०॥

कबीर संगति साध की दिन दिन दूना हेतु ।
साकत कारी कांबरी धोए होइ न सेतु ॥१४१॥
संत की गैल न छांड़ियै मारगि लागा जाउ ।
पेखत ही पुन्नीत होइ भेटत जपियै नाउ ॥१४२॥
संतन की झुगिया भली भठि कुसत्तो गाउ ।
आगि लगै तिह धौल हरि जिह नाहीं हरि को नाउ ॥१४३॥
संत मुये क्या रोइयै जो अपने गृह जाय ।
रोवहु साकत बापुरे जु हाटै हाट बिकाय ॥ १४४ ॥
कबीर सति गुरु सूरमे बाह्या बान जु एकु ।
लागत ही भुइ गिरि परया परा कलेजे छेकु ॥ १४५ ॥
कबीर सब जग हौं फिरयो मांदलु कंध चढ़ाइ ।
कोई काहू को नहीं सब देखी ठोक बजाइ ॥ १४६ ॥
कबीर सव ते हम बुरे हम तजि भलो सब कोइ ।
जिन ऐसा करि बूझिया मीतु हमारा सोइ ॥ १४७ ॥
कबीर समुंद न छोड़ियै जौ अति खारो होइ ।
पोखरि पोखरि ढूँढ़ते भली न कहियै कोइ ॥ १४८ ॥
कबोर सेवा कौ दुइ भले एक संतु इकु रामु ।
राम जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु ॥ १४९ ॥
साँचा सति गुरु मैं मिल्या सबदु जु वाह्या एक ।
लागत ही भुइ मिलि गया परया कलेजे छेकु ॥ १५० ॥
कबीर साकत ऐसा है जैसी लसन की खानि ।
कोनै बैठे खाइयै परगट होइ निदान ॥ १५१ ॥
साकत संगु न कीजियै दूरहिं जइये भागि ।
बासिन कारो परसियै तउ कछु लागै दागु ॥ १५२ ॥
साँचा सतिगुरु क्या करै जौ सिक्खा माही चूक ।
अंधे एक न लागई ज्यो बाँसु बजाइयै फूँक ॥ १५३ ॥

साधू की संगति रहौ जौ की भूसी खाउ।
होनहार सो होइहै साकत संगि न जाउ ॥ १५४ ॥
साधु को मिलने जाइये साथ न लीजै कोइ।
पाछे पाउँ न दीजियै आगै होइ सो होइ ॥ १५५॥
साधू संग परापति लिखिया होइ लिलाट।
मुक्ति पदारथ पाइयै ठाकन अवघट घाट ॥ १५६ ॥
सारी सिरजनहार की जाने नाहीं कोइ।
कै जानै आपन धनी कै दासु दिवानी होइ ॥ १५७ ॥
सिखि साखा बहुते किये केसो कियो न मीतु।
चले थे हरि मिलन कौ बीचै अटको चीतु ॥ १५८ ॥
सुपने हू बरड़ाइकै जिह मुख निकसै राम।
ताके पा की पनही मेरे तन को चाम ॥ १५९ ॥
सुरग नरक ते मैं रह्यो सति गुरु के परसादि।
चरन कमल की मौज महि रहौ अंति अरु आदि ॥ १६० ॥
कबीर सूख न एह जुग करहि जु बहुतै मीत।
जो चित राखहि एक स्यों ते सुख पावहि नीत ॥ १६१ ॥
कबीर सूरज चाँद कै उदय भई सब देह।
गुरु गोबिंद के बिन मिले पलटि भई सब खेह ॥ १६२ ॥
कबीर सोई कुल भली जा कुल हरि को दासु।
जिह कुल दासु न ऊपजै सो कुल ढाकु पलासु ॥ १६३ ॥
कबीर सोई मारिये जिहि मूये सुख होइ।
भलो भलो सब कोइ कहै बुरो न माने कोइ ॥ १६४ ॥
कबीर सोइ मुख धन्नि है जा मुख कहियै राम।
देही किसकी बापुरी पवित्र होइगो ग्राम ॥ १६५ ॥
हंस उड़यो तनु गाड़ियो सोझाई सैनाह।
अजहू जीउ न छाड़ई रंकाई नैनाह ॥ १६६ ॥

हज काबे हैं जाइया आगे मिल्या खुदाइ ।
साईं मुझ स्यो लर परया तुझै किन फुरमाई गाइ ॥ १६७ ॥
हरदी पीर तनु हरे चून चिन्ह न रहाइ ।
बलिहारी इह प्रीति कौ जिह जाति बरन कुल जाइ ॥ १६८ ॥
हरि का सिमरन छाड़िकै पाल्यो बहुत कुटंबु ।
धंधा करता रहि गया भाई रहा न बंधु ॥ १६९ ॥
हरि का सिमरन छाड़िकै राति जगावन जाइ ।
सर्पनि होइकै औतरे जाये अपने खाइ ॥ १७० ॥
हरि का सिमरन छाड़िकै अहोई राखे नारि ।
गदही होइ कै औतरै भारु सहै मन चारि ॥ १७१ ॥
हरि का सिमरन जो करै सो सुखिया संसारि ।
इत उत कतहु न डोलई जस राखै सिरजनहारि ॥ १७२ ॥
हाड़ जरे ज्यों लाकरी केस जरे ज्यों घासु ।
इहु जग जरता देखिकै भयो कबीर उदासु ॥ १७३ ॥
है गै बाहन सघन धन छत्रपती की नारि ।
तासु पटतर ना पुजै हरि जन की पनहारि ॥ १७४ ॥
है गै बाहन सघन धन लाख धजा फहराइ ।
या सुख तै भिक्खा भली जो हरि सिमरत दिन जाइ ॥ १७५ ॥
जहां ज्ञान तहँ धर्म है जहां झूठ तहं पाप ।
जहां लोभ तहँ काल है जहां खिमा तहँ आप ॥ १७६ ॥
कबीरा तुही कबीरु तू तेरो नाउ कबीर ।
राम रतन तब पाइयै जौं पहिले तजहि सरीर ॥ १७७ ॥
कबीरा धूर सकेल कै पुरिया बांधो देह ।
दिवस चारि को पेखना अंत खेह की खेह ॥ १७८ ॥
कबीरा हमरा कोइ नहीं हम किसहू के नाहि ।
जिन यहु रचन रचाइया तिसही माहि समाहिं ॥ १७९ ॥

कोहै लरका बेंचई लरकी बेचै कोइ।
सांझा करे कबीर स्यों हरि संग वनज करेइ॥ १८०॥
जहँ अनभै तहँ भै नहीं जहँ भै तहँ हरि नाहि।
कह्यो कबीर बिचारिकै संत सुनहु मन माहि॥ १८१॥
जोरी किये जुलम है कहता नाउ हलाल।
दफतर लेखा माँगिये तब होइगो कौन हवाल॥ १८२॥
ढूंढत डोले अंध गति अरु चीनत नाहीं संत।
कहि नामा क्यों पाइयै विन भगतहँ भगवंत॥ १८३॥
नीचे लोइन कर रहौ जे साजन घट मांहि।
सब रस खेलो पीय सौं किसी लखावौ नाहि॥ १८४॥
बूड़ा बंश कबीर का उपज्यो पूत कमाल।
हरि का सिमरन छाड़िकै घर ले आया माल॥ १८५॥
मारग मोती बीथरे अंधा निकस्यो आइ।
जोति बिना जगदीश की जगत उलंघे जाइ॥ १८६॥
राम पदारथ पाइ कै कबिरा गाँठि न खोल।
नहीं पहन नहीं पारखू नहीं गाहक नहीं मोल॥ १८७॥
सेख सबूरी बाहरा क्या हज काबै जाइ।
जाका दिल साबत नहीं ताको कहां खुदाइ॥ १८८॥
सुनु सखी पिउ महि जिउ बसै जिय महि बसै कि पीउ।
जीउ पीउ बूझौ नहीं घट महि जीउ कि पीउ॥ १८९॥
हरि है खांडु रे तुमहि बिखरी हाथों चुनी न जाइ।
कहि कबीर गुरु भली बुझाई कीटी होइ के खाइ॥ १९०॥
गगन दमामा बाजिया परयो निसानै घाउ।
खेत जु मारयो सूरमा अब जूझन को दाउ॥ १९१॥
सूरा सो पहिचानियै जु लरै दीन के हेत।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहूँ न छाड़ै खेत॥ १९२॥

(२) पदावली

अंतरि मैल जे तीरथ न्हावै तिसु बैकुंठ न जाना ।
लोक पतीणे कछू न होवै नाही राम अयाना ॥
पूजहू राम एकु ही देवा । साचा नावण गुरु की सेवा ॥
जल कै मज्जन जे गति होवै नित नित मेंडुक न्हावहि ।
जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिरि फिरि जोनी आवहि ॥
मनहु कठोर मरै बानारस नरक न बाँच्या जाई ।
हरि का संत मरै हांडवैत सगली सैन तराई ॥
दिन सुरैनि बेद नही सासतर तहाँ बसै निरंकारा ।
कहि कबीर नर तिसहि धियावहु बावरिया संसारा ॥ १ ॥

अंधकार सुख कबहिं न सोइहै । राजा रंक दोऊ मिलि रोइहै ॥
जौ पै रसना राम न कहिबो । उपजत बिनसत रोवत रहिबो ॥
जस देखिय तरवर की छाया । प्रान गये कहु काकी माया ॥
जस जंती महि जीव समाना । मुये मर्म को काकर जाना ॥
हंसा सरवर काल सरीर । राम रसाइन पीउ रे कबीर ॥ २ ॥

अगिन न दहै पवन नही मगनै तस्कर नेरि न आवै ।
राम नाम धन करि संचौनी सो धन कतही न जावै ॥
हमरा धन माधव गोबिन्द धरनीधर इहै सार धन कहियै ।
जो सुख प्रभु गोबिंद की सेवा सो सुख राज न लहियै ॥
इसु धन कारण सिव सनकादिक खोजत भये उदासी ।
मन मकुंद जिह्वा नारायन परै न जम की फाँसी ॥
निज धन ज्ञान भगति गुरु दीनी तासु सुमति मन लागी ।
जलत अंग थंभि मन धावत भरम बंधन भौ भागी ॥
कहै कबीर मदन के माते हिरदै देखु बिचारी ।
तुम घर लाख कोटि अस्व हस्ती हम घर एक मुरारी ॥ ३ ॥

अचरज एक सुनहु रे पंडिया अब किछु कहन न जाई।
सुर नर गन गंध्रब जिन मोहे त्रिभुवन मेखलि लाई ॥
राजा राम अनहद किंगुरी वाजै। जाकी दृष्टि नाद लव लागै ॥
भाठी गगन सिंडिया अरु चुंडिया कनक कलस इक पाया।
तिस महि धार चुए अति निर्मल रस महि रस न चुआया ॥
एक जु बात अनूप बनी है पवन पियाला साजिया।
तीन भवन महि एको जोगी कहहु कवन है राजा ॥
ऐसे ज्ञान प्रगट्या पुरुषोत्तम कहु कबीर रँगराता।
और दुनी सब भरमि भुलानी मन राम रसाइन माता ॥ ४ ॥

अनभौ कि नैन देखिया बैरागी अड़े।
बिनु भय अनभौ होइ वणा हंबै ॥
सहुह दूरि देखैं ताभौं पवै बैरागी अड़े।
हुक्मै बूझै न निर्भऊ होइ न वणा हंबै ॥
हरि पाखंड न कीजई बैरागी अड़े।
पाखंडि रता सब लोक बड़ा हंबै ॥
तृष्णा पास न छोड़ई बैरागी अड़े।
ममता जाल्या पिंड बणा हंबै ॥
चिन्ता जाल तन जालिया बैरागी अड़े।
जे मन मिरतक होइ बणा हंबै ॥
सत गुरु बिन बैराग न होवई बैरागी अड़े।
जे लोचै सब कोई वणा हंबै ॥
कर्म होवै सति गुरु मिलै बैरागी अड़े।
सहजे पावै सोइ बणा हंबै ॥
कहु कबीर इक बेनती बैरागी अड़े।
मौकौ भव जल पारि उतारि बड़ा हंबै ॥ ५ ॥

अब मोकौं भये राजा राम सहाई ।
जनम मरन कटि परम गति पाई ॥
साधू संगति दियो रलाइ ।
पंच दूत ते लियो छड़ाइ ॥
अमृत नाम जपौ जप रसना ।
अमोल दास करि लीनो अपना ॥
सति गुरु कीनो पर उपकारु ।
काढि लीन सागर संसारु ॥
चरन कमल स्यों लागी प्रीति ।
गोबिंद बसै निता नित चीति ॥
माया तपति बुझ्या अंग्यारु ।
मन संतोष नाम आधारु ॥
जल थल पूरि रहे प्रभु स्वामी ।
जत पेखौं तत अंतर्यामी ॥
अपनी भगति आपंही दढ़ाई ।
पूरब लिखतु गिल्या मेरे भाई ॥
जिसु कृपा करै तिसु पूरन साज ।
कबीर को स्वामी गरीब निवाज ॥६॥

अब मोहि जलत राम जल पाइया । राम उदक तन जलत बुझाइया ॥
मन मारन कारन बन जाइयै । सो जल बिन भगवंत न पाइयै ॥
जेहि पावक सुर नर है जारे । राम उदक जन जलत उबारे ॥
भवसागर सुखसागर माहीं । पीव रहे जल निखुटत नाहीं ॥
कहि कबीर भजु सारिंगपानी । राम उदक मेरी तिषा बुझानी ॥७॥
अमल सिरानो लेखा देना । आये कठिन दूत जम लेना ॥
क्या तै खटिया कहा गवाया । चलहु सिताब दिवान बुलाया ॥
चलु दरहाल दिवान बुलाया । हरि फुर्मान दरगह का आया ॥

करौ अरदास गाव किछु वाकी । लेउ निबेर आज की राती ॥
किछु भी खर्च तुम्हारा सारौ । सुबह निवाज सराइ गुजारौ ॥
साध संग जाकौ हरि रँग लागा । धन धन सो जन पुरुष सभागा ॥
ईत ऊत जन सदा सुहेले । जन्म पदारथ जीति अमोले ॥
जागत सोया जन्म गँवाया । माल धन जोरया भया पराया ॥
कहु कबीर तेई नर भूले । खसम बिसारि माटी संग रूले ॥ ८ ॥
अल्लह एकु मसीति बसतु है अवर मुलकु किसु केरा ।
हिंदू मूरति नाम निवासी दुहमति तत्तु न हेरा ॥
अल्लह राम जीव तेरी नाई । तू करीमह राम तिसाई ॥
दक्खन देस हरी का वासा पच्छिम अलह मुकामा ।
दिल महि खोजि दिलै दिल खोजहु एही ठौर मुकामा ॥
ब्रह्म न ज्ञास करहि चौबीसा काजी महरम जाना ।
ग्यारह मास पास कै राखे एकै माहि निधाना ॥
कहा उडीसे मज्जन कियां क्या मसीत सिर नायें ।
दिल महि कपट निवाज गुजारै क्या हज कावै जायें ॥
एते औरत मरदा साजे ये सब रूप तुमारे ।
कबीर पूंगरा राम अलह का सब गुरु पीर हमारे ॥
कहत कबीर सुनहु नर नरवै परहु एक की सरना ।
केवल नाम जपहु रे प्रानी तबही निहचै तरना ॥९॥
अवतरि आइ कहा तुम कीना । राम को नाम न कबहूँ लीना ॥
राम न जपहु कवन मति लागे । मरि जैवे कौ क्या करहु अभागे ॥
दुख सुख करिकै कुटंब जिवाया । मरती बार इकसर दुख पाया ॥
कंठ गहन तव कर न पुकारा । कहि कबीर आगे ते न समारा ॥१०॥
अवर मुये क्या सोग करीजै । तौ कीजै जौ आपन जीजै ॥
मैं न मरों मरिबो संसारा । अब मोहि मिल्यो है जियावनहारा ॥
या देही परमल महकंदा । ता सुख बिसरे परमानंदा ॥

कुम्रटा एकु पंच पनिहारी। टूटी लाजु भरै मतिहारी ॥
कहु कबीर इकु बुद्धि विचारी। ना ऊ कुम्रटा ना पनिहारी ॥ ११ ॥

अव्वल अल्लह नूर उपाया कुदरत के सब बंदे।
एक नूर ते सब जग उपज्या कौन भले को मंदे ॥

लोगा भरमि न भूलहु भाई।
खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूर रह्यो सब ठाईं ॥
माटी एक अनेक भाँति करि साजी साजनहारै।
ना कछु पोच माटी के भाँणे न कछु पोच कुँभारै ॥
सब महि सच्चा एको सोई तिसका किया सब किछु होई।
हुकम पछानै सु एको जानै बंदा कहियै सोई ॥
अल्लह अलख न जाई लखिया गुरु गुड़ दीना मीठा।
कहि कबीर मेरी संका नासी सर्व निरंजन डीठा ॥ १२ ॥

अस्थावर जंगम कीट पतंगा। अनेक जनम कीये बहुरंगा ॥
ऐसे घर हम बहुत बसाये। जब हम राम गर्भ होइ आये ॥
जोगी जती तपी ब्रह्मचारी। कबहु राजा छत्रपति कबहु भेखारी ॥
साकत मरहि संत सब जीवहि। राम रसायन रसना पीवहि ॥
कहु कबीर प्रभु किरपा कीजै। हारि परै अब पूरा दीजै ॥ १३ ॥

अहि निसि एक नाम जो जागै। केतक सिद्ध भये लव लागै ॥
साधक सिद्ध सकल मुनि हारे। एक नाम कलपतरु तारे ॥
जो हरि हरे सु होहि न आना। कहि कबीर राम नाम पछाना ॥१४॥

आकास गगन पाताल गगन है चहु दिसि गगन रहाइले।
आनँद मूल सदा पुरुषोत्तम घट बिनसै गगन न जाइलै ॥
मोहिं बैराग भयो। इह जीउ आइ कहाँ गयो ॥
पंच तत्व मिलि काया कीनी तत्व कहा ते कीन रे।
कर्मबद्ध तुम जीउ कहत हौ कर्महि किन जीउ दीन रे ॥

हरि महि तनु है तनु महि हरि है सर्व निरंतर सोइ रे।
कहि कबीर राम नाम न छोड़ौ सहजे होइ सु होइ रे ॥ १५ ॥
अगम दुर्गम गढ़ रचियो बास। जामहि जोति करै परगास ॥
बिजली चमकै होइ अनंद। जिह पौड़े प्रभु बाल गुबिंद ॥
इहु जीउ राम नाम लव लागै। जरा मरन छूटे भ्रम भागै ॥
अबरन बरन स्यों मन ही प्रोति। हौं महि गावन गावहि गीति ॥
अनहद सबद होत झनकार। जिह पौड़े प्रभु श्रीगोपाल ॥
खंडल मंडल मंडल मंडा। त्रिय अस्थान तीनि त्रिय खंडा ॥
अगम अगोचर रह्या अभ्यंत। पार न पावै को धरनीधर मंत ॥
कदली पुहुप धूप परगास। रज पंकज महि लियो निवास ॥
द्वादस दल अभ्यंतर मंत। जह पौड़े श्रीकमलाकंत ॥
अरध उरध मुख लागो कास। सुन्न मंडल महि करि परगासु ॥
ऊहां सूरज नाहीं चंद। आदि निरंजन करै अनंद ॥
सो ब्रह्मंडि पिंड सो जानु। मान सरोवर करि स्नानु ॥
सोहं सो जाकहु है जाप। जाको लिपत न होइ पुन्न अरु पाप ॥
अबरन बरन घाम नहि छाम। अबरन पाइयै गुरु की साम ॥
टारी न टरै आवै न जाइ। सुन्न सहज महि रह्यो समाइ ॥
मन मद्धे जाने जे कोइ। जो बोलै सो आपै होइ ॥
जोति मंत्रि मनि अस्थिर करै। कहि कबीर सों प्रानी तरै ॥ १६ ॥
आपे पावक आपे पवना। जारै खसम त राखै कवना ॥
राम जपतु तनु जरि किन जाइ। राम नाम चित रह्या समाइ ॥
काको जरै काहि होइ हानि। नटवर खेलै सारिंगपानि ॥
कहु कबीर अक्खर दुइ भाखि। होइगा खसम त लेइगा राखि ॥ १७ ॥
आस पास घन तुरसी का बिरवा माँझ बनारस गाँऊ रे।
वाका सरूप देखि मोही ग्वारनि मोकौ छोड़ि न आउ न जाहु रे ॥
तोहि चरन मन लागो। सारिंगधर सो मिलै जो बड़ भागो ॥

बृंदाबन मन हरन मनोहर कृष्ण चरावत गाऊ रे।
जाका ठाकुर तुही सारिंगधर मोहि कबीरा नाऊ रे॥ १८॥
इंद्रलोक सिव लोकै जैबो। ओछे तप कर बाहरि ऐबो॥
क्या मांगों किछु थिरु नाहीं। राम नाम राखु मन माहीं॥
सोभा राज बिभव बड़ि पाई। अंत न काहू संग सहाई॥
पुत्र कलत्र लछमी माया। इनते कहु कौने सुख पाया॥
कहत कबीर अवर नहिं कामा। हमरे मन धन राम को नामा॥१९॥
इक तु पतरि भरि उरकट कुरकट इक तु पतरि भरि पानी।
आस पास पंच जोगिया बैठे बीच नकट देरानी॥
नकटी को ठनगन बाडाडूं किनहि बिबेकी काटी तूं॥
सकल माहि नकटी का वासा सकल मारिऔ हेरी।
सकलिआ की हौं बहिन भानजी जिनहि वरी तिसु चेरी॥
हमरो भर्त्ता बड़ो बिबेकी आपे संत कहावै।
ओहु हमारे माथै काइमु और हमरै निकट न आवै॥
नाकहु काटी कानहु काटी काटिकूटि कै डारी।
कहु कबीर संतन की बैरनि तीनि लोक की प्यारी॥ २०॥
इन माया जगदीस गुसाईं तुमरे चरन बिसारे।
किंचत प्रीति न उपजै जन कौ जन कहा करैं बेचारे॥
धृग तन धृग धन धृग इह माया धृग धृग मति बुधि फन्नी।
इस माया कौ दृढ़ करि राखहु बाँधे आप बचन्नी॥
क्या खेती क्या लेवा देवी परपंच झूठ गुमाना।
कहि कबीर ते अंत बिगूते आया काल निदाना॥ २१॥
इसु तन मन मध्ये मदन चोर। जिन ज्ञानरतन हरि लीन मोर॥
मैं अनाथ प्रभु कहौ काहि। को को न बिगूतो मैं को आहि॥
माधव दारुन दुःख सह्यो न जाइ। मेरो चपल बुद्धि स्यों कहा बसाइ॥
सनक सनंदन सिव सुकादि। नाभि कमल जाने ब्रह्मादि॥

कविजन जोगी जटाधारि । सब आपन औसर चले सारि ॥
तू अथाह मोहि थाह नाहि । प्रभु दीनानाथ दुख कहौं काहि ॥
मेरो जनम मरन दुख आथि धीर। सुखसागर गुन रव कबीर ॥२२॥

इहु धन मेरे हरि को नाँउ । गाँठि न बाँधौ बेचि न खाँउ ॥
नाँउ मेरे खेती नाँउ मेरी बारी। भगति करौं जन सरन तुमारी ॥
नाँउ मेरे माया नाँउ मेरे पूँजी । तुमहि छोड़ि जानौ नहि दूजी ।
नाँउ मेरे बंधिय नाँउ मेरे भाई। नाँउ मेरे संगी अंति होइ सखाई ॥
माया महि जिसु रखै उदास । कहि कबीर हौं ताको दास ॥२३॥

उदक समुंद सलल की साख्या नदी तरंग समावहिंगे ।
सुन्नहि सुन्न मिल्या समदर्सी पवन रूप होइ जावहिंगे ॥

बहुरि हम काहि आवहिंगे ।
आवन जाना हुक्म तिसै का हुक्मै बुज्झि समावहिंगे ॥
जब चूकै पंच धातु की रचना ऐसे भर्म चुकावहिंगे ।
दर्सन छोड़ भए समदर्सी एको नाम धियावहिंगे ॥
जित हम लाए तितही लागे तैसे करम कमावहिंगे ।
हरि जी कृपा करै जौ अपनी तौ गुरु के सबद कमावहिंगे ॥
जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जन्म न होई ।
कहु कबीर जो नाम समाने सुन्न रह्या लव सोई ॥ २४ ॥

उपजै निपजै निपजिस भाई । नयनहु देखत इहु जग जाई ॥
लाज न मरहु कहौ घर मेरा । अंत की बार नहीं कछु तेरा ॥
अनेक यतन कर काया पाली । मरती बार अगनि संग जाली ॥
चोवा चंदन मर्दन अंगा । सो तनु जलै काठ कै संगा ॥
कहु कबीर सुनहु रे गुनिया । बिनसैगो रूप देखै सब दुनिया ॥२५॥

उलटत पवन चक्र षट भेदे सुरति सुन्न अनुरागी ।
आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोज बैरागी ॥

मेरो मन मनही उलटि समाना ।
गुरु परसादि अकल भई अवरै ना तरु था बेगाना ॥
निवरै दूरि दूरि फुनि निवरै जिन जैसा करि मान्या ।
अलउती का जैसे भया बरेडा जिन पिया तिन जान्या ॥
तेरी निर्गुण कथा काहि स्यों कहिये ऐसा कोइ विवेकी ।
कहु कबीर जिन दिया पलीता तिनतै सीझल देखी ॥ २६ ॥
उलटि जात कुल दोऊ बिसारी । सुन्न सहज महि बुनत हमारी ॥
हमरा झगरा रहा न कोऊ । पंडित मुल्ला छाड़े दोऊ ॥
बुनि बुनि आप आप पहिरावौं । जहँ नहीं आप तहाँ ह्वै गावौं ॥
पंडित मुल्ला जो लिखि दीया । छाड़ि चले हम कछू न लीया ॥
रिदै खलासु निरखि ले मीरा । आपु खोजि खोजि मिलै कबीरा॥२७॥
सस्तुति निंदा दोऊ बिबरजित तजहु मानु अभिमाना ।
लोहा कंचन सम करि जानहि ते मूरति भगवाना ॥
तेरा जन एक आध कोई ।
काम क्रोध लोभ मोह बिबरजित हरिपद चीन्है सोई ॥
रजगुण तमगुण सतगुण कहियै इह तेरी सब माया ।
चौथे पद को जो नर चीन्है तिनहि परम पद पाया ॥
तीरथ बरत नेम सुचि संजम सदा रहै निहकामा ।
त्रिस्ना अरु माया भ्रम चूका चितवत आतमरामा ॥
जिह मंदिर दीपक परगास्या अंधकार तह नासा ।
निरभौ पूरि रहे भ्रम भागा कहि कबीर जनदासा ॥ २८ ॥
ऋद्धि सिद्धि जाकौ फुरी तब काहू स्यों क्या काज ।
तेरे कहिने की गति क्या कहौं मैं बोलत ही बड़ लाज ॥
राम जिह पाया राम । ते भवहि न बारै बार ॥
झूठा जग डहकै घना दिन दुइ बर्तन की आस ।
राम उदक जिह जन पिया तिह बहुरि न भई पियास ॥

गुरु प्रसादि जिहि बूझिया आसा ते भया निरास ।
सब सचुन दरि आइया जौ आतम भया उदास ।।
राम नाम रस चाखिया हरि नामा हरितारि ।
चहु कबीर कंचन भया भ्रम गया समुद्रै पारि ।। २९ ।।
एक कोट पंचसिक दारा पंचे माँगहि हाला ।
जिमि नाही मैं किसी की बोई ऐसा देन दुखाला ।।
हरि के लोगा मोकौ नीति डसै पटवारी ।
ऊपर भुजा करि मैं गुरु पहि पुकारा तिन हौ लिया उबारी ।।
नव डाडी दस मुंसफ धावहि रइयति बसन न देही ।
डोरी पूरी मापहि नाही बहु विष्टाला लेही ।।
वहतरि घर इक पुरुष समाया उन दीया नाम लिखाई ।
धर्मराय का दफ्तर सोध्या बाकी रिज मन काई ।।
संता कौ मति कोई निंदहु संत राम है एको ।
कहु कबीर मैं सो गुरु पाया जाका नाउ बिबेको ।। ३० ।।
एक ज्योति एका मिली किम्वा होइ महोइ ।
जितु घटना मन उपजै फूटि मरै जन सोइ ।।
सावल सुंदर रामय्या मेरा मन लागा तोहि ।।
साधु मिलै सिधि पाइयै कियेहु योग कि भोग ।
दुहु मिलि कारज ऊपजै राम नाम संजोग ।।
लोग जानै इहु गीत है इहु तौ ब्रह्म विचार ।
ज्यो कासी उपदेस होइ मानस मरती बार ।।
कोई गावै को सुनै हरि नामा चितु लाइ ।
कहु कबीर संसा नहीं अंत परम गति पाइ ।। ३१ ।।
एक स्वान कै घर गावण ।।
जननी जानत सुत बड़ा होत है ।
इतना कुन जानै जि दिन दिन अवध घटत है ।।

मोर मोर करि अधिक लाडु धरि पेखत ही जमराउ हसै।
ऐसा तैं जगु भरम भुलाया। कैसे बूझै जब मोह्या है माया॥
कहत कबीर छोड़ि विषया रस इतु संगति निहचौ मरना।
रमय्या जपहु प्राणी अनत जीवण वाणी इन विधि भवसागर तरना॥
जांति सुभावै ता लागै भाउ। भर्म भुलावा विचहु जाइ॥
उपजै सहज ज्ञान मति जागै। गुरु प्रसादि अंतर लव लागै॥
इतु संगति नाहीं मरणा। हुकम पछाणि ता खसम मैं मिलणा॥३२॥
ऐसो अचरज देख्यो कबीर। दधि कै भोलै बिरोलै नीर॥
हरी अंगूरी गदहा चरै। नित उठि हासै हीगै मरै॥
माता भैसा अम्मुहा जाइ। कुदि कुदि चरै रसातल पाइ॥
कहु कबीर परगट भई खेड। ले लो कौ चूघे नित भेड॥
राम रमत मति परगटि आई। कहु कबीर गुरु सोझी पाई॥३३॥
ऐसो इहु संसार पेखना रहन न कोऊ पैहै रे।
सूधे सूधे रेंगि चलहु तुम नतर कुधका दिवैहै रे॥
बारे बूढ़े तरुने भैया सबहु जम ले जैहै रे।
मानस वपुरा मूसा कीनौ मींच बिलैया खैहै रे॥
धनवंता अरु निर्धन मनई ताकी कछू न कानी रे।
राजा परजा सम करि मारै ऐसो काल बड़ानी रे॥
हरि के सेवक जो हरि भाये तिनकी कथा निरारी रे।
आवहि न जाहि न कबहूँ मरते पारब्रह्म संगारी रे॥
पुत्र कलत्र लच्छमी माया इहै तजहु जिय जानी रे।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु मिलिहै सारंगपानी रे॥ ३४॥
ओई जु दीसहि अंबरि तारे। किन ओइ चीते चीतन हारे॥
कहुरे पंडित अंबर कास्यो लागा। बूझै बूझनहार सभागा॥
सूरज चंद करहिं उजियारा। सब महि पसरया ब्रह्म पसारया।
कहु कबीर जानैगा सोई। हिरदै राम मुखि रामै होई॥ ३५॥

कंचन स्यो पाइयै नही तोलि । मन दे राम लिया है मोलिं ॥
अब मोहिं राम अपना करि जान्या । सहज सुभाइ मेरा मन मान्या ॥
ब्रह्मै कथि कथि अंत न पाया । राम भगति बैठे घर आया ॥
कहु कबीर चंचल मति त्यागी । केवल राम भक्ति निज भागी ॥३६॥

कत नहीं ठौर मूल कत लावौ । खोजत तनु महि ठौर न पावौ ॥
लागी होइ सो जानै पीर । राम भगत अनियाले तीर ॥
एक भाइ देखौं सब नारी । क्या जाना सह कौन पियारी ॥
कहु कबीर जाके मस्तक भाग । सब परिहरि ताको मिले सुहाग ॥३७॥

करवतु भला न करवट तेरी । लागु गले सुन विनतीं मेरी ॥
हौं वारी मुख फेरि पियारे । करवट दे मोकौ काहे कौ मारे ॥
जौ तन चीरहि अंग न मोरौ । पिंड परै तौ प्रीति न तोरौ ॥
हम तुम बीच भयो नहीं कोई । तुमहि सुकंत नारि हम सोई ॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई । अब तुमरी परतीति न होई ॥ ३८ ॥

कहा स्वान कौ सिमृति सुनाये । कहा साकत पहि हरि गुन गाये ॥
राम राम राम रमे रमि रहियै । साकत स्यों भूलि नहीं कहियै ॥
कौआ कहा कपूर चराये । कह बिसियर कौ दूध पिआये ॥
सत संगति मिलि बिवेक बुधि होई । पारस परस लोहा कंचन सोई ॥
साकत स्वान् सब करै कहाया । जो धुरि लिख्या सु करम कमाया ॥
अमिरत लै लै नीम सिचांई । कहत कबीर वाको सहज न जाई ॥३९॥

काम क्रोध तृष्णा के लीने गति नहि एकै जानी ।
फूटी आँखैं कछू न सूझै बूड़ि मुये बिनु पानी ॥

चलत कत टेढ़े टेढ़े टेढ़े ।
अस्थि चर्म बिष्टा के मूंदे दुरगंधहि के बेढ़े ॥
राम न जपहु कौन भ्रम भूले तुमते काल न दूरे ।
अनेक जतन करि इह तन राखहु रहै अवस्था पूरे ॥

आपन कीया कछू न होवै क्या को करै परानी ।
जाति सुभावै सति गुरु भेटै एको नाम बखानी ।।
बलुवा के घरुआ मैं बसते फुलवत देह अयाने ।
कहु कबीर जिह राम न चेत्यो बूड़े बहुत सयाने ।। ४० ।।
काया कलालनि लादनि मेलौ गुरु का सबद गुड़ कीनु रे ।
त्रिस्ना काम क्रोध मद मतसर काटि काटि कसु दीनु रे ।।
कोई हरै संत सहज सुख अंतरि जाकौ जप तप देउ दलाली रे ।
एक बूँद भरि तन मन देवो जो मद देइ कलाली रे ।।
भवन चतुरदस भाटी कीनी ब्रह्म अगिन तन जारी रे ।
मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुखमन पोचनहारी रे ।।
तीरथ वरत नेम सुचि संजम रवि ससि गहनै देउ रे ।
सुरति पियास सुधारसु अमृत एहु महारसु पेउ रे ।।
निरझर धार चुऔ अति निर्मल इह रस मनुआ रातो रे ।
कहि कबीर सगले मद छूछे इहै महारस साचो रे ।। ४१ ।।
कालबूत की हस्तनी मन बौरा रे चलत रच्यो जगदीस ।
काम सुआइ गज वसि परे मन बौरा रे अंकसु सहियो सीस ।।
विषय बाचु हरि राचु सम झुमन बौरा रे ।
निर्भय होइ न हरि भजे मन बौरा रे गह्यो न राम जहाज ।।
मर्कट मुष्टी अनाज की मन बौरा रे लीनी हाथ पसारि ।
छूटन को संसा परया मन बौरा रे नाच्यो घर घर बारि ।।
ज्यो नलनी सुअटा गह्यो मन बौरा रे माया इहु ब्योहारु ।
जैसा रंग कसुंभ का मन बौरा रे त्यों पसरयो पासारु ।।
न्हावन कौ तीरथ घने मन बौरा रे पूजन कौ बहु देव ।
कहु कबीर छूट न नहीं मन बौरा रे छूट न हरि की सेव ।।४२।।
काहू दीने पाट पटम्बर काहू पलघ निवारा ।
काहू गरी गोदरी नाही काहू खान परारा ।।

अहि रख वादु न कीजै रे मन । सुकृत करि करि लीजै रे मन ॥
कुमारै एक जु माटी गूंधी वहु विधि बानी लाई ।
काहू महि मोती मुकताहल काहू व्याधि लगाई ॥
सूमहि धन राखन कौं दीया मुगध कहै धन मेरा ।
जम का डंड मूंड महि लागै खिन महि करै निबेरा ॥
हरि जन ऊतम भगत सदावै आज्ञा मन सुख पाई ।
जो तिसु भावै सति करि मानै भाणा मंत्र बसाई ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतहु मेरी मेरी झूठी ।
चिरगट फारि चटारा लै गयो तरी तागरी छूटी ॥ ४३ ॥
किनही बनज्या कांसा तावा किनहीं लौंग सुपारी ।
संतहु बनज्या नाम गोविंद का ऐसी खेप हमारी ॥
हरि के नाम के व्यापारी ।
हीरा हाथ चढ़या निर्मोलक छूटि गई संसारी ॥
सांचे लाए तो सच लागे सांचे के व्योपारी ।
सांची वस्तु के भार चलाए पहुँचे जाइ भंडारी ॥
आपहि रतन जवाहर मानिक आपै है पासारी ।
आपै है दस दिसि आप चलावै निहचल है व्यापारी ॥
मन करि बैल सुरति करि पैडा ज्ञान गोनि भरि डारी ।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु निबही खेप हमारी ॥ ४४ ॥
कियो सिंगार मिलन के ताईं । हरि न मिले जग जीवन गुसाईं ॥
हरि मेरो पि रहौ हरि की बहुरिया । राम बड़े मैं तनक लहुरिया ॥
धनि पिय एकै संग बसेरा । सेज एक पै मिलन दुहेरा ॥
धन्न सुहागनि जो पिय भावै । कहि कबीर फिर जनमि न आवै ॥४५॥
कूटन सोइ जु मन को कूटै । मन कूटै तौ जम ते छूटै ॥
कुटि कुटि मन कसवटी लावै । सो कूटनि मुकति वहु पावै ॥
कूटन किसै कहहु संसार । सकल बोलन के माहि विचार ॥

नाचन सोइ जु मन स्यों नाचै । झूठ न पतियै परचै साचै ।।
इसु मन आगे पूरै ताल । इसु नाचन के मन रखवाल ।।
बाजारी सो बजारहि सोधै । पाँच पलीतह कौ परबोधै ।।
नव नायक की भगति पछाने । सो बाजारी हम गुरु माने ।।
तस्कर सोइ जिता तित करै । इन्द्री कै जतनि नाम ऊचरै ।।
कहु कबीर हम ऐसे लक्खन । धन्न गुरुदेव अति रूप बिचक्खन ।।४६।।
कोऊ हरि समान नहीं राजा ।
ए भूपति सब दिवस चारि के झूठे करत दिवाजा ।।
तेरो जन होइ सोइ कत डोलै तीनि भवन पर छाजा ।
हाथ पसारि सकै को जन कौ बोलि सकै न अंदाजा ।।
चेति अचेति मूढ़ मन मेरे बाजे अनहद बाजा ।
कहि कबीर संसा भ्रम चूको ध्रु प्रह्लाद निवाजा ।। ४७ ।।
कोटि सूर जाकै परगास । कोटि महादेव अरु कबिलास ।।
दुर्गा कोटि जाकै मर्दन करै । ब्रह्मा कोटि बेद उच्चरै ।।
जौ जाचौं तौ केवल राम । आन देव स्यो नाहीं काम ।।
कोटि चंद्र में करहि चराक । सुरते तीसौ जेवहि पाक ।।
नव ग्रह कोटि ठाढ़े दरबार । धर्म कोटि जाके प्रतिहार ।।
पवन कोटि चौबारे फिरहिं । बासक कोटि सेज बिस्तरहिं ।।
समुंद कोटि जाके पानीहार । रोमावलि कोटि अठारहि भार ।।
कोटि कुबेर भरहि भंडार । कोटिक लखमी करै सिंगार ।।
कोटिक पाप पुन्न बहु हिराहि । इंद्र कोटि जाके सेवा करहि ।।
छप्पन कोटि जाके प्रतिहार । नगरी नगरी खियत अपार ।।
लट छूटी बरतै बिकराल । कोटि कला खेलै गोपाल ।।
कोटि जग जाकै दरबार । गंध्रब कोटि करहि जयकार ।।
विद्या कोटि सबै गुन कहै । ताऊ पारब्रह्म का अंत न लहै ।।
बावन कोटि जाकै रोमावली । रावन सैना जह ते छली ।।

सहस कोटि बहु कहत पुरान । दुर्योधन का मथिया मान ॥
कंद्रप कोटि जाकै लवै न धरहि । अंतर अंतरि मनसा हरहि ॥
कहि कबीर सुनि सारंगपान । देहि अभयपद मानौ दान ॥ ४८ ॥
कोरी को काहू मरम न जाना । सब जग आन तनायो ताना ॥
जब तुम सुनि ले वेद पुराना । तब हम इतन कुप सरयो ताना ॥
धरनि अकास की करगह बनाई । चंद सुरज दुइ साथ चलाई ॥
पाई जोरि बात इक कीनी तह ताती मन माना ।
जोलाहे घर अपना चीना घट ही राम पछाना ॥
कहत कबीर कारगह तोरी । सूतै सूत मिलाये कोरी ॥ ४६ ॥
कौन काज सिरजे जग भीतरि जनमि कौन फल पाया ।
भव निधि तरन तारन चिंतामनि इक निमष न इहु मन लाया ॥
गोविंद हम ऐसे अपराधी ।
जिन प्रभु जीउ पिंड था दीया तिसकी भाव भगति नहिं साधी ॥
परधन परतन परतिय निंदा पर अपवाद न छूटै ।
आवागमन होत है फुनि फुनि इहु पर संग न छूटै ॥
जिह घर कथा होत हरि संतन इक निमष न कीनो मैं फेरा ।
लंपट चोर धूत मतवारे तिन सँगि सदा बसेरा ॥
काम क्रोध माया मद मत्सर ए सम्पै मो माही ।
दया धर्म अो गुरु की सेवा ए सुपनंतरि नाही ॥
दीन दयाल कृपाल दमोदर भगति बछल भैहारी ।
कहत कबीर भीर जनि राखहु हरि सेवा करौ तुमारी ॥ ५० ॥
कौन को पूत पिता को काकौ । कौन मेरे को देइ संतापो ॥
हरि ठग जग कौ ठगौरी लाई । हरि के वियोग कैसे जियो मेरी माई ॥
कौन को पुरुष कौन की नारी । या तत लेहु सरीर बिचारी ॥
कहि कबीर ठग स्यों मन मान्या । गई ठगौरी ठग पहिचान्या ॥५१॥
क्या जप क्या तप क्या व्रत पूजा । जाकै रिदै भाव है दूजा ॥

रे जन मन माधव स्यों लाइयै । चतुराई न चतुर्भुज पाइयै ।।
परिहरि लोभ अरु लोकाचार । परिहरि काम क्रोध अहंकार ।।
कर्म करत बद्धे अहंमेव । मिल पाथर की करही सेव ।।
कहु कबीर भगत कर पाया । भोले भाइ मिले रघुराया ।। ५२ ।।
क्या पढ़िये क्या गुनियै । क्या बेद पुराना सुनियै ।।
पढ़े सुनै क्या होई । जौ सहज न मिलियो सोई ।।
हरि का नाम न जपसि गवारा । क्या सोचहि वारंबारा ।।
अंधियारे दीपक चहियै । इक वस्तु अगोचर लहियै ।।
वस्तु अगोचर पाई । घट दीपक रहा समाई ।।
कहि कबीर अब जान्या । जब जान्या तौ मन मान्या ।।
मन माने लोग न पतीजै । न पतीजै तौ क्या कीजै ।। ५३ ।।
खसम मरे तौ नारी न रोवै । उस रखवारा औरो होवै ।।
रखवारे का होइ बिनास । आगै नरक ईहा भोग बिलास ।।
एक सुहागनि जगत पियारी । सगले जीय जंत कीना नारी ।।
सोहागनि गल सोहै हार । संत को विष बिगसै संसार ।।
करि सिंगार बहै पखियारी । संत की ठिठकी फिरै बिचारी ।।
संत भागि ओह्र पाछै परै । गुरु परसादी मारहु डरै ।।
साकत की ओह पिंड पराइथि । हमकौ दृष्टि परै त्रखि डाइथि ।।
हम तिसका बहु जान्या भेव । जबहु कृपाल मिले गुरु देव ।।
कहु कबीर अब बाहर परी । संसारै कै अंचल लरी ।। ५४ ।।
गंग गुसाइन गहिर गंभीर । जंजीर बांधि करि खरे कबीर ।।
मन न डिगै तन काहे को डराइ । चरन कमल चित रह्यो समाइ ।।
गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर । मृगछाला पर बैठे कबीर ।।
कहि कबीर कोऊ संग न साथ । जल थल राखन है रघुनाथ ।। ५५ ।।
गंगा के संग सलिता बिगरी । सो सलिता गंगा होइ निबरी ।।
बिगरयो कबीरा राम दुहाई । साचु भयो अन कतहि न जाई ।।

चन्दन कै संगि तरवर बिगरयो । सो तरवर चन्दन ह्वै निवरयौ ॥
पारस के सँग ताँबा बिगरयो । सो ताँबा कंचन ह्वै निवरयो ॥
संतन संग कबीरा बिगरयो । सो कबीर राम ह्वै निबरयो ॥ ५६ ॥

गगन नगरि इक बूँद न वर्षै नाद कहा जु समाना ।
पारब्रह्म परमेसरु माधव परम हंस ले सिधाना ॥
बाबा बोलते ते कहा गये । देही के संगि रहते ।
सुरति माहि जो निरते करते कथा बार्त्ता कहते ॥
बजावन-हारो कहाँ गयो जिन इहु मंदर कीना ।
साखी सबद सुरति नहीं उपजै खिंच तेज सब लीना ॥
स्रवनन बिकल भये संगि तेरे इंद्री का बल थाका ।
चरन रहे कर ढरक परे हैं मुखहु न निकसै बाता ॥
थाके पंचदूत सब तस्कर आप आपणे भ्रमते ।
थाका मन कुंजर उर थाका तेज सूत धरि रमते ॥
मिरतक भये दसै बंद छूटे मित्र भाई सब छोरे ।
कहत कबीरा जो हरि ध्यावै जीवत बंधन तोरे ॥ ५७ ॥

गगन रसाल चुए मेरी भाठी । संचि महारस तन भया काठी ॥
वाकौ कहियै सहज मतवारा । पीवत रांम रस ज्ञान विचारा ॥
सहज कलालनि जौ मिलि आई । आनंदि माते अनदिन जाई ॥
चीन्हत चोत निरंजन लाया । कहु कबीर तौ अनुभव पाया ॥ ५८ ॥

गज नव गज दस गज इक्कीस पुरी आये कत नाई ।
साठ सूत नव खंड बहत्तर पाटु लगो अधिकाई ॥
गई बुनावन माहो । घर छोड़यो जाइ जुलाहो ॥
गजी न मिनियै तोलि न तुलियै पाँच न सेर अढ़ाई ।
जौ करि पाचन बेगि न पावै झगरू करै घर आई ॥
दिन की बैठ खसम की बरकस इह बेला कत आई ।
छूटे कूंडे भीगै पुरिया चल्यो जुलाहो रिसाई ॥

छोछो नली तंतु नहीं निकसै नतरु रही उरझाही ।
छोड़ि पसारई हारहु बपुरो कहु कबीर समुझाही ।। ५९ ।।

गज साढे तैं तै धोतिया तिहरे पाइनि तग्गा ।
गली जिना जपमालिया लोटे हत्थिनि बग्गा ।।
ओइ हरि के संतन आखि यहि बानारसि के ठग्गा ।।
ऐसे संत न मोकौ भावहि । डाला स्यों पेड़ा गटकावहि ।।
बासन मानि चरावहि ऊपर काठो धोइ जलावहि ।
बसुधा खोदि करहि दुइ चूल्हे सारे माणस खावहि ।।
ओई पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु अपरस कहावहि ।
सदा सदा फिरहि अभिमानी सकल कुटंब डुबावहि ।।
जित को लाया तितही लागा तैसै करम कमावै ।
कहु कबीर जिसु सति गुरु भेटै पुनरपि जनमि न आवै ।।६०।।

गर्भ वास महि कुल नहिं जाती । ब्रह्म बिंद ते सब उतपाती ।।
कहु रे पंडित बामन कब के होये। बामन कहि कहि जनम मति खोये ।।
जौ तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया । तौ आन बाट काहे नहीं आया ।।
तुम कत ब्राह्मण हम कत शूद । हम कत लोहू तुम कत दूध ।।
कहु कबीर जो ब्रह्म बिचारै । सो ब्राह्मण कहियत है हमारे ।। ६१ ।।

गुड़ करि ज्ञान ध्यान करि महुवा भाठी मन धारा ।
सुषमन नारी सहज समानी पीवै पीवन हारा ।।
अवधू मेरा मन मतवारा ।
उन्मद चढ़ा रस चाख्या त्रिभवन भया उजियारा ।।
दुइ पुर जोरि रसाई भाठी पीउ महा रस भारी ।
काम क्रोध दुइ किये जलो ता छूटि गई संसारी ।।
प्रगट प्रगास ज्ञान गुरु गम्मित सति गुरु ते सुधि पाई ।
दास कबीर तासु मदमाता उचकि न कबहू जाई ।। ६२ ।।

गुरु चरण लागि हम विनवत पूछत कह जीव पाया ।
कौन काज जग उपजै बिनसै कहहु मोहि समझाया ॥
देव करहु दया मोहि मारग लावहु जितु भव बंधन टूटै ।
जनम मरण दुख फेड़ कर्म सुख जीय जनम ते छूटै ॥
माया फांस बंधन ही फारै अरु मन सुन्नि न लूके ।
आपा पद निर्वाण न चीन्ह्या इन विधि अभिउ न चूके ॥
कही न उपजै उपजी जाणै भाव प्रभाव विहूणा ।
उदय अस्त की मन बुधि नासी तौ सदा सहजि लव लीणा ॥
ज्यो प्रतिबिंब बिंब कौ मिलिहै उदक कुंभ बिगराना ।
कहु कबीर ऐसा गुण भ्रम भागा तौ मन सुन्न समाना ॥६३॥

गुरु सेवा ते भगति कमाई । तब इह मानस देही पाई ॥
इस देही कौ सिमरहि देव । सो देही भुज हरि की सेव ॥
भजहु गुबिंद भूलि मत जाहु । मानस जनम का रही चाहु ॥
जब लग जरा रोग नहिं आया । जब लग काल ग्रसी नहि काया ॥
जब लग विकल भई नहीं बानी । भजि लेहि रे मन सारंगपानी ॥
अब न भजसि भजसि कब भाई । आवै अंत न भजिआ जाई ॥
जो किछु करहि सोई अबि सारू । फिर पछताहु न पावहु पारू ॥
सो सेवक जो लाया सेव । तिनही पाये निरंजन देव ॥
गुरु मिलि ताके खुले कपाट । बहुरि न आवै योनी बाट ॥
इही तेरा अवसर इह तेरी बार । घट भीतर तू देखु बिचारि ॥
कहत कबीर जीति कै हारि । बहु बिधि कह्यो पुकारि पुकारि ॥६४॥

गृह तजि बन खंड जाइयै चुनि खाइयै कंदा ।
अजहु बिकार न छोड़ई पापी मन मंदा ॥
क्यों छूटौं कैसे तरौं भव निधि जल भारी ।
राखु राखु मेरे बीठुला जन सरनि तुमारी ॥

विषय विषय की वासना तजिय न जाई ।
अनिक यत्न करि राखियै फिरि फिरि लपटाई ॥
जरा जावन जोबन गया कछु किया न नीका ।
इह जीया निर्मोल को कौड़ी लगि मीका ॥
कहु कबीर मेरे माधवा तू सर्वव्यापी ।
तुम सम सरि नाहीं दयाल मो सम सरि पापी ॥ ६५ ॥

गृह सोभा जाकै रे नाहि । आवत पहिया खूधे जाहि ॥
वाकै अंतर नहीं संतोष । विन सोहागनि लागै दोष ॥
धन सोहागनि महा पवीत । तपे तपीसर डालै चीत ॥
सोहागनि किरपन की पूती । सेवक तजि जग तस्यो सूती ॥
साधू कै ठाढी दरबारि । सरनि तेरी मोकौ निस्तारि ॥
सोहागनि है अति सुंदरी । पगनेवर छनक छन हरी ॥
जौ लग प्रान तऊ लग संगे । नाहिन चली वेगि उठि नंगे ॥
सोहागनि भवन त्रै लीया । दस अष्ट पुराण तीरथ रस कीया ॥
ब्रह्मा विष्णु महेसर बेधे । बड़े भूपति राजे है छेधे ॥
सोहागनि उर वारि न पारि । पाँच नारद कै संग विधवारि ॥
पाँच नारद के मिटवे फूटे । कहु कबीर गुरु किरपा छूटे ॥६६॥

चंद सूरज दुइ जोति सरूप । जोती अंतरि ब्रह्म अनूप ॥
करु रे ज्ञानी ब्रह्म विचारु । जोती अंतरि धरि आप सारु ॥
हीरा देखि हीरै करौ आदेस । कहै कबीर निरंजन अलेखु॥६७॥

चरन कमल जाकै रिदै बसै सो जन क्यों डोलै देव ।
मानौ सब सुख नवनिधि ताके सहजि सहजि जस बोलै देव ॥
तब इह मति जौ सब महि पेखै कुटिल गाँठि जब खोलै देव ।
बारंबार माया ते अटकै लै नरु जा मन तोलै देव ॥
जहँ उह जाइ तहीं सुख पावै माया तासु न झोलै देव ।
कहि कबीर मेरा मन मान्या राम प्रीति की ओलै देव ॥६८॥

चार पाव दुइ सिंग गुंग मुख तब कैसे गुन गैहै ।
ऊठत बैठत ठेगा परिहै तब कत मूड लुकै है ॥
हरि बिन बैल बिराने ह्वैहै ।
फाटे नाक न टूटै का धन कोदौ को भुस खैहै ॥
सारो दिन डोलत बन महिया अजहु न पैट अघैहै ।
जन भगतन को कहो न मानो कीयो अपनो पैहै ॥
दुख सुख करत महा भ्रम बूड़ौ अनिक योनि भरमैहै ।
रतन जनम खोयो प्रभु बिसरयो इह अवसर कत पैहै ॥
भ्रमत फिरत तेलक के कपि ज्यों गति बिनु रैनि बिहैहै ।
कहत कबीर राम नाम बिनु मूंड धुनै पछितैहै ॥६९॥
चारि दिन अपनी नौबति चले बजाइ ।
इतन कु खटिया गठिया मटिया संगि न कछु लै जाइ ॥
देहरी बैठी मेहरी रोवै द्वारे लौ संग माइ ।
मरहट लगि सब लोग कुटुंब मिलि हंस इकेला जाइ ॥
वैसु तवै वितबै पुर पाटन बहुरि न देखै आई ।
कहत कबीर राम की न सिमरहु जन्म अकारथ जाई ॥ ७० ॥
चोवा चंदन मर्दन अंगा । सो तन जलै काठ कै संगा ॥
इसु तन धन की कौन बड़ाई । धरनि परै उरवारि न जाई ॥
रात जि सोवहि दिन करहि काम । इक खिन लेहि न हरि को नाम ॥
हाथि त डोर मुख खायो तंबोर । मरती बार कसि बाँध्यो चोर ॥
गुरु मति रहि रसि हरि गुन गावै । रामै राम रमत सुख पावै ॥
किरपा करि कै नाम दृढ़ाई । हरि हरि बास सुगंध बसाई ॥
कहत कबीर चेत रे अंधा । सत्य राम झूठा सब धंधा ॥ ७१ ॥
जग जीवन ऐसा सुपने जैसा जीवन सुपन समानं ।
साचु करि हम गाँठ दीनी छोड़ि परम निधानं ।
बाबा माया मोह हितु कीन । जिन ज्ञान रतन हिरि लीन ॥

नयन देखि पतंग उरझै पसु न देखै आगि ।
काल-फास न मुगध चेतै कनिक कामिनि लागि ।।
करि बिचारि बिकार परिहरि तरन तारन सोइ ।
कहि कबीर जग जीवन ऐसा दुतिया नहीं कोइ ।। ७२ ।।

जन्म मरन का भ्रम गया गोव्यंद लिव लागी ।
जीवत सुन्नि समानिया गुरु साखी जागी ।।
कासी ते धुनि ऊपजै धुनि कासी जाई ।
कासी फूटी पंडिता धुनि कहाँ समाई ।।
त्रिकुटी संधि मैं पेखिया घटहू घट जागी ।
ऐसी बुद्धि समाचरी घट माहिं तियागी ।।
आप आप ते जानिया तेज तेज समाना ।
कहु कबीर अब जानिया गोबिंद मन माना ।। ७३ ।।

जब जरियै तब होइ भसम तन रहै किरम दल खाई ।
काची गागरि नीर परतु है या तन की इहै बडाई ।।
काहे भया फिरतौ फूला फूला ।
जब दस मास उरध मुख रहता सो दिन कैसे भूला ।।
ज्यों मधु मक्खी त्यों सठोरि रसु जोरि जोरि धन कीया ।
मरती बार लेहु लेहु करियै भूत रहन क्यों दीया ।।
देहुरी लौं वरी नारि संग भई आगै सजन सुहेला ।
मरघट लौं सब लागे कुटुंव भयो आगे हंस अकेला ।।
कहत कबीर सुनहु रे प्रानी परे काल ग्रस कूआ ।
झूठी माया आप बँधाया ज्यों नलनी भ्रमि सूआ ।। ७४ ।।

जब लग तेल दीवे मुख बाती तब सूझै सब कोई ।
तेल जलै बाती ठहरानी सूना मंदर होई ।।
रे बौरे तुहि घरी न राखै कोई । तूं राम नाम जपि सोई ।।

काकी मात पिता कहु काको कौन पुरुष की जोई।
घट फूटे कोऊ बात न पूछै काढहु काढहु होई॥
देहुरी बैठी माता रोवै खटिया ले गये भाई।
लट छिटकाये तिरिया रोवै हंस इकेला जाई॥
कहत कबीर सुनहु रे संतहु भैसागर कै ताई।
इस बंदे सिर जुलम होत है जम नहीं घटै गुसाई॥ ७५॥
जब लग मेरी मेरी करै। तब लग काज एक नहि सरै॥
जब मेरी मेरी मिटि जाई। तब प्रभु काज सवारहि आई॥
ऐसा ज्ञान बिचारु मना। हरि किन सिमरहु दुःखभंजना॥
जब लगि सिंघ रहै बन माहि। तब लग बन फूलई नाहि॥
जब ही स्यार सिंघ कौ खाइ। फूल रही सगली बनराइ॥
जीतो बूडै हारो तरै। गुरु परसादि पार उतरै॥
दास कबीर कहै समझाइ। केवल राम रहहु लिव लाइ॥७६॥
जब हम एको एक करि जानिया। तब लोग काहे दुख मानिया॥
हम अपतह अपनी पति खोई। हमरै खोज परहु मति कोई॥
हम मंदे मंदे मन माही। साँझ पाति काहू स्यों नाहीं॥
पति मा अपति ताकी नहीं लाज। तब जानहु गे जब उघरै गो पाज॥
कहु कबीर पति हरि परवानु। सरब त्यागि भजु केवल रामु॥ ७७॥
जल महि मीन माया के बेधे। दीपक पतंग माया के छेदे॥
काम माया कुंचर कौ ब्यापै। भुअंगम भृंग माया माहि खापै॥
माया ऐसी मोहनी भाई। जेते जीय तेते डहकाई॥
पंखी मृग माया महि राते। साकर मांखी अधिक संतापे॥
तुरे उष्ट माया महि भेला। सिध चौरासी माया महि खेला॥
छिय जती माया के बन्दा। नवै नाथु सूरज अरु चंदा॥
तपे रखीसर माया महि सूता। माया महि काल अरु पंच दूता॥
स्वान स्याल माया महि राता। बंतर चीते अरु सिंघाता॥

माजार गाडर अरु लूबरा । बिरख मूल माया महि परा ॥
मया अन्तर भीने देव । सागर इन्द्रा अरु धरतेव ॥
कहि कबीर जिसु उदर तिसु माया । तब छूटै जब साधू पाया ॥७८॥

जल है सूतक थल है सूतक सूतक ओपति होई ।
जनमे सूतक मुए फुनि सूतक सूतक परज बिगोई ॥
कहुरे पंडिया कौन पवीता । ऐसा ज्ञान जपहु मेरे मीता ॥
नैनहु सूतक बैनहु सूतक सूतक स्रवनी होई ।
ऊठत बैठत सूतक लागै सूतक परै रसोई ॥
फांसन की विधि सब कोऊ जानै छूटन की इकु कोई ।
कहि कबीर राम रिदै विचारै सूतक तिनै न होई ॥ ७९ ॥

जहँ किछु अहा तहाँ किछु नाही पंच तत्त्व तह नाहीं ।
इड़ा पिंगला सुषमन बंदे ये अवगुन कत जाहीं ॥
तागा तूटा गगन बिनसि गया तेरा बोलत कहा समाई ।
एह संसा मोको अनदिन ब्यापै मोकौ कौन कहै समझाई ॥
जह ब्रह्मंड पिंड तह नाही रचनहार तह नाही ।
जोड़नहारो सदा अतीता इह कहियै किसु माही ॥
जोड़ी जुड़ै न तोड़ी तूटै जब लग होइ बिनासी ।
काको ठाकुर काको सेवक को काहू के जासी ॥
कहु कबीर लिव लागि रही है जहाँ बसै दिन राती ।
वाका मर्म वोही पर जानै ओहु तो सदा अविनासी ॥ ८० ॥

जाके निगम दूध के ठाटा । समुंद बिलोवन कौ माटा ॥
ताकी होहु बिलोवनहारी । क्यों मेटैगी छाछि तुम्हारी ॥
चेरी तू राम न करसि भतारा । जग जीवन प्रान अधारा ॥
तेरे गलहि तौक पग बेरी । तू घर घर रमिए फेरी ॥
तू अजहु न चेतसि चेरी । तू जेम बपुरी है हेरी ॥
प्रभु करन करावन हारी । क्या चेरी हाथ बिचारी ॥

सोई सोई जागी ! जितु लाई तितु लागी ॥
चेरी तै सुमति कहाँ ते पाई । जाके भ्रम की लीक मिटाई ॥
सुरखु कबीरै जान्या । मेरो गुरु प्रसाद मन मान्या ॥ ८१ ॥

जाकै हरि सा ठाकुर भाई । मुकति अनन्त पुकारन जाई ॥
अब कहु राम भरोसा तोरा । तब काहू का कौन निहोरा ॥
तीनि लोक जाके हहि भार ! सो काहे न करै प्रतिपार ॥
कहु कबीर इक बुद्धि विचारी ! क्या बस जौ विष दे महतारी ।८२॥

जिन गढ़ कोटि किए कंचन के छोड़ गया सो रावन ।
काहे कीजत है मन भावन ॥
जब जम आइ केस ते पकरै तह हरि को नाम छड़ावन ॥
काल अकाल खसम का कीना इहु परपंच वधावन ।
कहि कबीर ते अंते मुक्ते जिन हिरदै राम रसायन ॥ ८३ ॥

जिह मुख वेद गायत्री निकसै सो क्यों ब्रह्मन बिसरु करै ।
जाके पाय जगत सब लागै सो क्यों पंडित हरि न कहै ॥
काहे मेरे ब्राह्मन हरि न कहहि । रामु न बोलहि पांडे दोजक भरहि॥
आपन ऊच नीच घरि भोजन हठे करम करि उदर भरहि ।
चौदस अमावस रचि रचि माँगहि कर दैपक लै कूप परहि ॥
तूं ब्रह्मन मैं कासी का जुलहा मोहि तोहि बराबरि कैसे कै बनहि ।
हमरे राम नाम कहि उबरे बेद भरोसे पांडे डूब मरहि ॥ ८४ ॥

जिह कुल पूत न ज्ञान विचारी । विधवा कस न भई महतारी ॥
जिह नर राम भगति नहीं साधी । जनमत कस न मुयो अपराधी॥
मुचमुच गर्भ गये कीन बचिया । बुड़भुज रूप जीवे जग मझिया ॥
कहु कबीर जैसे सुंदर स्वरूप । नाम बिना जैसे कुबज कुरूप ॥८५॥
जिह मरनै सब जगत तरास्या । सो मरना गुरु सबद प्रगास्या ॥
अब कैसे मरौं मरन मन मान्या । मर मर जाते जिन राम न जान्या॥

मरनौ मरन कहै सब कोई । सहजे मरै अमर होइ सोई ॥
कहु कबीर मन भया अनंदा । गया भरम रहा परमानंदा ॥८६॥

जिह सिमरनि होइ मुकित दुवार । जाहि बैकुंठ नहो संसारि ॥
निर्भव कै घर बजावहि तूर । अनहद वजहि सदा भरपूर ॥
ऐसा सिमरन कर मन माहि । बिनु सिमरन मुक्ति कत नाहि ॥
जिह सिमरन नाही ननकारु । मुक्ति करै उतरै बहुभारु ॥
नमस्कार करि हिरदय मांहि । फिर फिर तेरा आवन नाहिं ॥
जिह सिमरन करहि तू केल । दीपक बाँधि धरयो तिन तेल ॥
सो दीपक अमर कुँ संसारि । काम क्रोध विष काढिले मार ॥
जिह सिमरन तेरी गति होइ । सो सुमिरन रखु कंठ पिरोइ ॥
सो सिमरन करि नहीं राखु उतारि । गुरु परसादी उतरहि पार ॥
जिह सिमरन नाही तुहि कान । मंदर सोवहि पटंबरि तानि ॥
सेज सुखाली बिगसै जीउ । सो सिमरन तू अनहद पीउ ॥
जिह सिमरन तेरी जाइ बलाई । जिह सिमरन तुझ पोहै न माई ॥
सिमरि सिमरि हरि हरि मन गाइयै । इह सिमरन सति गुरु ते पाइयै ॥
सदा सदा सिमरि दिन राति । ऊठत बैठत सासि गिरासि ॥
जागु सोई सिमरन रस भोग । हरि सिमरन पाइयै संजोग ॥
जिह सिमरन नाही तुझ भाऊ । सो सिमरन राम नाम अधारू ॥
कहि कबीर जाका नहीं अंतु । तिसके आगे तंतु न मंतु ॥८७॥

जिहि मुखि पाँचौ अमृत खाये । तिहि मुख देखत लूकट लाये ॥
इक दुख राम राइ काटहु मेरा । अग्नि दहै अरु गरभ बसेरा ॥
काया विगूति बहु विधि माती । को जारे को गड़ले माटी ॥
कहु कबीर हरि चरण दिखावहु । पाछे ते जम कों न पठावहु ॥८८॥

जिह सिर रचि रचि बाँधत पाग । सो सिर चुंस सवारहि काग ॥
इसु तन धन कौ क्या गर्बीय्या । राम नाम काहे न दढ़ीया ॥
कहत कबीर सुनहु मन मेरे । इही हवाल होहिंगे तेरे ॥ ८९ ॥

जीवत पितर न माने कोऊ मुएं सराद्ध कराही ।
पितर भी बपुरे कहु क्यों पावहि कौआ कूकर खाही ॥
मोंकौ कुसल बतावहु कोई ।
कुसल कुसल करते जग बिनसै कुसल भी कैसे होई ॥
माटी के करि देवी देवा तिसु आगे जीउ देही ।
ऐसे पितर तुम्हारे कहियहि आपन कह्या न लेही ॥
सरजीव काटहि निर्जीव पूजहि अंत काल कौ भारी ।
राम नाम की गति नहीं जानी भय डूबे संसारी ॥
देवी देवा पूजहि डोलहि पारब्रह्म नहीं जाना ।
कहत कबीर अकुल नहीं चेत्या बिषया स्यों लपटाना ॥ ९० ॥
जीवत मरै मरै फुनि जीवै ऐसे सुन्नि समाया ।
अंजन माहिं निरंजन रहियै बहुरि न भव जल पाया ॥
मेरे राम ऐसा खीर बिलोइयै ।
गुरु मति मनुवा अस्थिर राखहु इन बिधि अमृत पिओइयै ॥
गुरु कै बाणि बजर कलछेदी प्रगट्या पद परगासा ।
शक्ति अधेर जेवड़ो भ्रम चूका निहचल सिव घर बासा ॥
तिन बिनु बाणै धनुष चढ़ाइयै इहु जग बेध्या भाई ।
दह दिसि बूड़ी पवन झुलावै डोरि रही लिव लाई ॥
उनमन मनुवा सुन्नि समाना दुबिधा दुर्मति भागी ।
कहु कबीर अनुभौ इकु देख्या राम नाम लिव लागी ॥ ९१ ॥
जो जन भाव भगति कछु जानै ताको अचरज काहो ।
बिनु जल जल महि पैसि न निकसै तौ ढरि मिल्या जुलाहो ॥
हरि के लोग मैं तौ मति का भोरा ।
जौ तन कासी तजहि कबीरा रामहि कहा निहोरा ॥
कहतु कबीर सुनहु रे लोई भरम न भूलहु कोई ।
क्या कासी क्या ऊखरु मगहर राम रिदय जौ होई ॥ ९२ ॥

जेते नतन करत ते डूबे भव सागर नहीं तार्यौ रे।
कर्म धर्म करते बहु संजम अहं बुद्धि मन जार्यौ रे॥
साँस ग्रास को दाता ठाकुर सो क्यों मनहु विसार्यो रे।
हीरा लाल अमोल जनम है कौड़ी बदलै हार्यो रे॥
तृष्णा तृषा भूख भ्रमि लागी हिरदै नाहिं बिचार्यो रे।
उनमत मान हिर्यो मन माही गुरु का सबद न धार्यो रे॥
स्वाद लुभत इंद्री रस प्रेर्यो मद रस लैत बिकार्यो रे।
कर्म भाग संतन संगाने काष्ठ लोह उद्धार्यो रे॥
धावत जोनि जनम भ्रमि थाके अब दुख करि हम हार्यो रे।
कहि कबीर गुरु मिलत महा रस प्रेम भगति निस्तार्यो रे॥९३॥
जेह बाझु न जीया जाई। जौ मिलै ता घाल अघाई॥
सद जीवन भलो कहाही। मुए बिन जीवन नाहो॥
अब क्या कथियै ज्ञान विचारा। निज निर्खत गत ब्योहारा॥
घसि कुंकम चंदन गार्या। बिन नयनहु जगत निहार्या॥
पूत पिता इक जाया। बिन ठाहर नगर बनाया॥
जाचक जन दाता पाया। सो दिया न जाई खाया॥
छोड्या जाइ न मूका। औरन पहि जाना चूका॥
जो जीवन मरना जानै। सो पंच सैल सुख मानै॥
कबीरै सो धन पाया। हरि भेटत आप मिटाया॥ ९४॥
जैसे मन्दर महि वल हरना ठाहरै। नाम बिना कैसे पार उतरै॥
कुंभ बिना जल ना टिकावै। साधू बिन ऐसे अवगत जावै॥
जारौ तिसै जु राम न चेतै। तन मन रमत रहै महि खेतै॥
जैसे हलहर बिना जिमी नहि बोइयै। सूत बिना कैसे मणी परोइयै॥
घुंडी बिन क्या गंठि चढ़ाइयै। साधू बिन तैसे अवगत जाइयै॥
जैसे मात पिता बिन बाल न होई। बिंब बिना कैसे कपरे धोई॥
घोर बिना कैसे असवार। साधू बिन नाहीं दरबार॥

जैसे बाजे बिन नहीं लीजै फेरी । खसम दुहागनि तजिहै हेरी ॥
कहै कबीर ऐकै करि करना । गुरु मुखि होई बहुरि नही मरना ॥९५॥

जोइ खसम है जाया ।
पूत बाप खेलाथा । विन रसना खीर पिलाथा ॥
देखहु लोगा कलि को भाऊ । सुति मुकलाई अपनी माऊ ॥
पग्गा बिन हुरिया मारता । बदनै बिन खिन खिन हासता ॥
निद्रा बिन नरु पै सोवै । बिनु बासन खीर बिलोवै ॥
बिनु अस्थन गऊ लवेरी । पैड़े बिनु बाट घनेरी ॥
विन सत गुरु बाट न पाई । कहु कबीर समझाई ॥ ९६ ॥

जो जन लेहि खसम का नाउ । तिनकै सद बलिहारै जाउ ॥
सो निर्मल निर्मल हरि गुन गावै । सो भाई मेरै मन भावै ॥
जिहि घर राम रह्या भरपूरि । तिनकी पग पंकज हम धूरि ॥
जाति जुलाहा मति का धीरु । सहजि सहजि गुन रमै कबीरु ॥ ९७ ॥

जो जन परमिति परमनु जाना । बातन ही बैकुंठ समाना ॥
ना जानैं बैकुंठ कहाही । जान न सब कहहित हाही !
कहन कहावन नहि पतियैहै । तौ मन मानै जातेहु मैं जइहै ॥
जब लग मन वैकुंठ की आस । तब लगि होहि नहीं चरन निवास ॥
कहु कबीर इह कहियै काहि । साध संगति वैकुंठै आहि ॥९८॥

जो पाथर कौ कहिते देव । ताकी बिरथा होवै सेव ॥
जो पाथर की पांई पाई । तिस की घाल अजाई जाई ॥
ठाकुर हमरा सद बोलंता । सर्व जिया कौ प्रभु दान देता ॥
अंतर देव न जानै अंधु । भ्रम का मोह्या पावै फंधु ॥
न पाथर बोलै ना किछु देइ । फोकट कर्म निहफल है सेइ ॥
जे मिरतक के चंदन चढ़ावै । उसते कहहु कौन फल पावै ॥
जो मिरतक को विष्टा मांहि रुलाई । तो मिरतक का क्या घटि

कहत कबीर हौं करहुँ पुकार । समझि देखु साकत गावार ॥
दूजै भाइ बहुत घर गाले । राम भगत है सदा सुखाले ॥ ९९ ॥

जो मैं रूप किये बहुतेरे अब फुनि रूप न होई ।
तागा तंत साज सब थाका राम नाम बसि होई ॥
अब मोहि नाचनो न आवै । मेरा मन मंदरिया न बजावै ॥
काम क्रोध काया लै जारी तृष्णा गागरि फूटी ।
काम चोलना भया है पुराना गया भरम सब छूटी ॥
सर्व भूत एकै करि जान्या चूके बाद बिबादा ।
कहि कबीर मैं पूरा पाया भये राम परसादा ॥ १०० ॥

जौ तुम मोकौ दूरि करत हो तौ तुम मुक्ति बतावहु ।
एक अनेक होइ रह्यो सकल महि अब कैसे भर्मावहुगे ॥
राम मोकौ तारि कहाँ लै जैहै ।
सोधौ मुक्ति कहादेउ कैसी करि प्रसाद मोहि पाइहै ॥
तारन तरन कवै लगि कहियै जब लग तत्व न जान्या ।
अब तौ बिमल भए घट ही महि कहि कबीर मन मान्या ॥१०१॥

ज्यों कपि के कर मुष्टि चनन की लुबिध न त्यागि दयो ।
जो जो कर्म किये लालच स्यों ते फिर गरहि परयो ॥
भगति बिनु बिरथे जनम गयो ।
साध संगति भगवान भजन बिन कही न सच रह्यो ॥
ज्यों उद्यान कुसुम परफुल्लित किनहि न घ्राउ लयो ।
तैसे भ्रमत अनेक जोनि महि फिरि फिरि काल हयो ॥
या धन जोबन अरु सुत दारा पेखन कौ जु दयो ।
तिनही माहि अटकि जो उरझें इंद्री प्रेरि लयो ॥
औध अनल तन तिन को मंदर चहु दिसि ठाठ ठयो ।
कहि कबीर भव सागर तरन कौ मैं सति गुरु ओट लयो ॥१०२॥

ज्यों जल छोडि बाहर भयो मीना । पूरब जनम हौं तप का हीना ॥
अब कहु राम कवन गति मेरी । तजीले बनारस मति भई थेरी ॥
सकल जनम सिवपुरी गवाया । मरती बार मगहर उठि आया ॥
बहुत वर्ष तप कीया कासी । मरन भया मगहर की बासी ॥
कासी मगहर सम बीचारी । ओछी भगति कैसे उतरसि पारी ॥
कहु गुरु गजि सिव सब को जानै । मुआ कबीर रमत श्री रामै ॥१०३॥

ज्योति की जाति जाति की ज्योती । तितु लागे कँचुआ फल मोती ॥
कौन सुघर जो निर्भौ कहियै । भव भजि जाइ अभय ह्वै रहियै ॥
तट तीरथ नहिं मन पतियाइ । चार अचार रहे उर भाइ ॥
पाप पुण्य दुइ एक समान । निज घर पारस तजहु गुन आन ॥१०४॥

टेढ़ी पाग टेढ़े चले लागे बीरे खान ।
भाउ भगत स्यों काज न कछुए मेरो काम दीवान ॥
राम बिसारयो है अभिमानी ।
कनक कामिनी महा सुंदरी पेखि पेखि सचु मानी ॥
लालच झूठ विकार महा मद इह बिधि औध बिहानि ।
कहि कबीर अंत की बेर आई लागो काल निदानि ॥ १०५ ॥

डंडा मुंद्रा खिंथा आधारी । भ्रम कै भाइ भवै भेषधारी ॥
आसन पवन दूरि करि बवरे । छोड़ि कपट नित हरि भज बवरे ॥
जिह तू याचहि सो त्रिभुवन भोगी । कहि कबीर कैसो जग जोगी॥१०६॥

तन रैनी मन पुनरपि करिहौ पाचौ तत्त्व बराती ।
राम राइ स्यों भाँवरि लैहो आतम तिह रँगराती ॥
गाउ गाउ री दुलहनी मंगलचारा ।
मेरे गृह आये राजा राम भतारा ॥
नाभि कमल महि बेदी रचि ले ब्रह्म ज्ञान उचारा ।
राम राइ स्यों दूलहो पायो अस बड़ भाग हमारा ॥

सुर नर मुनि जन कौतक आये कोटि तैतीसो जाना ।
कहि कबीर मोहि ब्याहि चले हैं पुरुष एक भगवाना ॥१०७॥
तरवर एक अनन्त डार शाखा पुहुप पत्र रस भरिया ।
इह अमृत की वाड़ी है रे तिन हरि पूरैं करिया ॥
जानी जानी रे राजा राम की कहानी ।
अन्तर ज्योति राम परगासा गुरु मुख बिरलैं जानी ॥
भवर एक पुहुप रस बींधा वार हले उर धरिया ।
सोरह मध्ये पवन झंकोरओ आकासे फर फरिया ॥
सहज सुन्न इक बिरवा उपज्या धरती जलहर सोख्या ।
कहि कबीर हौं ताका सेवक जिनका इहु बिरवा देख्या ॥१०८॥
तूटे तागे निखुटी पानि । द्वार ऊपर झिलिकावहि कान ॥
कूच बिचारे फूए फाल । या मुंडिया सिर चढ़िबो काल ॥
इहु मुंडिया सगलो द्रव खोई । आवत जात ना कसर होई ॥
तुरी नारि की छोड़ी बाता । राम नाम वाका मन राता ॥
लरिकी लरिकन खैबो नाहि । मुंडिया अनदिन धाये जाहि ॥
इक दुइ मन्दर इक दोइ बाट । हमकौ साथरु उनको खाट ॥
मूंड पलोसि कमर बधि पोथी । हमकौ चाबन उनकौ रोटी ॥
मुंडिया मुंडिया हूए एक । ए मुंडिया बूडत की टेक ॥
सुनि अंधलो लोई बेपीर। इन मुंडियन भजि सरन कबीर॥१०९॥
तू मेरो मेरु परबत सुवामी ओट गही मैं तेरी ।
ना तुम डोलहु ना हम गिरते रखि लीनी हरि मेरी ॥
अब तब जब कब तूही तूही । हम तुअ परसाद सुखी सदही ॥
तोरे भरोसे मगहर बसियो । मेरे तन की तपति बुझाई ॥
पहिले दर्सन मगहर पायो । फुनि कासी बसे आई ॥
जैसा मगहर तैसी कासी हम एकै करि जानी ।
हम निर्धन ज्यो इह धन पाया मरते फूटि गुमानी ॥१'

करे गुमान चुभहि तिसु सूला कोउ काढ़न कौ नाहीं ।
अजै सुचोभ कौ बिलल बिलाते नरके घोर पचाही ॥
कौन नरक क्या स्वर्ग विचारा संतन दोऊ राद्दे ।
हम काहू की काणि न कढ़ते अपने गुरु परसादे ॥
अब तौ जाइ चढ़े सिंघासन मिलिहै सारंगपानी ।
राम कबीरा एक भये हैं कोइ न सकै पछानी ॥ ११० ॥
थरहर कंपै बाला जीउ । ना जानौ क्या करसी पीउ ॥
रैनि गई मति दिन भी जाइ । भवर गये बग बैठे आइ ॥
काचै करवै रहै न पानी । हंस चल्या काया कुम्हलानी ॥
कारी कन्या जैसे करत सिंगारा । क्यो रलिया मानै बाझ भतारा ॥
काग उड़ावत भुजा पिरानी । कहि कबीर इह कथा सिरानी ॥१११॥
थाके नयन स्रवण सुनि थाके थाकी सुंदरि काया ।
जरा हाक दी सब मति थाकी एक न थाकसि माया ॥
बावरे तैं ज्ञान विचार न पाया । बिरथा जनम गँवाया ॥
तब लगि प्रानी तिसे सरेवहु जब लगि घट मही साँसा ।
जे घट जाइत भाव न जासी हरि के चरन निवासा ॥
जिसकौ सबद बसावै अंतर चूकहि तिसहि पियासा ।
हुक्मै बूझै चौपड़ि खेलै मन जिन ढाले पासा ॥
जो जन जानि भजहि अविगति कौ तिनका कछू न नासा ।
कहु कबीर ते जन कबहुँ न हारहि ढालि जु जानही पासा॥ ११२॥
दरमादे ठाढ़े दरबारि ।
तुझ बिन सुरति करै को मेरी दर्सन दीजै खोलि किवार ॥
तुम धन धनी उदार तियागी स्रवनन सुनियत सुजस तुमार ।
माँगौं काहि रंक सब देखौं तुम ही ते मेरो निसतार ॥
जयदेव नामा बिप्प सुदामा तिनकौ कृपा भई है अपार ।
कहि कबीर तुम समरथ दाते चारि पदारथ देत न बार ॥११३॥

दिन ते पहर पहर ते घरियाँ आयु घटै तनु छीजै ।
काल अहेरी फिरहि बधिक ज्यों कहहु कौन बिधि कीजै ॥
सो दिन आवन लागा ।
माता पिता भाई सुत बनिता कहहु कोऊ है काका ॥
जब लगु जोति काया महि बरतै आपा पसू न बूझै ।
लालच करै जीवन पद कारन लोचन कछू न सूझै ॥
कहत कबीर सुनहु रे प्रानी छोड़हु मन के भरमा ।
केवल नाम जपहु रे प्रानी परहु एक की सरना ॥ ११४ ॥
दीन बिसारयो रे दिवाने दीन बिसारयो रे ।
पेट भरयो पसुआ ज्यों सोयो मनुष जनम है हारयो ॥
साध संगति कबहूँ नहिं कीनी रचियो धंधै झूठ ।
स्वान सूकर वायस जिवै भटकत चाल्यो ऊठि ॥
आपस को दीरघ करि जानै औरन कौ लघु मान ।
मनसा वाचा करमना मैं देखे दोजक जान ॥
कामी क्रोधी चातुरी बाजीगर बेकाम ।
निंदा करते जनम सिरानो कबहु न सिमरयो राम ॥
कहि कबीर चेतै नहिं मूरख मुगध गवार ।
राम नाम जानियो नहीं कैसे उतरसि पार ॥ ११५ ॥
दुइ दुइ लोचन पेखा । हौं हरि बिन और न देखा ॥
नैन रहे रंग लाई । अब बेगल कहन न जाई ॥
हमरा भर्म गया भय भागा । जब राम नाम चितु लागा ॥
बाजीगर डंक बजाई । सब खलक तमासे आई ॥
बाजीगर स्वाँग सकेला । अपने रँग रवै अकेला ॥
कथनी कहि भर्म न जाई । सब कथि कथि रही लुकाई ॥
जाकौ गुरु मुखि आप बुझाई । ताके हिरदै रहया समाई ॥
गुरु किंचित किरपा कीनी । सब तन मन देह हरि लीनी ॥

कहि कबीर रँगि राता। मिल्यो जग जीवन दाता ॥ ११६ ॥
दुनिया हुसियार बेदार जागत मुसियत हौ रे भाई।
निगम हुसियार पहरुआ देखत जम ले जाई ॥
नींबु भयो आँबु आँबु भयो नींबा केला पाका झारि।
नालिएर फल सेबरिया पाका मूरख मुगध गवार ॥
हरि भयो खाँड़ु रे तुमहि बिखरियो हसतीं चुन्यो न जाइ।
कहि कबीर कुल जाति पाँति तजि चींटी होइ चुनि खाई ॥११७॥
देखा भाई ज्ञान की आई आँधी।
सबै उड़ानी भ्रम की टाटीं रहै न माया बाँधी ॥
दुचिते की दुइ थूनि गिरानी मोह बलेड़ा टूटा।
तिष्णा छानि परी धर ऊपर दुमिति भाँड़ा फूटा ॥
आँधी पाछै जो जल बर्षै तिहि तेरा जन भीना।
कहि कबीर मन भया प्रगासा उदय भानु जब चीना ॥११८॥
देइ मुहार लगाम पहिरावौ। सगल तजीनु गगन दौरावौ ॥
अपनै बिचारै असवारी कीजै। सहज कै पावड़ै पग धरि लीजै ॥
चलु रे बैकुंठ तुझहि ले तारौ। हित चित प्रेम कै चाबुक मारौ॥
कहत कबीर भले असवारा। बेद कतेब ते रहहि निरारा ॥११९॥
देही गावा जीउ धर्म हत उबसहि पंच किरसाना।
नैनू नकटू स्रवनू रसपति इन्द्री कह्या न माना ॥
बाबा अब न बसहु इह गाउ।
घरी घरी का लेखा माँगै काइथु चेतू नाउ ॥
धर्मराय जब लेखा माँगै बाकी निकसी भारी।
पंच कृसनवा भागि गए लै बाध्यौ जीउ दरबारी ॥
कहहि कबीर सुनहु रे सन्तहु खेतहि करौ निबेरा।
अब की बार बखसि बन्दे कौं बहुरि न भव जल फेरा ॥१२०॥
धन्न गुपाल धन्न गुरु देव। धन्न अनादि भूखे कब लुटह केव।

धन ओहि संत जिन ऐसी जानी। तिनकौ मिलिबो सारंगपानी ॥
आदि पुरुष ते होइ अनादि। जपियै नाम अन्न कै सादि ॥
जपियै नाम जपियै अन्न। अंभै कै संग नीका वन्न ॥
अन्ने बाहर जो नर होवहि। तीनि भवन महि अपनी खोवहि ॥
छोड़हि अन्न करै पाखंड। ना सोहागनि ना ओहि रंड ॥
जग महि बकते दूधाधारी। गुप्ती खावहि वटिका सारी ॥
अन्नै बिना न होइ सुकाल। तजियै अन्न न मिलै गुपाल ॥
कहु कबीर हम ऐसे जान्या। धन्य अनादि ठाकुर मन मान्या ॥१२१॥
नगन फिरत जो पाइयै जोग। बन का मिरग मुकति सब होग ॥
क्या नागे क्या बाँधे चाम। जब नहिं चीन्हसि आतम राम ॥
मूँड मुँडाये जो सिधि पाई। मुक्ती भेड़ न गय्या काई ॥
बिंदु राख जो तरयै भाई। खुसरै क्यों न परम गति पाई ॥
कहु कबीर सुनहू नर भाई। राम नाम बिन किन गति पाई ॥१२२॥
नर मरै नर काम न आवै। पसू मरै दस काज सँवारै ॥
अपने कर्म की गति मैं क्या जानौ। मैं क्या जानौ बाबा रे ॥
हाड़ जले जैसे लकड़ी का तूला। केस जले जैसे घास का पूला ॥
कहत कबीर तबही नर जागै। जम का डंड मूंड महि लागै ॥१२३॥
नाँगे आवन नाँगे जाना। कोइ न रहिहै राजा राना ॥
राम राजा नव निधि मेरै। संपै हेतु कलतु धन तेरै ॥
आवत संग न जात सँगाती। कहा भयो दर बाँधे हाथी ॥
लंका गढ़ सोने का भया। मूरख रावन क्या ले गया ॥
कहि कबीर कुछ गुन बीचारि। चलै जुआरी दुइ हथ झारि ॥१२४॥
नाइक एक बनजारे पाच। बरध पचीसक संग काच।
नव बहियाँ दस गोनि आहि। कसन बहत्तरि लागी ताहि ॥
मोहि ऐसे बनज स्यो ही काजु। जिह घटै मूल नित बढ़ै ब्याजु ॥
सत्त सूत मिलि बनजु कीन। कर्म भावनी संग लीन ॥

तीनि जगाती करत रारि । चलो बनजारा हाथ झारि ॥
पूँजी हिरानी बनजु टूटि। दह दिस टांडो गयो फूटि ॥
कहि कबीर मन सरसी काज। सहज समानो त भर्म भाजि॥१२५॥

ना इहु मानुष ना इहु देव । ना इहु जती कहावै सेव ॥
ना इहु जोगी ना अवधूता । ना इसु माइ न काहू पूता ॥
या मन्दर मह कौन बसाई । ता का अन्त न कोऊ पाई ॥
ना इहु गिरही ना ओदासी । ना इहु राज न भीख मँगासी ॥
ना इहु पिंड न रकतू राती । ना इहु ब्रह्मन ना इहु खाती ॥
ना इहु तपा कहावै सेख । ना इहु जीवै न मरता देख ॥
इसु मरते कौ जे कोऊ रोवै । जो रोवै सोई पति खोवै ॥
गुरु प्रसादि मैं डगरो पाया । जीवन मरन दोऊ मिटवाया ॥
कहु कबीर इहु राम की अंसु । जस कागद पर मिटै न मंसु ॥१२६॥

ना मै जोग ध्यान चित लाया । बिन वैराग न छूटसि माया ॥
कैसे जीवन होइ हमारा । जब न होइ राम नाम अधारा ॥
कहु कबीर खोजौ असमान । राम समान न देखौ आन ॥१२७॥

निंदौ निंदौ मोकौ लोग निंदौ । निंदौ निंदौ मोकौ लोग निंदौ ॥
निंदा जन कौ खरी पियारी । निंदा बाप निंदा महतारी ॥
निंदा होय त बैकुंठ जाइयै । नाम पदारथ मनहि बसाइयै ॥
रिदै सुद्ध जौ निंदा होइ । हमरे कपरे निंदक धोइ ॥
निंदा करै सु हमरा मीत । निंदक माहि हमारा चीत ॥
निंदक सो जो निंदा होरै । हमरा जीवन निंदक लोरै ॥
निंदा हमरी प्रेम पियार । निंदा हमरा करै उधार ॥
जन कबीर कौ निंदा सार । निंदक डूबा हम उतरे पार॥ १२८ ॥

नित उठि कोरी गागरिआ नै लीपत जनम गयो ।
ताना बाना कछू न सूझै हरि हरि रस लपट्यो ॥

हमरे कुल कौने राम कह्यो।
जब की माला लई निपूते तब ते सुख न भयो ॥
सुनहु जिठानी सुनहु दिरानी अचरज एक भयो।
सात सूत इन मुडिये खोये इहु मुडिया क्यों न मुयो ॥
सर्ब सखा का एक हरि स्वामी सो गुरु नाम दयो।
संत प्रह्लाद की पैज जिन राखी हरनाखसु नख बिदर्‌यो ॥
घर के देव पितर की छोड़ी गुरु को सबद लयो।
कहत कबीर सकल पाप खंडन संतह लै उधर्‌यो ॥ १२९ ॥
निर्धन आदर कोइ न देई। लाख जतन करै ओहु चित न धरेई ॥
जौ निर्धन सरधन कै जाई। आगे बैठा पीठ फिराई ॥
जौ सरधन निर्धन कै जाई। दीया आदर लिया बुलाई ॥
निर्धन सरधन दोनो भाई। प्रभु की कला न मेटी जाई ॥
कहि कबीर निर्धन है सोई। जाकै हिरदे नाम न होई ॥१३०॥
पंडित जन माते पढ़ि पुरान। जोगी माते जोग ध्यान ॥
संन्यासी माते अहमेव। तपसी माते तप के भेव ॥
सब मदमाते कोऊ न जाग। संग ही चोर घर मुसन लाग ॥
जागै सुकदेव अरु अक्रूर। हणवन्त जागे धरि लंकूर ॥
संकर जागे चरन सेव। कलि जागे नामा जैदेव ॥
जागत सोवत बहु प्रकार। गुरु मुखि जागे सोइ सार ॥
इस देही के अधिक काम। कहि कबीर भजि राम नाम ॥१३१॥
पंडिया कौन कुमति तुम लागे।
बूडहुगे परवार सकल स्यो राम न जपहु अभागे ॥
बेद पुरान पढ़े का किया गुन खर चंदन जस भारा।
राम नाम की गति नहिं जानी कैसे उतरसि पारा ॥
जीय बधहु सुधर्म करि थापहु अधर्म कहौ कत भाई।
आपस कौ मुनि वर करि थापहु काकहु कहौ कसाई ॥

मन के अन्धे आपि न बूझहु का कहि बुझावहु भाई।
माया कारन विद्या बेचहु जनम अविर्था जाई॥
नारद बचन बिपास कहत है सुक कौ पूछहु जाई।
कहि कबीर रामहि रमि छूटहु नाहि त बूड़े भाई॥ १३२*॥
पंथ निहारै कामनी लोचन भरी लेइ उसासा।
उर न भीजै पग ना खिसै हरि दर्सन की आसा॥
उडहु न कागा कारे। वेग मिलीजै अपने राम प्यारे॥
कहि कबीर जीवन पद्द कारन हरि की भक्ति करीजै।
एक अधार नाम नारायण रसना राम रवीजै॥ १३३॥
पन्द्रह तिथि सात वार। कहि कबीर उर वार न पार॥
साधक सिद्ध लखै जौ भेउ। आपे करता आपे देउ॥
अम्मावस महि आस निवारौ। अन्तरयामी राम समारहु॥
जीवत पावहु मोख दुवारा। अनभौ सबद तत्त्व निज सार॥
चरन कमल गोविंद रंग लागा।
सन्त प्रसाद भये मन निर्मल हरि कीर्त्तन महिं अनदिन जागा॥
परवा प्रीतम करहु बिचार। घट महिं खेलै अघट अपार॥
काल कल्पना कदे न खाइ। आदि पुरुष महि रहै समाइ॥
दुतिया दुह करि जानै अंग। माया ब्रह्म रमै सब संग॥
ना ओहु बढै न घटता जाइ। अकुल निरंजन एकै भाइ॥
तृतीया तीने सम करि ल्यावै। आनंद मूल परम पद पावै॥
साध संगति उपजै विस्वास। बाहर भीतर सदा प्रगास॥
चौथहि चंचल मन कौ गहहु। काम क्रोध संग कबहु न बहहु॥
जल थल माहें आपही आप। आपै जपहु आपना जाप॥

---

* एक दूसरे स्थान पर यह पद इस प्रकार आरंभ होता है "पड़ी आकबत कुमति तुम लागे" शेष सब ज्यों का त्यों है। मूल प्रति में जो ३६ नंबर का पद है (पृष्ठ १००) वह भी कुछ थोड़े से हेर फेर के साथ ऐसा ही है।

पाँचे पंच तत्त बिस्तार। कनिक कामिनी जुग व्योहार ॥
प्रेम सुधा रस पीवै कोइ। जरा मरण दुख फेरि न होइ ॥
छठि षट चक्र चहूँ दिसि धाइ। बिनु परचै नहीं थिरा रहाइ ॥
दुबिधा मेटि खिमा गहि रहहु। कर्म धर्म की सूल न सहहु ॥
सातै सति करि बाचा जाणि। आतम राम लेहु परवाणि ॥
छूटै संसा मिटि जाहि दुक्ख। सुन्य सरोवरि पावहु सुक्ख ॥
अष्टमी अष्ट धातु की काया। तामहि अकुल महा निधि राया ॥
गुरु गम ज्ञान बतावै भेद। उलटा रहै अभंग अछेद ॥
नौमी नवै द्वार कौ साधि। बहती मनसा राखहु बाँधि ॥
लोभ मोह सब बीसरी जाहु। जुग जुग जीवहु अमर फल खाहु ॥
दसमी दह दिसि होइ अनंद। छूटै भर्म मिलै गोबिंद ॥
ज्योति स्वरूप तत्त अनूप। अमल न मल न छाह नहिं धूप ॥
एकादसी एक दिसि धावै। तौ जोनी संकट बहुरि न आवै ॥
सीतल निर्मल भया सरीरा। दूरि बतावत पाया नीरा ॥
बारसि बारहै गवै सूर। अहि निसि बाजै अनहद नूर ॥
देख्या तिहूँ लोक का पीउ। अचरज भया जीव ते सीउ ॥
तेरसि तेरह अगम बखाणि। अर्द्ध उर्द्ध बिच सम पहिचाणि ॥
नीच ऊँच नही मान प्रमान। व्यापक राम सकल सामान ॥
चौदसि चौदह लोक मझारि। रोम रोम महि बसहि मुरारि ॥
सत संतोष का धरहु धियान। कथनी कथियै ब्रह्म गियान ॥
पून्यो पूरा चन्द अकास। पसरहि कला सहज परगास ॥
आदि अंत मध्य होइ रह्या बीर। सुखसागर महि रमहि कबीर १३४
पहिला पूत पिछैरी माई। गुरु लागो चेले की पाई ॥
एक अचंभौ सुनहु तुम भाई। देखत सिंह चरावत गाई ॥
जल की मछुली तरवर व्याई। देखत कुतरा लै गई बिलाई ॥
तलेरे वैसा ऊपर सूला। तिसकै पेड़ लगे फल फूला ॥

घोरै चरि भैंस चरावन जाई। बाहर बैल गोनि घर आई॥
कहत कवीर जो इस पद बूझै। राम रमत तिसु सब किछू सूझै॥१३५॥
पहिलो कुरूप कुजाति कुलक्खनी साहुरै पेइयै बुरी।
अब की सरूप सुजाति सुलक्खनी सहजे उदरधरी॥
भली सरी मुई मेरी पहली बरी।
जुग जुग जीवै मेरी अब की धरी॥
कहु कबीर जब लहुरी आई बड़ी का सुहाग टर्‍यो।
लहुरी संग भई अब मेरै जेठो और धर्‍यो॥ १३६॥
पाती तोरै मालिनी पाती पाती जीउ।
जिसु पाहन को पाती तोरै सो पाहनु निरजीउ॥
भूली मालिनी है एउ। सति गुरू जागता है देउ॥
ब्रह्म पाती बिस्नु डारी फूल संकर देव।
तीन देव प्रतख्य तोरहि करहि किसकी सेव॥
पाषान गढि कै मूरति कीनी देकै छाती पाउ।
जे एइ मूरति साची है तो गड़णहारे खाउ॥
भातु पहिति और लापसी करक राका सारु।
भोगनु हारे भोगिया इसु मूरति के मुखछार॥
मालिन भूली जग भुलाना हम भुलाने नाहिं।
कहु कबीर हम राम राखे कृपा करि हरि राइ॥ १३७॥
पानी मैला माटी गोरी। इस माटी की पुतरो जोरी॥
मैं नाही कछु आंहि न मेरा। तन धन सब रस गोविंद तोरा॥
इस माटी महि पवन समाया। झूठा परपंच जोरि चलाया॥
किनहू लाख पाँच की जोरी। अंत कि बाट गगरिया फोरी॥
कहि कबीर इक नीवौ सारी। खिन महि बिनसि जाइ अहंकारी १३८
पाप पुन्य दोइ बैल बिसाहे पवन पूँजी परगास्यो।
तृष्णा गूणि भरी घट भीतर इन बिधि टांड बिसाह्यो॥

ऐसा नायक राम हमारा । सकल संसार कियो बंजारा ॥
काम क्रोध दुइ भये जगाती मन तरंग बटवारा ।
पंच तत्तु मिलि दान निबेरहि टांडा उतर्यो पारा ॥
कहत कबीर सुनहु रे संतहु अब ऐसी बनि आई ।
घाटी चढ़त बैल इक थाका चलो गोनि छिटकाई ॥ १३९ ॥

पिंड मुए जिउ किह घर जाता । सबद अतीत अनाहद राता ॥
जिन राम जान्या तिन्हीं पछान्या । ज्यों गूंगे साकर मन मान्या ॥
ऐसा ज्ञान कथै बनवारी । मन रे पवन दृढ़ सुषमन नाड़ी ॥
सो गुरु करहु जि बहुरि न करना । सो पद रवहु जि बहुरि न रवना ॥
सो ध्यान धरहु जि बहुरि न धरना । ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥
उलटी गंगा जमुन मिलावौ । बिनु जल संगम मन महि नावौ ॥
लोचा सम सरिहहु ब्योहारा । तत्तु बीचारि क्या अवर बिचारा ॥
अप तेज वायु पृथमी आकासा । ऐसी रहिन रहौ हरि पासा ॥
कहै कबीर निरंजन ध्यावौ । तित घर जाहु जि बहुरि न आवौ ॥१४०॥

पेवक दै दिन चारि है साहुरडे जाणा ।
अंधा लोक न जाणई मूरखु एयाणा ॥
कहु डडिया बांधै धन खड़ी । याहू घर आये मुकलाऊ आये ॥
ओह जि दिसै खूहड़ी कौ न लाजु बहारी ।
लाज घड़ी स्यो टूटि पड़ी उठि चली पनिहारी ॥
साहिब होइ दयाल कृपा करे अपना कारज सवारे ।
ता सोहागणि जानिए गुरु सबद बिचारै ॥
किरत की बांधी सब फिरै देखहु बिचारी ।
एसनो क्या आखियै क्या करै बिचारी ॥
भई निरासी उठि चली चित बँधी न धीरा ।
हरि की चरणी लागि रहु भजु सरण कबीरा ॥ १४१ ॥

प्रहलाद पठाये पठन साल । संगि सखा बहु लिए बाल ॥

मोकौ कहा पढ़ावसि आल जाल । मेरी पटिया लिखि देहु श्रीगोपाल॥
नहीं छोड़ौ रे बाबा राम नाम । मेरो और पढ़न स्यो नही काम ॥
संडै मरकै कह्यो जाइ । प्रहलाद बुलाये वेगि धाइ ॥
तू राम कहन की छोडु बानि । तुझ तुरत छडाऊँ मेरा कह्यो मानि ॥
मोकौ कहा सतावहु बार बार । प्रभु भज थल गिरि किये पहार ॥
इक राम न छोड़ौ गुरुहि गारि । मोकौ घालि जारि भावै मारि डारि॥
काढि खड़ग कोप्यो रिसाइ । तुझ राखनहारो मोहि बताइ ॥
प्रभु थंभ ते निकसे कै विस्तार । हरनाखस छेद्यो नख बिदार ॥
ओइ परम पुरुष देवाधि देव । भगत हेत नरसिंघ भेव ॥
कहि कबीर को लखै न पार । प्रहलाद उबारे अनिक बार ॥ १४२ ॥

फील रबाबी बलदु पखावज कौआ ताल बजावै ।
पहरि चोलना गदहा नाचै भैसा भगति करावै ॥
राजा राम क करिया बरपे काये । किनै बूझन हारै खाये ॥
बैठि सिंह घर पान लगावहि घीस गल्योरे लावै ।
घर घर मुसरी मंगल गावहि कछुवा संख बजावै ॥
बंस को पूत बिआहन चलिया सुइने मंडप छाये ।
रूप कन्निया सुंदर वेधी ससै सिंह गुन गाये ॥
कहत कबीर सुनहु रे पंडित कीटी परबत खाया ।
कछुवा कहै अंगार भिलोरौ लूकी सबद सुनाया ॥ १४३ ॥
फुरमान तेरा सिरै ऊपर फिरि न करत विचार ।
तुही दरिया तुही करिया तुझै ते निस्तार ॥
बंदे बंदगी इकतीयार । साहिब रोष धरौ कि पियार ॥
नाम तेरा आधार मेरा जिउ फूल जइहै नारि ।
कहि कबीर गुलाम घर का जीआइ भावै मारि ॥ १४४ ॥
बंधचि बंधनु पाइया । मुकतै गुरि अनलु बुझाइया ।
जब नख सिख इहु मनु चीना । तब अंतर मजनू कीना ॥

पवन पति उनमनि रहनु खरा । नहीं मिसु न जनमु जरा ।।
उलटी ले सकति संहारं । फैसीले गगन मझारं ।।
वेधिय ले चक्र भुअंगा । भेटिय ले राइन संगा ।।
चूकिय ले मोह मइ आसा । ससि कीनो सूर गिरासा ।।
जब कुंभ कुभरि पुरि जीना । तब बाजे अनहद बीना ।।
बकतै बकि सबद सुनाया । सुनतै सुनि माल बसाया ।।
करि करता उतरसि पारं । कहै कबीरा सारं ।। १४५ ।।
बटुआ एक बहत्तरि आधारी एको जिसहि दुबारा ।
नवै खंड की प्रथमी मांगै सो जोगी जगसारा ।।
ऐसा जोगी नव निधि पावै । तल का ब्रह्म ले गगन चरावै ।।
खिंथा ज्ञान ध्यान करि सूई सबद ताग मथि घालै ।
पंच तत्व की करि सिरगाणी गुरु कै मारग चालै ।।
दया फाहुरी काया करि धूई दृष्टि की अगनि जलावै ।
तिसका भाव लए रिद अंतर चहु जुग ताड़ी लावै ।।
सभ जोगत्तण राम नाम है जिसका पिंड पराना ।
कहु कबीर जे किरपा धारै देइ सचा नीसाना ।। १४६ ।।
बनहि बसे क्यों पाइयै जौ लौ मनहु न तजै विकार ।
जिह घर बन सम सरि किया ते पूरे संसार ।।
सार सुख पाइये रामा । रंगि रवहु आतमै रामा ।।
जटा भस्म लै लेपन किया कहा गुफा महि बास ।
मन जीते जग जीतिया ते बिषिया ते होइ उदास ।।
अंजन देइ सब कोई टुकु चाहन माहि विडानु ।
ग्यान अंजन जिह पाइया ते लोइन परवानु ।।
कहि कबीर अब जानिया गुर ग्यान दिया समझाइ ।
अंतर गति हरि भेटिया अब मेरा मन कतहु न जाइ ।। १४७ ।।
बहु प्रपंच करि परधन ल्यावै । सुत दारा पहि आनि लुटावै ।।

मन मेरे भूले कपट न कीजै । अंत निबेरा तेरे जीय पहि लीजै ॥
छिन छिन तन छीजै जरा जनावै । तब तेरी ओक कोई पानियो न पावै ॥
कहत कबीर कोई नहीं तेरा । हिरदै राम किन जपहि सबेरा ॥१४८॥
बाती सूखी तेल निखूटा । मंदल न बाजै नट पै सूता ॥
बुझि गई अगनि न निकस्यो धूआ । रवि रह्या एक अवर नहीं दूआ॥
टूटी तंतु न बजै रबाब । भूलि बिगार्‌यो अपना काज ॥
कथनी बदनी कहन कहावन । समझ परी तो बिसर्‌यो गावन ॥
कहत कबीर पंच जो चूरे । तिनते नाहिं परम पद दूरे ॥ १४९ ॥
बाप दिलासा मेरो कीना । सेज सुखाली मुखि अमृत दीना ॥
तिसु बाप कौ क्यों मनहु बिसारी । आगे गया न बाजी हारी ॥
मुई मेरी माई हौ खरा सुखाला । पहिरौ नहीं दगली लगै न पाला ॥
बलि तिसु बापै जिन हौ जाया । पंचा ते मेरा संग चुकाया ॥
पंच मारि पावा तलि दीने । हरि सिमरन मेरा मन तन भीने ॥
पिता हमारो बडु गोसाई । तिसु पिता पहि हौं क्यो करि जाई ॥
सति गुरु मिले त मारग दिखाया । जगत पिता मेरे मन भाया ॥
हौ पूत तेरा तू बाप मेरा । एकै ठाहरि दुहा बसेरा ॥
कह कबीर जनि एको बूझिया । गुरु प्रसाद मैं सब कछु सूझिया ॥१५०॥
बारह बरस बालपन बीते बीस बरस कछु तपु न कियो ।
तीस बरस कछु देव न पूजा फिर पछुताना बिरध भयो ॥
मेरी मेरी करते जनम गयो । साइर सोखि भुजं बलयो ॥
सूके सरवर पालि बँधावै लूणे खेत हथ वारि करै ।
आयो चोर तुरंत ही ले गयो मेरी राखत मुगध फिरै ॥
चरन सीस कर कंपन लागे नैनी नीर असार वहै ।
जिह्वा बचन सुद्ध नहीं निकसै तब रे धरम की आस करै ॥
हरि जी कृपा करै लिव लावै लाहा हरि हरि नाम लियो ।
गुरु परसादी हरि धन पायो अंते चल दिया नालि चल्यो ॥

कहत कबीर सुनहु रे संतहु अन धन कछु ऐलै न गयो ।
आई तलब गोपाल राइ की माया मंदर छोड़ चल्यो ॥ १५१ ॥

बावन अच्चर लोक त्रय सब कछु इनही माहि ।
जे अक्खर खिरि जाहिगे ओइ अक्खर इन महि नाहि ॥

जहाँ बोल तह अक्खर आवा । जह अबोल तह मन न रहावा ॥
बोल अबोल मध्य है सोई । जस ओहु है तस लखै न कोई ॥

अलह लहौ तौ क्या कहौ कहौ तो को उपकार ।
बटक बीजि महि रवि रह्यो जाको तीनि लोकि विस्तार ॥

अलह लहंता भेद छै कछु कछु पायो भेद ।
उलटि भेद मन बेधियो पायो अभंग अछेद ॥

तुरक तरी कत जानियै हिंदू बेद पुरान ।
मन समझावन कारनै कछु यक पढियै ज्ञान ॥

ओअंकार आदि मैं जाना । लिखि और मेटै ताहि न माना ॥
ओअंकार लखै जौ कोई । सोई लखि मेटणा न होई ॥
कक्का किरणि कमल महि पावा । ससि बिगास सम्पट नहि आवा ॥
अरु जे तहा कुसम रस पावा । अकह कहा कहि का समझावा ॥
खख्खा इहै खोड़ि मन आवा । खोडे छाड़ि न दह दिसि धावा ॥
खसमहि जाणि खिमा करि रहै । तौ होइ निरखऔ अखै पद लहै ॥
गग्गा गुरु के बचन पछाना । दूजी बात न धरई काना ॥
रहै बिहंगम कतहि न जाई । अगह गहै गहि गगन रहाई ॥
घघ्घा घट घट निमसै सोई । घट फूटे घट कबहिं न होई ॥
ता घट माहि घाट जौ पावा । सो घट छाँडि अवघट कत धावा ॥

ङंङा निग्रह सनेह करि निरवारो संदेह ।
नाही देखि न भाजियै परम सियानप एह ॥

चच्चा रचित चित्र है भारी । तजि चित्रै चेतहु चितकारी ॥
चित्र बचित्र इहै अवझेरा । तजि चित्रै चितु राखि चितेरा ॥

छच्छा इहै छत्रपति पासा। छकि किन रहहु छाडि किन आसा ॥
रे मन मैं तो छिन छिन समझावा। ताहि छाडि कत आप बधावा॥
जज्जा जौ तन जीवत जरावै। जोवन जारि जुगति सो पावै ॥
अस जरि परजरि जरि जब रहै। तब जाइ ज्योति उजारौ लहै ॥
झझ्झा उरझि सुरझि नहि जाना। रह्यो झझकि नाही परवाना ॥
कत झकि झकि औरन समझावा। झगर किये झगरौ ही पावा ॥
ञंञा निकट जु घट रह्यो दूरि कहा तजि जाइ।
जा कारण जग ढूंढियौ नेरौ पायो ताहि ॥
टट्टा विकट घाट घट माही। खोलि कपाट महल किन जाही ॥
देखि अटल टलि कतहि न जावा। रहै लपटि घट परचौ पावा ॥
ठट्ठा इहै दूरि ठग नीरा। नीठि नीठि मन कीया धीरा ॥
जिन ठग ठग्या सकल जग खावा। सो ठग ठग्या ठौर मन आवा ॥
डड्डा डर उपजै डर जाई। ता डर महि डर रह्या समाई ॥
जौ डर डरै तौ फिरि डर लागै। निडर हुआ डर उर होइ भागै ॥
ढढ्ढा ढिग ढूंढहि कत आना। ढूँढत ही ढहि गये पराना ॥
चढि सुमेर ढूँढि जब आवा। जिह गढ़ गढ्यो सुगढ़ महि पावा ॥
णाणा रखि रूतौ नर नेही करै। नानि बैना फुनि संचरै ॥
धन्य जनम ताही को गणै। मारे एकहि तजि जाइ घणै ॥
तत्ता अतर तर्यौ नइ जाई। तन त्रिभुवण में रह्यो समाई ॥
जौ त्रिभुवण तन माहि समावा। तौ तत हि तत मिल्या सचुपावा॥
थथा अथाह थाह नहीं पावा। ओहु अथाह इहु थिर न रहावा ॥
थोडै थल थानक आरंभै। बिनुही थाहर मन्दिर थंभै ॥
ददा देखि जु बिनसन हारा। जस अदेखि तस राखि बिचारा ॥
दसवै द्वार कुंजी जब दीजै। तौ दयाल कौ दर्सन कीजै ॥
धद्धा अर्द्धहि उर्द्ध निबेरा। अर्द्धहि उर्द्धह मंझि बसेरा।
अर्द्धह छाड़ि उर्द्ध जौ आवा। तौ अर्द्धहि उर्द्ध मिल्या सुख पावा ॥

नन्ना निसि दिन निरखत जाई । निरखत नयन रहे रतवाई ॥
निरखत निरखत जब जाइ पावा । तब ले निरखहि निरख मिलावा ॥
पप्पा अपर पार नहीं पावा । परम ज्योति स्यो परचौ लावा ॥
पाँचो इंद्री निग्रह करई । पाप पुण्य दोऊ निरबरई ॥
फफ्फा बिनु फूलै फल होई । ता फल फंक लखैं जौ कोई ॥
दूणि न परई फंक बिचारै । ता फल फंक सबै तन फारै ॥
बब्बा बिंदहि बिंद मिलावा । बिंदहि बिंद न बिछुरन पावा ॥
बंदौ होइ बन्दगी गहै । बंधक होइ बंधु सुधि लहै ॥
भम्भा भेदहि भेद मिलावा । अब भौ भानि भरोसौ आवा ॥
जो बाहर सो भीतर जान्या । भया भेद भूपति पहिचान्या ॥
मम्मा मूल रह्या मन मानै । मर्मी होइ सो मन कौ जानै ॥
मत कोइ मन मिलता विलमावै । मगन भया तेसो सचुपावै ॥

मम्मा मन स्यो काजु है मन साधे सिधि होइ ।
मनही मन स्यो कहै कबीरा मनसा मिल्या न कोइ ॥

इहु मन सकती इहु मन सीउ । इहु मन पंच तत्त्व को जीउ ।
इहु मन ले जौ उनमनि रहै । तौ तीनि लोक की बातै कहै ॥

यय्या जौ जानहि तौ दुर्मति हनि करि वसि काया गाउ ।
रणि रूतौ भाजै नहीं सूर उधारौ नाउ ॥

रारा रस निरस्स करि जान्या । होइ निरस्स सुरस पहिचान्या ॥
इह रस छाड़े उह रस आवा । उह रस पीया इह रस नही भावा ॥
लल्ला ऐसे लिव मन लावै । अनत न जाइ परम सचुपावै ॥
अरु जौ तहा प्रेम लिव लावै । तौ अलह लहै लहि चरन समावै ॥
ववा वार वार विष्णु समारि । विष्णु समारि न आवै हारि ॥
बलि बलि जे विष्णु तना जस गावै । बिष्णु मिलै सबही सचुपावै ॥

वावा वाही जानियै वा जाने इहु होइ ।
इहु अरु ओहु जब मिलै तब मिलत न जानै कोइ ॥

शशशा सो नीका करि सोधहु । घट पर चाकी बात निरोधहु ॥
घट परचै जौ उपजै भाउ । पूरि रह्या तह त्रिभुवन राउ ॥
षष्षा खोजि परै जौ कोई । जो खोजै सो बहुरि न होई ॥
खोजि बूझि जौ करै विचारा । तौ भव जल तरत न लावै बारा ॥
सस्सा सो सह सेज सवारै । सोई सही संदेह निवारै ॥
अल्प सुख छाड़ि परम सुख पावा । तब इह त्रिय ओहु कंत कहावा ॥
हाहा होत होइ नहीं जाना । जबही होइ तबहि मन माना ॥
है तौ सही लखै जौ कोई । तब ओही उह एहु न होई ॥
लिउँ लिउँ करत फिरै सब लोग । ता कारण व्यापै बहु सोग ॥
लच्मीबर स्यो जौ लिव लागै । सोग मिटै सब ही सुख पावै ॥
खक्खा खिरत खपत गये केते । खिरत खपत अजहूँ नहि चेते ॥
अब जग जानि जौ मना रहै । जह का बिछुरा तह थिरु लहै ॥
बावन अक्खर जोरे आन । सक्या न अक्खरु एक पछानि ॥
सत का सबद कबीरा कहै । पंडित होइ सो अनभै रहै ॥
पंडित लोगह कौ व्यवहार । ज्ञानवन्त कौ तत्त्व बीचार ॥
जाकै जीय जैसी बुधि होई । कहि कबीर जानैगा सोई ॥ १५२ ॥
बिंदु ते ज़िन पिंड किया अगनि कुंड रहाइया ।
दस मास माता उदरि राख्या बहुरि लागी माइया ॥
प्रानी काहे कौ लोभि लागै रतन जनम खोया ।
पूरब जनम करम भूमि बीजु नाहीं बोया ॥
बारिक ते बिरध भया होना सो होया ।
जा जम आइ झोट पकरै तबहि काहे रोया ॥
जीवन की आसा करै जम निहारै सासा ।
बाजीगरी संसार कबीरा चेति ढालि पासा ॥ १५३ ॥
बुत पूजि पूजि हिंदू मुये तुरक मुये सिर नाई ।
ओइ ले जारे ओइ ले गाड़े तेरी गति दुहूँ न पाई ॥

मन रे संसार अंध गहेरा ।
चहुँ दिसि पसरयो है जम जेवरा ॥
कबित पढ़े पढ़ि कविता मूये कपड़ के दारै जाई ।
जटा धारि धारि जोगी मूये तेरी गति इनहिं न पाई ॥
द्रव्य संचि संचि राजे मूये गड़िले कंचन भारी ।
बेद पढ़े पढ़ि पंडित मूये रूप देखि देखि नारी ॥
राम नाम बिन सबै बिगूते देखहु निरखि सरीरा ।
हरि के नाम बिन किन गति पाई कहि उपदेस कबीरा ॥१५४॥
भुजा बाँधि भिला करि डारयो । हस्ती कोपि मूंड महि मारयो ॥
हस्ती भागि कै चीसा मारै । या मूरति कै हौ बलिहारै ॥
आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोर । काजी बकिबो हस्ती तोर ॥
रे महावत तुझ डारौ काटि । इसहि तुरावहु घालहु साटि ॥
हस्त न तोरै धरै ध्यान । वाकै रिदै बसै भगवान ॥
क्या अपराध संत है कीना । बाँधि पाट कुंजर को दीना ॥
कुंचर पोटलै लै नमस्कारै । बूझी नहीं काजी अंधियारै ॥
तीन बार पतिया भरि लीना । मन कठोर अजहू न पतीना ॥
कहि कबीर हमारा गोबिंद । चौथे पद महि जन की जिंद ॥१५५॥
भूखे भगति न कीजै । यह माला अपनी लीजै ॥
हौ माँगो संतन रेना । मैं नाही किसी का देना ॥
माधव कैसी बनै तुम संगे । आपि न देउ तलै बहु मंगे ॥
दुइ सेर माँगौ चूना । पाव घीउ संग लूना ॥
अधसेर माँगौ दाले । मोकौ दोनों बखत जिवाले ॥
खाट माँगौ चौपाई । सिरहाना और तुलाई ॥
ऊपर कौ माँगौ खींधा । तेरी भगति करै जनु बींधा ॥
मैं नाही कीता लब्बो । इक नाउ तेरा मैं फब्बो ॥
कहि कबीर मन मान्या । मन मान्या तौ हरि जान्या ॥१५६॥

मन करि मक्का किबला करि देही । बोलनहार परस गुरु एही ॥
कहु रे मुल्ला बाँग निवाज । एक मसीति दसै दरवाज ॥
मिसिमिलि तामसु भर्म क दूरी । भाखि ले पंचे होइस बूरी ॥
हिन्दू तुरक का साहिब एक । कह करै मुल्ला कह करै सेख ॥
कहि कबीर हौ भया दिवाना । मुसि मुसि मनुआ सहजि समाना ॥१५७॥
मन का स्वभाव मनहि बियापी । मनहि मारि कवन सिधि थापी ॥
कवन सु मुनि जो मन को मारै । मन कौ मारि कहहु किस तारै ॥
मन अंतर बोलै सब कोई । मन मारै बिन भगति न होई ॥
कहु कबीर जो जानै भेउ । मन मधुसूदन त्रिभुवण देउ ॥ १५८ ॥
मन रे छाड़हु भर्म प्रकट होइ नाचहु या माया के डाड़े ।
सूर किसन मुखरन ते डरपै सती कि साँचै भांडे ॥
डगमग डांडि रे मन बौरा ।
अब तो जरै मरै सिधि पाइयै लीनो हाथ सिंधोरा ॥
काम क्रोध माया के लोने या बिधि जगत बिगूचा ।
कहि कबीर राजा राम न छोड़ौ सगल ऊँच ते ऊँचा ॥ १५९ ॥

माता जूठी पिता भी जूठा जूठेही फल लागे ।
आवहि जूठे जाहि भी जूठे जूठे मरहि अभागे ॥
कहु पंडित सूचा कवन ठाउ । जहाँ बैसि हौ भोजन खाउ ॥
जिहबा जूठो बोलत जूठा करन नेत्र सब जूठे ।
इंद्री की जूठो उतरसि नाहि ब्रह्म अगनि के जूठे ॥
अगनि भी जूठी पानी जूठा जूठी बैसि पकाइया ।
जूठी करछी परोसन लागा जूठे ही बैठि खाइया ॥
गोबर जूठा चौका जूठा जूठी दीनी करा ।
कहि कबीर तेई नर सूचे साची परी बिचारा ॥ १६० ॥

मरन जीवन की संका नासी । आपन रंगि सहज परगासी ॥
प्रकटी ज्योति मिट्या अँधियारा । राम रतन पाया करत बिचारा ॥

जह अनंद दुख दूर पयाना । मन मानकु लिव तत्तु लुकाना ॥
जो किछु होआ सु तेरा भाणा । जौ इन बूझै सु सहजि समाणा ॥
कहत कबीर किलविष गये खीणा । मन भाया जग जीवन लीणा॥१६१॥
माई मोहिं अवरु न जान्यो आनां ।
सिव सनकादि जासु गुन गावहि तासु बसहि मेरे प्रानां ॥
हिरदै प्रगास ज्ञान गुरु गम्मित गगन मंडल महि ध्यानां ।
विषय रोग भय बंधन भागे मन निज घर सुख जानां ॥
एक सुमति रति जानि मानि प्रभु दूसर मनहि न आनां ।
चंदन बास भये मन बास न त्यागि घर्‌यो अभिमानां ॥
जो जन गाइ ध्याइ जस ठाकुर तासु प्रभू है थानां ।
तिह बड़ भाग बस्यो मन जाके कर्म प्रधान मथानां ॥
काटि सकति सिव सहज प्रगास्यो ऐकै एक समानां ।
कहि कबीर गुरु भेटि महासुख भ्रमत रहें मन मानां ॥१६२॥
माथे तिलक हथि माला बानां । लोगन राम खिलौना जानां ॥
जौ हौ बैरा तौ राम तोरा । लोग मर्म कह जानै मोरा ॥
तोरौ न पाती पूजौ न देवा । राम भगति बिन निहफल सेवा ॥
सतिगुरु पूजौ सदा सदा मनावो । ऐसी सेव दरगह सुख पावो ॥
लोग कहै कबीर बैराना । कबीर का मर्म राम पहिचाना ॥१६३॥
माधव जल की प्यास न जाइ । जल महि अगनि उठी अधिकाइ ॥
तू जलनिधि हौ जल का मीन । जल महि रहौं जलै बिन खीन ॥
तू पिंजर हौ सुअटा तोर । जम मंजार कहा करै मोर ॥
तू तरवर हौ पंखी आहि । मन्द भागी तेरो दर्सन नाहिं ॥१६४॥
मुंद्रा मोनि दया करि झोली पत्र का करहु बिचारू रे ।
खिंथा इहु तन सीऔ अपना नाम करो आधारू रे ॥
ऐसा जोग कमावै जोगी । जप तप संजम गुरु मुख भोगी ॥

बुद्धि बिभूति चढ़ाऔ अपनी सिंगी सुरति मिलाई।
करि बैराग फिरौ तन नगरी मन की किंगुरी बजाई॥
पंच तत्व लै हिरदै राखहु रहै निराल मताड़ी।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु धर्म दया करि बाड़ी॥ १६५॥
मुसि मुसि रोवै कबीर की माई। ए वारिक कैसे जीवहि रघुराई॥
तनना बुनना सब तज्यो है कबीर। हरि का नाम लिखि लियो सरीर॥
जब लग तागा बाहउ बेही। तब लग बिसरै राम सनेही॥
ओछी मति मेरी जाति जुलाहा। हरि का नाम लह्यो मैं लाहा॥
कहत कबीर सुनहु मेरी माई। हमरा इनका दाता एक रघुराई॥१६६॥
मेरी बहुरिया को धनिया नाउ। ले राख्यो राम जनिया नाउ॥
इन मुंडियन मेरा घर धुधरावा। बिटवहि राम रमैआ लावा॥
कहत कबीर सुनहु मेरी माई। इन मुंडियन मेरी जाति गवाई॥१६७॥
मैला ब्रह्मा मैला इन्दु। रवि मैला है मैला चंदु॥
मैला मलता इहु संसार। इक हरि निर्मल जाका अन्त न पार॥
मैला ब्रह्मंडा इकै ईस। मैले निसि बासुर दिन तीस॥
मैला मोती मैला हीरु। मैला पवन पावक अरु नीरु॥
मैले सिव संकरा महेस। मैले सिध साधिक अरु भेष॥
मैले जोगी जंगम जटा समेति। मैली काया हंस समेति॥
कहि कबीर ते जन परवान। निर्मल ते जो रामहि जान॥ १६८॥
मौलो धरती मौला आकास। घटि घटि मौलिया आतम प्रगास॥
राजा राम मौलिया अनत भाइ। जह देखौ तह रहा समाइ॥
दुतिया मौले चारि बेद। सिंमृति मौलो सिउ कतेब॥
संकर मौल्यो जोग ध्यान। कबीर को स्वामी सब समान॥१६९॥
जम ते उलटि भये है राम। दुख बिनसे सुख कियो बिस्राम॥
बैरी उलटि भये हैं मीता। साकत उलटि सुजन भये चीता॥
अब मोहि सर्व कुसल करि मान्या। सान्ति भई जब गोबिंद जान्या॥

तन महि होती कोटि उपाधि । उलटि भई सुख सहजि समाधि ॥
आप पछानै आपै आप । रोग न व्यापै तीनों ताप ॥
अब मन उलटि सनातन हूआ । तब जान्या जब जीयत मूआ ॥
कहु कबीर सुख सहज समाओ । आपि न डरो न अवर डराओ ॥ १७० ॥

जोगी कहहि जोग भल मीठा अवरु न दूजा भाई ।
रुंडित मुंडित एकै सबदी एकहहि सिधि पाई ॥

हरि बिनु भरमि भुलाने अंधा ।
जा पहि जाउ आप छुटकावनि ते बाँधे बहु फंधा ॥
जह ते उपजी तही समानी इहि बिधि बिसरी तबही ।
पंडित गुणी सूर हम दाते एहि कहहि बड़ हमही ॥
जिसहि बुझाए सोई बूझै बिनु बूझै क्यों रहियै ।
सति गुरु मिलै अँधेरा चूके इन बिधि प्राणु कुलहियै ॥
तजिवा बेदा हने बिकारा हरि पद दृढ़ करि रहियै ।
कहु कबीर गूँगै गुड़ खाया पूछे ते क्या कहियै ॥ १७१ ॥

जोगी जती तपी संन्यासी बहु तीरथ भ्रमना ।
लुंजित मुंजित मौनि जटा धरि अंत तऊ मरना ॥

ताते सेविअ ले रामना ।
रसना राम नाम हितु जाकै कहा करै जमना ॥
आगम निगम जोतिक जानहि बहु बहु ब्याकरना ।
तंत्र मंत्र सब औषध जानहि अंत तऊ मरना ॥
राज भोग अरु छत्र सिंहासन बहु सुंदरि रमना ।
पान कपूर सुबासक चंदन अंत तऊ मरना ॥
बेद पुरान सिमृति सब खोजे कहूँ न ऊबरना ।
कहु कबीर यों रामहिं जपौ मेटि जनम मरना ॥ १७२ ॥

जोति छाड़ि जैसे जग महि आयो । लागत पवन खसम बिसरायो ॥

जियरा हरि के गुन गाउ ॥
गर्भ जोनि महि उर्ध्व तपु करता । तौ जठर अग्नि महि रहता ॥
लख चौरासीह जोनि भ्रमि आयो । अब के छुटके ठौर न ठायो ॥
कहु कबीर भजु सारिंगपानी । आवत दीसै जात न जानी ॥१७३॥
रहु रहु री बहुरिया घूँघट जिनि काढ़ै । अंत की बार लहैगो न आढ़ै ॥
घूँघट काढ़ि गई तेरी आगै । उनकी गैल तोहि जिनि लागै ॥
घूँघट काढ़े की इहै बड़ाई । दिन दस पाँच बहू भले आई ॥
घूँघट तेरो तौपरि साचै । हरि गुन गाइ कूदहि अरु नाचै ॥
कहत कबीर बहू तब्र जीतै । हरि गुन गावत जनम व्यतीतै ॥१७४॥
राखि लेहु हमते बिगरी ।
सील धरम जप भगति न कीनी हौ अभिमान टेढ़ पगरी ॥
अमर जानि संची इह काया इह मिथ्या काची गगरी ।
जिनहि निवाजि साजि हम कीये ति हि बिसारि औ लगरी ॥
संधि कोहि साध नही कहियौ सरनि परे तुमरी पगरी ।
कहि कबीर इह विनती सुनियहु मत घालहु जम की खबरी ॥१७५॥
राजन कौन तुमारै आवै ।
ऐसो भाव बिदुर को देख्यो ओहु गरीब मोहि भावै ॥
हस्ती देखि भर्मते भूला श्री भगवान न जान्या ।
तुमरो दूध बिदुर को पानी अमृत करि मैं मान्या ॥
खीर समान सागु मैं पाया गुन गावत रैनि बिहानी ।
कबीर को ठाकुर अनद बिनोदी जाति न काहू की मानी ॥ १७६ ॥
राजा राम तू ऐसा निर्भव तरन तारन राम राया ॥
जब हम होते तब तुम नाही अब तुम हहु हम नाही ।
अब हम तुम एक भये हहि एकै देखति मन पतियाही ॥
जब बुधि होती तब बल कैसा अब बुधि बल न खटाई ।
कहि कबीर बुधि हरि लई मेरी बुधि बदली सिधि पाई ॥ १७७ ॥

राजा स्रिमामति नहीं जानी तोरी । तेरे संतन की हौं चेरी ॥
हसतो जाइ सु रोवत आवै रोवत जाइ सु हसै ।
बसतो होइ सो ऊजरू ऊजरू होइ सु वसै ॥
जल ते थल करि थल ते कूआ कूप ते मेरु करावै ।
धरती ते आकास चढावै चढे अकास गिरावै ॥
भेखारी ते राज करावै राजा ते भेखारी ।
खल मूरख ते पंडित करिबो पंडित ते मुगधारी ॥
नारी ते जो पुरुख करावै पुरखन ते जो नारी ।
कहु कबीर साधू का प्रीतम सुमूरति बलिहारी ॥ १७८ ॥

राम जपौ जिय ऐसे ऐसे । ध्रुव प्रह्लाद जप्यो हरि जैसे ॥
दीन दयाल भरोसे तेरे । सब परवार चढ़ाया बेड़े ॥
जाति सुभावै ताहुं कम सनावै । इस बेड़े कौ पार लँघावै ॥
गुरु प्रसादि ऐसी बुद्धि समानी । चूकि गई फिरि आवन जानी ॥
कहु कबीर भजु सारिंगपानी । उरवार पार सब एको दानी ॥१७९॥

राम सिमरि राम सिमरि राम सिमरि भाई ।
राम नाम सिमरन बिन बूड़ते अधिकाई ॥
बनिता सुत देह ग्रेह संपति सुखदाई ।
इनमें कछु नाहि तेरो काल अवधि आई ॥
अजामल गज गनिका पतित कर्म कीने ।
तेऊ उतरि पार परे राम नाम लीने ॥
सूकर कूकर जोनि भ्रमतेऊ लाज न आई ।
राम नाम छाड़ि अमृत काहे विष खाई ॥
तजि भर्म कर्म विधि निषेध राम नाम लेही ।
गुरु प्रसादि जन कबीर राम करि सनेही ॥ १८० ॥

री कलवारि गवारि मूढ़ मति उलटो पवन फिरावौ ।
मन मतवार मेर सर भाठी अमृत धार चुवावौ ॥

बोलहु भइया राम की दुहाई।
पीवहु संत सदा मति दुर्लभ सहजे प्यास बुझाई॥
भय बिच भाउ भाई कोउ बूझहि हरि रस पावै भाई।
जेते घट अमृत सबही महि भावै तिसहि पियाई॥
नगरी एकै नव दरवाजे धावत बर्जि रहाई।
त्रिकुटी छूटै दस बादर खूलै ताम न खीवा भाई॥
अभय पद पूरि ताप तह नासे कहि कबीर बीचारी।
उबट चलंते इहु मद पाया जैसे खोद खुमारी॥ १८१॥

रे जिय निलज्ज लाज तोहि नाही। हरि तजि कत काहू के जाही॥
जाकौ ठाकुर ऊँचा होई। सो जन पर घर जात न सोही॥
सो साहिब रहिया भरपूरि। सदा संगि नाही हरि दूरि॥
कवला चरन सरन है जाके। कहु जन का नाहीं घर ताके॥
सब कोऊ कहै जासु की बाता। जो सम्रथ निज पति है दाता॥
कहै कबीर पूरन जग सोई। जाकै हिरदै अवरु न होई॥ १८२॥

रे मन तेरा कोइ नहीं खिंचि लेइ जिन भार।
बिरख बसेरा पंखि को तैसो इहु संसार॥
राम रस पींया रे। जिह रस बिसरि गये रस और॥
और मुये क्या रोइये जौ आपा थिर न रहाइ।
जो उपजै सो बिनसिहै दुख करि रोवै बलाइ॥
जह की उपजी तह रची पीवत मरद न लाग।
कह कबीर चित चेतिया राम सिमिर बैराग॥ १८३॥

रोजा धरै मनावै अल्लहु स्वादति जीय संघारै।
आपा देखि अवर नहीं देखै काहे कौ झख मारै।
काजी साहिब एक तोही महि तेरा सोच बिचार न देखै।
खबरि न करहि दीन के बौरे ताते जनम अलेखै॥
सांच कतेब बखानै अल्लहु नारि पुरुष नहि कोई।

पढ़ै गुनै नाही कछु बैरं जौ दिल महि खबरि न होई ॥
अल्लहु गैव सगल घट भीतर हिरदै लेहु बिचारी ।
हिंदू तुरक दुहू महि एकै कहै कबीर पुकारी ॥ १८४ ॥
लंका सा कोट समुंद सी खाई। तिह रावन घर खबरि न पाई ॥
क्या माँगौ किछू थिरु न रहाई। देखत नयन चल्यो जग जाई ॥
इक लख पूत सवा लख नाती । तिह रावन घर दिया न बाती ॥
चंद सूरज जाके तपत रसोई। वैसंतर जाके कपरे धोई ॥
गुरु मति रामै नाम बसाई। अस्थिर रहै न कतहू जाई ॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई । राम नाम बिन मुकति न होई ॥१८५ ॥
लख चौरासी जीअ जोनि महि भ्रमत नंदु बहु थाको रे ।
भगति हेतु अवतार लियो है भाग बड़ो बपुरा को रे ॥
तुम जो कहत हौ नंद को नंदन नंद सु नंदन काको रे ।
धरनि अकास दसो दिसि नाही तब इहु नंद कहा थो रे ॥
संकट नहीं परै जोनि नहिं आवै नाम निरंजन जाको रे ।
कबीर को स्वामी ऐसो ठाकुर जाकै माई न बापो रे ॥ १८६ ॥
विद्या न पढो बाद नहीं जानो। हरि गुन कथत सुनत बौरानो ॥
मेरे बाबा मैं बौरा, सब खलक सैयानो, मैं बौरा।
मैं बिगरयो बिगरै मति औरा । आपन बौरा राम कियो बौरा ॥
सति गुरु जारि गयो भ्रम मोरा ॥
मैं बिगरे अपनी मति खोई । मेरे भर्मि भूलो मति कोई ॥
सो बौरा आपु न पछानै । आप पछानै त एकै जानै ॥
अवहिं न माता सु कबहुँ न माता । कहि कबीर रामै रँगि राता ॥१८७॥
बिनु सत सती होइ कैसे नारि । पंडित देखहु रिदै बीचारि ॥
प्रीति बिना कैसे बधै सनेहू । जब लग रस तब लग नहि नेहू ॥
साह निसचु करै जिय अपनै । सो रमय्यै कौ मिलै न स्वपनै ॥
तन मन धन गृह सौंपि सरीरु । सोई सोहागनि कहै कबीरु ॥१८८॥

विमल वस्त्र केते है पहिरे क्या बन मध्ये वासा ।
कहा भया नर देवा धोखे क्या जल बोरचो ज्ञाता ॥
जीय रे जाहिगा मैं जाना । अविगत समझ इयाना ॥
जत जत देखौ बहुरि न पेखौ संग माया लपटाना ॥
ज्ञानी ध्यानी बहु उपदेसी इहु जग सगलो धंधा ।
कहि कबीर इक राम नाम बिनु या जग माया अंधा ॥ १८९ ॥
बिषया व्याप्या सकल संसारु । बिषया लै डूबा परवारु ॥
रे नर नाव चौड़ि कत बोड़ी । हरि स्यो तोड़ि विषया संगि जोड़ी ॥
सुर नर दाधे लागी आगि । निकट नीर पसु पीवसि न झागि ॥
चेतत चेतत निकस्यो नीर । सो जल निर्मल कथत कबीर ॥१९०॥
बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकर न जाई ।
टुक दम करारी जौ करहु हाजिर हजूर खुदाई ॥
बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरि परेसानी माहि ।
इह जु दुनिया सहरु मेला दस्तगीरी नाहि ॥
दरोग पढ़ि पढ़ि खुसी होइ बेखबर बाद बकाहि ।
हक सच्चु खालक खलक म्याने स्याम मूरति नाहि ॥
असमान म्याने लहंग दरिया गुसल करद न बूद ।
करि फिकरु दाइम लाइ चसमे जहँ तहाँ मौजूद ॥
अल्लाह पाकं पाक है सक करो जे दूसर होइ ।
कबीर कर्म करीम का उहु करे जानै सोइ ॥ १९१ ॥
बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै ।
जौ सब मै एकु खुदाइ कहतु है तौ क्यों मुरगी मारे ॥
मुल्ला कहहु नियाउ खुदाई । तेरे मन का भरम न जाई ॥
पकरि जीउ आन्या देह बिनासी माटी कौ बिसमिल कीया ।
जोति सरूप अनाहत लागो कहु हलालु क्यों कीया ॥
क्या उज्जू पाक किया मुह धोया क्या मसीति सिर लाया ।

जौ दिल मैहि कपट निवाज गुजारहु क्या हज काबै जाया ॥
तू नापाक पाक नहीं सूझया तिसका मरम न जान्या ।
कहि कबीर भिस्त ते चूका दोजक स्यों मन मान्या ॥१९२॥

बेद की पुत्री सिंमृति भाई । साँकल जेवरी लैहैं आई ॥
आपन नगर आप ते बाँध्या । मोह कै फाधि काल सरु साध्या ॥
कटी न कटै तूटि नह जाई । सो सापनि होइ जग कौ खाई ॥
हम देखत जिन्ह सब जग लूट्या । कहु कबीर मैं राम कहि छूट्या॥१९३॥

बेद पुरान सबै मत सुनि के करी करम की आसा ।
काल ग्रस्त सब लोग सियाने उठि पंडित पै चले निरासा ॥
मन रे सरयो न एकै काजा । भज्यो न रघुपति राजा ॥
बन खंड जाइ जोग तप कीनो कंद मूल चुनि खाया ।
नादी बेदी सबदी मौनी जम के परै लिखाया ॥
भगति नारदी रिदै न आई काछि कूछि तन दीना ।
राग रागनी डिंभ होइ बैठा उन हरि पहि क्या लीना ॥
परयो काल सबै जग ऊपर माहि लिखे भ्रम ज्ञानी ।
कहु कबीर जन भये खलासे प्रेम भगति जिह जानी ॥१९४॥

षट नेम कर कोठड़ी बाँधी बस्तु अनूप बीच पाई ।
कुंजी कुलफ प्रान करि राखे करते बार न लाई ॥
अब मन जागत रहु रे भाई ।
गाफिल होय कै जनम गवायो चोर मुसै घर जाई ॥
पंच पहरुआ दर महि रहते तिनका नहीं पतियारा ।
चेति सुचेत चित होइ रहु तौ लै परगासु उजारा ॥
नव घर देखि जु कामनि भूली बस्तु अनूप न पाई ।
कहत कबीर नवै घर मूसे दसवें तत्त्व समाई ॥ १९५ ॥

संत मिलै किछु सुनिये कहियै । मिलै असंत मष्ट करि रहियै ॥
बाबा बोलना क्या कहियै । जैसे राम नाम रमि रहियै ॥

संतन स्यों बोले उपकारी । मूरख स्यों बोले झख मारी ॥
बोलत बोलत बढ़हि बिकारा । बिनु बोले क्या करहि बिचारा ॥
कहु कबीर छूछा घट बोलै । भरिया होइ सु कबहु न डोलै॥१९६॥
संतहु मन पवनै सुख बनिया । किछु जोग परापति गनिया ॥
गुरु दिखलाई मोरी । जितु मिरग पड़त है चोरी ॥
मूँदि लिये दरवाजे । बाजिले अनहद बाजे ॥
कुंभ कमल जल भरिया । जल मेट्या ऊभा करिया ॥
कहु कबीर जन जान्या । जौ जान्या तौ मन मान्या ॥ १९७॥
संता मानौ दूता डानौ इह कुटवारी मेरी ।
दिवस रैन तेरे पाउ पलोसौ केस चवर करि फेरी ॥
हम कूकर तेरे दरबारि । भौकाई आगे बदन पसारि ॥
पूरब जनम हम तुम्हरे सेवक अब तौ मिट्या न जाई ।
तेरे द्वारे धुनि सहज की मथै मेरे दगाई ॥
दागे होहि सुरन महि जूझहि बिनु दागे भगि जाई ।
साधू होई सुभ गति पछानै हरि लये खजानै पाई ॥
कोठरे महि कोठरी परम कोठरी बिचारि ।
गुरु दीनी बस्तु कबीर कौ लेवहु बस्तु सम्हारि ॥
कबीर दोई संसार कौ लीनी जिसु मस्तक भाग ।
अमृत रस जिन पाइया थिरता का सोहाग ॥ १९८ ॥
संध्या प्रात स्नान कराही । ज्यों भये दादुर पानी माही ॥
जो पै राम नाम रति नाही । ते सबि धर्मराय कै जाही ॥
काया रति बहु रूप रचाही । तिन कै दया सुपनै भी नाही ॥
चार चरण कहहिं बहु आगर । साधू सुख पावहि कलि सागर ॥
कहु कबीर बहु काय करीजै । सरबस छोड़ि महा रस पीजै ॥१९९॥
सत्तरि सै इसलारू है जाके । सवा लाख पै कावर ताके ॥
सेख जु कही यहि कोटि अठासी । छप्पन कोटि जाके खेल खासी ॥

मो गरीब की को गुजरावै । मजलसि दूरि महल को पावै ॥
तेतसि करोडी हैं खेल खाना । चौरासी लख फिरै दिवाना ॥
बाबा आदम कौ कछु न दरि दिखाई । उनभी भिस्त घनेरी पाई ॥
दिल खल हलु जाकै जर दरुबानी । छोड़ि कतेब करै सैतानी ॥
दुनिया दोस रोस है लोई । अपना कीया पावै सोई ॥
तुम दाते हम सदा भिखारी । देउ जबाब होइ बजगारी ॥
दास कबीर तेरी पनह समाना । भिस्त नजीक राखु रहमाना ॥२००॥
सनक सनंद अंत नहीं पाया । वेद पढ़े पढ़ि ब्रह्मे जनम गवाया ॥
हरि का विलोवना बिलोवहु मेरे भाई । सहज विलोवहु जैसे तत्त्व न जाई ॥
तनु करि मटकी मन माहिं विलोई । इसु मटकी महिं सबद संजोई ॥
हरि का वीलोना मन का बीचारा । गुरु प्रसादि पावै अमृत धारा ॥
कहु कबीर न दर करे जे मीरा । राम नाम लगि उतरे तीरा ॥२०१॥
सनक सनंद महेस समाना । सेषनाग तेरो मर्म न जाना ॥
संत संगति राम रिदै बसाई ॥
हनूमान सरि गरुड़ समाना । सुरपति नरपति नहि गुन जाना ॥
चारि वेद अरु सिमृति पुराना । कमलापति कमला नहि जाना ॥
कह कबीर सो भरमै नाहीं । पग लगि राम रहै सरनाही ॥२०२॥
सब कोई चलन कहत है ऊंहा । ना जानौं बैकुंठ है कहां ॥
आप आपका मरम न जानां । बातन ही बैकुंठ बखानां ॥
जब लग मन वैकुंठ की आस । तब लग नाही चरन निवास ॥
खाई कोट न परल पगारा । ना जानौ वैकुंठ दुआरा ॥
कहि कबीर अब कहियै काहि । साध संगति बैकुंठै आहि ॥ २०३ ॥
सर्पनी ते ऊपर नही बलिया । जिन ब्रह्मा बिष्णु महादेव छलिया ॥
मारु मारु सर्पनी निर्मल जल पैठी। जिन त्रिभुवन डसिले गुरुप्रसादि डीठी
सर्पनी सर्पनी क्या कहहु भाई । जिन साचु पछान्या तिन सर्पनी खाई ॥
सर्पनी ते आन छूछ नही अवरा । सर्पनी जीती कहा करै जमरा ॥

इहि सर्पनी ताकी कीती होई। बल अबल क्या इसते होई ॥
एह बसती ता बसत सरीरा। गुरु प्रसादि सहजि तरे कबीरा ॥२०४॥

सरीर सरोवर भीतरै आछै कमल अनूप।
परम ज्योति पुरुषोत्तमो जाकै रेख न रूप ॥
रे मन हरि भजु भ्रम तजहु जग जीवन राम ॥
आवत कछू न दीसई नह दीसै जात।
जहाँ उपजै बिनसै तही जैसे पुरवनि पात ॥
मिथ्या करि माया तजा सुख सहज बीचारि।
कहि कबीर सेवा करहु मन मंझि मुरारि ॥ २०५ ॥

सासु की दुखी ससुर की प्यारी जेठ के नाम डरौं रे।
सखी सहेली ननद गहेली देवर कै बिरहि जरौं रे ॥
मेरी मति बौरी मैं राम बिसारयो किन बिधि रहनि रहौं रे।
सेजै रमत नयन नहीं पेखौं इहु दुख कासौं कहौ रे ॥
बाप सावका करै लराई मया सद मतवारी।
बड़े भाई के जब संग होती तब हौ नाह पियारी ॥
कहत कबीर पंच को झगरा झगरत जनम गवाया।
झूठी माया सब जग बाँध्या मैं राम रमत सुख पाया ॥२०६॥

सिव की पुरी बसै बुधि सारु। तह तुम मिलि कै करहु बिचारु ॥
ईत ऊत की सोझी परै। कौन कर्म मेरा करि करि मरै ॥
निज पद ऊपर लागो ध्यान। राजा राम नाम मोरा ब्रह्म ज्ञान ॥
मूल दुआरै वंध्या बंधु। रवि ऊपर गहि राख्या चंदु ॥
पच्छम द्वारै सूरज तपै। मेर डंड सिर ऊपर बसै ॥
पंचम द्वारे की सिल ओड़। तिह सिल ऊपर खिड़की और ॥
खिड़की ऊपर दसवा द्वार। कहि कबीर ताका अंतु न पार ॥२०७॥

सुख माँगत दुख आगै आवै। सो सुख हमहु न माँग्या भावै ॥
बिषया अजहु सुरति सुख आसा। कैसे होइहै राजा राम निवासा ॥

इसु सुख ते सिव ब्रह्म डराना । सो सुख हमहुँ साँच करि जाना ॥
सनकादिक नारद मुनि सेखा । तिन भी तन महि मन नहीं पेखा ॥
इस मन कौ कोई खोजहु भाई । तन छूटै मन कहा समाई ॥
गुरु परसादी जयदेव नामा । भगति कै प्रेम इनही है जाना ॥
इस मन कौ नहीं आवन जाना । जिसका भर्म गया तिन साचु पछाना॥
इस मन कौ रूप न रेख्या काई । हुकमे होया हुकम बूझि समाई ॥
इस मन का कोई जानै भेउ । इहि मन लीण भये सुख देउ ॥
जीउ एक और सगल सरीरा । इस मन कौ रवि रहै कबीरा ॥२०८॥
सुत अपराध करत है जेते । जननी चीति न राखसि तेते ॥
रामय्या हौं बारिक तेरा । काहे न खंडसि अवगुन मेरा ॥
जे अति कोप करे करि धाया । ताभी चीत न राखसि माया ॥
चित्त भवन मन परयो हमारा । नाम बिना कैसे उतरसि पारा ॥
देहि बिमल मति सदा सरीरा । सहजि सहजि गुन रवै कबीरा ॥२०९॥

सुन्न संध्या तेरी देव देवा करि अधपति आदि समाई ।
सिद्ध समाधि अन्त नहीं पाया लागि रहे सरनाई ॥
लेहु आरती हो पुरुष निरंजन सति गुरु पूजहु भाई ।
ठाढा ब्रह्मा निगम बिचारै अलख न लखिया जाई ॥
तत्तु तेल नाम कीया बाती दीपक देह उज्यारा ।
जोति लाइ जगदीस जगाया बूझै बूझनहारा ॥
पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिंगपानी ।
कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी ॥ २१० ॥
सुरति सिमृति दुइ कन्नी मुंदा परमिति बाहर खिंथा ।
सुन्न गुफा महि आसण बैसण कल्प विवर्जित पंथा ॥
मेरे राजन मैं बैरागी जोगी । मरत न साग बिजोगी ॥
खंड ब्रह्मंड महि सिंडी मेरा बटुवा सब जग भासमाधारी ।
ताड़ी लागी त्रिपल पलटियै छूटै होई पसारी ।

मन पवन्न दुइ तूंबा करिहै जुग जुग सारद साजी।
थिरु भई नंती टूटसि नाही अनहद किंगुरी बाजी॥
सुनि मन मगन भये है पूरे माया डोलन लागी।
कहु कबीर ताकौ पुनरपि जनम नही खेलि गयो वैरागी॥२११॥
सुरह की जैसी तेरी चाल। तेरी पूछट ऊपर झमक बाल॥
इस घर मह है सु तू ढूढ़ि खाहि। और किसही के तू मति ही जाहि॥
चाकी चाटै चून खाहि। चाकी का चोथरा कहाँ लै जाहि॥
छींके पर तेरी बहुत डीठ। मत लकरी सोंटा परै तेरी पीठ॥
कहि कबीर भोग भले कीन। मति कोऊ मारै ईंट ढेम॥२१२॥
सो मुल्ला जो मन स्यो लरै। गुरु उपदेस काल स्यो जुरै॥
काल पुरुष का मरदै मान। तिस मुल्ला को सदा सलाम॥
है हुजूरि कत दूरि बतावहु। दुंदर बाधहु सुंदर पावहु॥
काजी सो जो काया बीचारै। काया की अग्नि ब्रह्म पै जारै॥
सुपनै बिन्दु न देई झरना। तिसु काजी कौ जरा न मरना॥
सो सुरतान जो दुइ सुर तानै। बाहर जाता भीतर आनै॥
गगन मंडल महि लस्कर करै। सो सुरतान छत्रं सिर धरै॥
जोगी गोरख गोरख करै। हिंदू राम नाम उच्चरै॥
मुसलमान का एक खुदाई। कबीर का स्वामी रह्या समाई॥२१३॥
स्वर्ग बास न वाछियै डरियै न नरक निवासु।
होना है सो होइहै मनहि न कीजै आसु॥
रमय्या गुन गाइयै। जाते पाइयै परम निधानु॥
क्या जप क्या तप संयमो क्या व्रत क्या इस्नान।
जब लग जुक्ति न जानियै भाव भक्ति भगवान॥
सम्पै देखि न हर्षियै बिपति देखि न रोइ।
ज्यो सम्पै त्यो विपत है बिधि ने रच्या सो होइ॥
कहि कबीर अब जानिया संतन रिदै मझारि।

सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि ॥ २१४ ॥

हज्ज हमारी गोमती तीर । जहाँ बसहि पीतम्बर पीर ॥
वाहु वाहु क्या खूब गावता है । हरि का नाम मेरे मन भावता है ॥
नारद सारद करहि खवासी । पास बैठी बिधी कवला दासी ॥
कंठे माला जिहवा राम । सहस नाम लै लै करौ सलाम ॥
कहत कबीर राम गुन गावौ । हिंदू तुरक दोऊ समझावौ ॥२१५॥

हम घर सूत तनहि नित ताना कंठ जनेऊ तुमारे ।
तुम तो बेद पढ़हु गायत्री गोबिंद रिदै हमारे ॥
मेरी जिहवा बिष्णु नयन नारायण हिरदै बसहि गोबिंदा ।
जम दुआर जब पूछसि बवरे तब क्या कहसि मुकंदा ॥
हम गोरू तुम ग्वार गुसाइ जनम जनम रखवारे ।
कबहू न पार उतार चराइहु कैसे खसम हमारे ॥
तूं बाह्मन मैं कासी का जुलहा बूझहु मोर गियाना ।
तुम तौ पाचे भूपति राजे हरि सो मोर धियाना ॥ २१६ ॥

हम मसकीन खुदाई बन्दे तुम राजसु मन भावै ।
अल्लह अवलि दीन को साहिब जोर नहीं फुरमावै ॥
काजी बोल्या बनि नही आवै ॥
रोजा धरै निवाजु गुजारै कलमा भिस्त न होई ।
सत्तरि कावा घटही भीतर जे करि जानै कोई ॥
निवाजु सोई जो न्याइ बिचारै कलमा अकलहि जानै ।
पाँचहु मुसि मुसला बिछावै तब तौ दीन पछानै ॥
खसम पछानि तरस करि जीय महि मारि मणी करि फीकी ।
आप जनाइ और को जानै तब होइ भिस्त सरीकी ॥
माटी एक भेष धरि नाना तामहि ब्रह्म पछाना ।
कहै कबीरा भिस्त छोडि करि दोजक स्यों मन माना ॥२१७॥